एक बार फिर

रचियता
शाहदरा दिल्ली-32



एक बार फिर

डॉ॰ राजानंद

EK BAR PHIR
(Novel)
Dr. Raja Nand

Price Rs. 25.00

प्रथम संस्करण, 1982
मूल्य : पच्चीस रुपये
आवरण शिल्पी : हरिप्रकाश त्यागी

प्रकाशक
रचयिता
शाहदरा, दिल्ली-32

प्रमुख वितरक
हेमन्त प्रकाशन
/2248, रामनगर, शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक
पराग प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

बस इतना ही

रिश्ते बनते हैं और टूटते हैं। बहुत ही निजी और आत्मीय रिश्तों में भी दरारें पड़ती हैं, अलगाव भी आ जाते हैं। लेकिन क्या ये दरारें और अलगाव वास्तव में 'मूल' से कटाव पाते हैं? आधुनिक जीवन और व्यक्तित्व की निजी स्वतंत्रताओं और सामंजस्य के प्रयासों में जीवन अजीब-अजीब तरह के बहाने, सहारे और आधार खोजता है। वे भी क्या उसके समूचेपन को बरक़रार रहने देते हैं? क्या है कि बावजूद बहुत तरह की सम्पन्नताओं और सुविधाओं के व्यक्ति अपनेपन को बनाये रखने के लिये दूसरे तक पहुँचता है—ऊपर से सबल, संयुक्त, अन्दर से कमज़ोर और रिक्त। वह उस रिक्तता का भराव चाहता है, जिसे भरने में अपने को अपूर्ण पाता है। यहीं से इस उपन्यास 'एक बार फिर' के पात्र यात्रा शुरू करते हैं। पात्र ही क्यों, हम सब इस यात्रा के बीच में हैं। आपकी यात्रा और उपन्यास के पात्रों में यदि आपको साम्य मिले तो उपन्यास को सफल मानूँगा।

राजानन्द

एक बार फिर

में !

कितनी रात हो गई ? मै चाहती हूँ कि मेज छोड़कर खिड़की तक जाऊँ; बाहर की तरफ देखूँ। लेकिन क्या होगा जान लेने से ? रातें इसी तरह तो बीतती रहती है—बीतती रही है।

मैं नहीं उठती। मैं सामने के पडे सफेद कागजो को देखती हूँ। सफेद कागजों के पास मेरे ही लिखे कागज बाक़ायदा फाइल मे लगे हैं। सफेद कागज जैसे-जैसे भरते जाते है, फाइल मे लगते जाते हैं। कितना-कितना लिख डाला मैंने। मैं नही जानती कि क्यों लिखती हूँ। इससे ज्यादा परेशानी इस वजह से होती है कि मैं खाली क्यो नही होती हूँ ? हर रात लगता है कि बस मैं चुक चुकी, लेकिन दूसरी रात फिर जैसे अपने को भरा पाती हूँ—उलीचना शुरू हो जाता है।

कहाँ से शुरू हुई थी यह जिन्दगी किस भटकाव मे भटक गई !

क्या मैं उनसे कभी मिलूँगी ? क्या मैं उनसे मिलने के लिये उत्सुक हूँ ? क्या वह मुझे मिल जाएँ तो मै उनको पहचानूँगी ? क्या वह मुझे पहचानेंगे ? क्या मैं पहचानकर भी अनजानी बन जाने का अभिनय कर उनको पीछे छोड़ते हुए आगे नही निकल जाऊँगी ? क्या वह मुझे पहचानकर भी अजनबी जैसा व्यवहार करके ठीक उस तरह से मेरे सामने से नही निकल जायेंगे, जिस तरह से बाज़ार में चलते-फिरते आदमी निकल जाते है ?

समझ मे नही आता कि बीस साल बाद भी इस तरह के सवाल क्यों आते रहते है, जबकि यह सवाल आते रहे, साल-दर-साल गुजरते रहे। न कभी वह मिले, न आज तक की तारीख मे यह पता है कि वह कहाँ हैं ? क्या करते है ? कैसे हैं ?

बीस, आठ और बीस। यानी बीस साल की उम्र में शादी। आठ साल तक मैं और वह साथ-साथ। उसके बाद के यह लम्बे बीस साल। मुझे अपना पता है कि मैं यहाँ हूँ। उनको अपना पता होगा जहाँ भी होंगे। हर तरह के फासले दोनों के बीच ठहर गये—दिमागी फासले। वक्त के फासले दूरी के फासले। उम्र के फासले। भुलावे और याद के फासले।

मैं लगातार चाहती रही हूँ कि जब जिन्दगी में उनसे कोई वास्ता नहीं रहा तो याद से भी क्यों रहे? लेकिन किसी जगह शायद इंसान बेबस हो जाता है। शायद मैं इसलिए बेबस होऊँ क्योंकि मैं अकेली हूँ, क्योंकि मैं औरत हूँ, क्योंकि मैं जिन्दगी के उस हिस्से को काट कर अलग नहीं कर सकी हूँ जिसके कि अब कोई मायने नहीं हैं। मायने नहीं हैं, फिर भी मुझ से नत्थी है, जैसे किसी सिल्क के कपड़े से नत्थी कोई चिथड़ा।

दिन सिल्क के कपड़े की तरह चिकना, आकर्षक, इज्ज़तदार। रात में नींद न आने तक के ये क्षण, जैसे तार-तार चीथड़े, चीथड़ों में रेंगते सवालों के सपोले। मैं अतीत को दफ़न करना चाहती हूँ, सवालों के ज़रिये भविष्य को कतई नहीं देखना चाहती। लेकिन चाहने से क्या होता है। बेबसी में कुछ नहीं हो पाता, सिर्फ़ सफ़ेद कागज़ों पर कुछ-न-कुछ लिखते रहा जाता है। हर रात खाली होती हूँ, दूसरी रात तक फिर भर जाती हूँ, ख़ाली होने के लिये।

अड़तालिस वर्ष की उम्र कम नहीं होती।

क्या मैं देखूँ कि रात कितनी बीत गई है?

क्या मैंने जाना कि उम्र कितनी निकल गई है?

वह मुझसे पांच साल बड़े थे। यानी मैं जब बीस की थी, तो वह पच्चीस के थे। जब मैं अट्ठाइस की हुई तब वह तैंतीस के हुए। अब मैं अड़तालिस की हूँ, तो वह तिरेपन के होंगे। होंगे नहीं, जहाँ भी है, तिरेपन के ही हैं।

रिश्ते बदल सकते हैं, जगहें बदल सकती हैं, हालात बदल सकते हैं, मैं और वह बदल सकते हैं, उम्र का जोड़ थोड़े ही बदल सकता है।

वह तब भी पाँच बरस बड़े थे जब हमारी शादी हुई थी। वह तब भी पाँच बरस बड़े रहे जब हम दोनों एक साथ न रह पाने की हालत में अलग

हुए। वह आज भी पांच बरस बडे हैं, जबकि बीस साल हो गये, न उन्हें मेरा अता-पता मालूम है, न मुझे उनका अता-पता।

शायद हमें सिर्फ अपना-अपना अता-पता मालूम है।

कौन दावा कर सकता है कि वह अपने को जानता है? मैं नही समझती कि मैं कभी अपने को जान पाई।

क्या मैं फिर कुछ लिखना चाह रही हूँ। ऐसा कहा जाता है कि अगर अपने को सही तौर पर पहचानना हो तो अपने बारे में लिखो—जितना लिखा जा सके लिखो। व्यक्ति को पहचानने का दावा करनेवाले तो यहाँ तक कहते है कि सगत-असगत जितना भी अन्दर उठे सब लिख दो। अपने विचार, अपनी कल्पनाएँ, अपने दिवास्वप्न, अपने रात के स्वप्न सब लिखो, तुम्हारा व्यक्तित्व समझा जा सकेगा। अपनी खण्डित आशाएँ और प्रयास लिखो ताकि असफलताओ के बीच व तुम्हारे दम-खम को आँका जा सके।

मैंने इतना ढेर सारा लिख रखा है कि अगर कोई छापने बैठे तो कम-से-कम बीस किताबें बन जायें। लेकिन कोई क्यो छापेगा? मेरी ज़िन्दगी ऐसी कौन-सी खास ज़िन्दगी है जिसे छापने मे किसी को फ़ायदा होगा। और यह सब जो मैंने लिखा है वह इसलिए थोडे ही लिखा है।

अकेले में जब कोई नही होता तो अपने को अपना दोस्त बना लेती हूँ। अकेलेपन की टीसन, अकेलेपन की हताशा और अकेलेपन के मोह और विरक्ति को वही जान सकता है जो ऐसी हालत में हो।

वैसे सोचा जाये तो अब क्या है? एक तूफ़ान गुजर गया सिर पर से, जिसने तरह-तरह से हिलाया, उठाया, पटका। कुछ था जो सहता रहा। मानती हूँ वह अहं था। मानती हूँ वह चुनौती थी। मानती हूँ जिस जगह मुझे उन्होंने छोडा था, उसके एक तरफ आत्म-हत्या थी दूसरी तरफ ज़िन्दगी की कशिश थी—ज़िन्दगी की वह कशिश जिसको शक्ल में देखना चाहती थी लेकिन वह अदृश्य-सी कही खडी मुझे सिर्फ इशारा भर कर रही थी।

क्या उन्होंने छोडा था?

ऐसा कहकर मैं उनको दोषी ठहरा रही होऊँगी जबकि सच्चाई यह

नहीं थी।

न उन्होंने मुझे छोड़ा था, न मैंने उनको।

ऐसा लगने लगा था हमारा साथ-साथ रहना मुमकिन नहीं है, इसलिए दोनों एक दूसरे की रजामन्दी से अलग हो गये।

लोगों ने कहा तलाक ले लो। मुझसे यह भी कहा गया कि मैं अपना हक रुपये की शक्ल में क़ानून से माँगूँ।

लेकिन मुझे यह छिछोरापन-सा लगा। जब साथ रह नहीं सकते तो दूसरा रास्ता अलग होने का था। और जब आगे कोई सरोकार नहीं रहना था, फिर कानून की क्या जरूरत थी।

हक आपसी होता है। जब आपसीपन नहीं रहा फिर अलग-अलग रास्ते थे। चाहे वे रास्ते अनजान और अंधे हों।

उन्होंने पूछा था—क्या तुम्हारे से अलग होने के बाद मैं किसी से शादी कर सकता हूँ?

मैंने जवाब दिया था—कर सकते है।

मैंने भी ठीक उन्हींकी भाषा को दोहराते हुए पूछा था—क्या मैं किसी और से शादी कर सकती हूँ।

उन्होंने मेरा जवाब अपना बनाकर कह दिया था—कर सकती हो। ऐसी-ऐसी कितनी ही बातें वक्त-वक्त पर होती रही थी, लेकिन वह हुई बड़ी साफ तौर पर। छोटी-छोटी बातें भी थी, बड़ी-बड़ी भी बातें।

मुझे एक ताज्जुब होता है। मैं जो यह सोचती हूँ कि क्या वह कभी मिलेंगे? इसके पीछे कौन-सा तर्क है? और उन्हींसे सम्बन्धित जो सवाल मुझे आकर घेरते हैं उनकी क्या सगति है?

यह सारे सवाल बे-बुनियाद है। क्योंकि मेरे और उनके बीच में बुनियाद जैसी कोई चीज़, या कोई विश्वास, या कोई औचित्यपूर्ण सम्भावना रही कहाँ? यह रात की निरर्थक बकवास—चाहे लिखने की हो, या हवाई सम्भावनाओं की—महज रात को गुजार ले जाने का जरिया ही तो है। क्या इससे ज्यादा और कुछ भी है?

कोई वास्तविकता जाने तो क्या कहे? बाल खिचड़ी हो गये। चेहरे पर अधेड़पन की शिकनें और झाईयां पड चुकी—जिन्हे मेकप से छिपाना

होता है। दिन में दफ्तर से लेकर क्लब तक और तरह-तरह की व्यस्तता में जिस उत्साह और ताजगी को बनाये रखना होता है वह क्या रात की इस एकांतिकता से मेल खाते हैं? एक बाहर की 'मैं' एक घर की 'मैं' क्या ठीक विपरीत नहीं है?

शायद बहुत हो गया। थकान-सी महसूस होने लगी। अक्सर ऐसा होता है कि जब मैं अपने रूपों और विभिन्न नाटकीय भूमिकाओं को देखती हूँ तो घबरा जाती हूँ। तब मैं उठती हूँ और खिड़की के कपाट खोलकर इस 'इस्कीम' के खामोश मकानों, निर्जन सड़क और खाली आकाश को देखने लगती हूँ। अपने खालीपन को बाहर के सूनेपन से भरती हूँ। यह भी एक छलाव है जिसे प्रयोजनहीन होकर अपनाती हूँ।

अभी तक मैंने खिड़की के उस पार के सूनेपन को नहीं देखा है। मैं उठती हूँ, खिड़की के कपाट खोलकर बाहर की तरफ़ देखती हूँ। मेरा फ्लैट ऊपरी मंजिल पर है, इसलिये सामने के क्वार्टरों की पूरी कतार ऊपर-नीचे के फ्लैटों के साथ दीखती है—पूरी कतार दीखती है। यह मेरी चोरी है कि सारे फ्लैटों की जलती बत्तियों को देख रही हूँ—चाहे उनमें रहने-सोने वाले न दीखें। मुझे लगता है शायद मैं रात में अपनी उम्र खो देती हूँ। लाख याद करूँ कि मैं एक अधेड़ औरत हूँ—हर तरह से बीती और चुकी हुई, कि अब क्या है जो मर नहीं चुका है, कि क्या है जो इस सूनेपन और दूसरों के आराम में अपना कुछ ढूँढता है। लेकिन फिर भी ऐसा होता है। शायद यह भी रात काटने का जरिया हो!

मैं टिमटिमाती हुई रोशनी को देखती रहती हूँ। मैं अपने दिन की तरह सूने-सूने रात के माहौल को एक तसल्ली के साथ देखती रहती हूँ। लौट कर कुर्सी में धँस जाती हूँ। मैं आँख मूँद कर बैठे-बैठे नींद को लाना चाहती हूँ। नींद नहीं आती।

दर्जे का पाना, यानी सीढ़ियाँ चढ़ना।

सारी ताकत और इज्जत इसी पर तय रहती है कि कौन, किस सीढ़ी पर है।

निगम अपने बच्चो और बीवी को दुहाई दे रहा था। यह पुराने आदमी खुशामद और भीख मे फरक नही करना चाहते।

निगम गिड़गिड़ाकर कह रहा था—मैडम जी, अगर आपकी दया हो जाये तो मुझे तरक्की मिल जाये। मेरे आठ बच्चे है। तीन लड़कियों की शादी करनी है। नौकरी मे सिर्फ़ दस साल बाकी है। मैडम जी, आपकी कृपा हो जायेगी तो मेरी औरत और बच्चे आपको आशीर्वाद देंगे।

मैंने निगम को कई बार टोका है कि या तो 'मैडम' कहे, या महोदया लेकिन उसके असर नही पड़ता। जैसे अपने काम करने के रवैये को आज तक नही बदल सका, उसी तरह 'मैडम जी' में से 'जी' को नही छोड़ सका।

भीख मे आदमी दांत निपोरता है, चहरे को मुसीबतजदा और करुणा उपजाने वाला बना लेता है। वह सच और झूठ बातों की मिलावट से इस तरह की कहानी गढता है जो सुननेवाले को उद्वेलित कर दे। वह भावुक होकर दया कर दे। खुशामद में भी तकरीबन यह प्रक्रिया काम करती है। मैं जानती थी कि निगम अपनी कठिनाई को बढ़ा-चढ़ाकर कह रहा है।

निगम की सिलपट चांद, भरा-भरा गाउदा चेहरा कितना भोला और निष्कपट लग रहा था। उसके बढ़े हुए पेट पर ठहरी हुई पैंट हर वक्त यह डर देती थी कि अब खिसकी, अब खिसकी। वास्तविकता यह थी कि न तो निगम इतना भोला और निष्कपट था, ना ही उसकी चौड़ी मोहरी की पजामेनुमा पैंट कभी खिसकी। क्या मैं जानती नही कि निगम मेरे सामने दूसरी तरह होता है और जिनका हाथ उससे दबता है, उनके लिए यह दूसरा और काइयाँ हो जाता है।

निगम क्यों हर व्यक्ति को भोला और काइयाँ दोनों होना पड़ता है।

मैंने निगम से पूछा था—क्यों निगम, तुम तीन लड़कियों की शादी का जिक्र करते हो, क्या मैं जानती नही कि तुम्हारे कमाऊ लड़के भी है।

निगम निधड़क होकर उसी गिड़गिड़ाई हुई आवाज मे बोला था—मैडम जी, बेटे तो तीन हैं, दो कमाते भी है, लेकिन उनका मुझसे क्या

सरोकार। बाप तो बाप तब तक के लिए होता है जब तक बेटे को नौकरी नही मिले। दोनो अपनी कमाई को लेकर अपने-अपने हो गए। छोटा इसलिए मेरे पास है, क्योंकि पढ तो चुका है, लेकिन बेकार बैठा है। मैडम जी, मैंने उसके लिए भी आपसे कहा था, उसको अपने यहाँ या कहीं और लगवा दीजिए तो मेरा, उसका, दोनो का भला हो जाए।

मुझे मजाक सूझा था। मैंने कहा था, नौकरी लगते ही वह भी दूसरा हो जायेगा। क्यो बेटे को हाथ से खोते हो?

निगम आखिर पका हुआ बाबू है, फौरन जवाब दिया—मैडम जी, कधे तोडनेवाले बोझ के बने रहने से अच्छा है वह बोझ किसी दूसरे का हो जाये। क्या मै गलत हूँ। मेरी एक लडकी शादी होकर ससुरालवालों की हो गई तो उन तीन की तरह मेरा बोझ तो नही है जो मुझ पर हैं आज।

कौन कहेगा कि निगम भोला है। वास्तव मे आज कोई भोला होता ही नही, अपने मुद्दे को साध लेने के लिए आदमी नाटक करे तो बात दूसरी है। मैंने निगम से पीछा छुड़ाने के लिए उससे कह दिया था कि सिफ़ारिश कर दूंगी, यानी अपनी तरफ से उसके पक्ष मे लिख दूँगी, आगे कम्पनी वाले जाने।

वह मेरे लिए शुभ कामनाएँ करते हुए चला गया था। साथ मे यह भी कहता हुआ चला गया था कि आप मेरी हालत को पूरी तरह नही जानती है, मैं इस कम्पनी का पुराना नौकर हूँ, आपको आए तो सिर्फ दो साल हुए है।

उसने सही कहा था। मुझे इस कम्पनी मे, इस जगह पर काम करते हुए सिर्फ दो साल हुए थे। निगम मेरी खुशामद इसलिए कर रहा था ताकि मैं उसकी सिफारिश अच्छे शब्दों मे कर दूं, बाकी वह इसी तरह गिडगिड़ाकर ऊपर से अपना काम करवा लेगा।

मुझे निगम के पूरे हालात जानने से क्या मतलब था। दफ्तर मे कितने लोग हैं, किस-किस के हालात जाने जाएँ। और क्यों जाने जाएँ? उतनी जानकारी क्यों न रखी जाय जितनी की जरूरत हो।

निगम ने कहा—मजबूत शब्दों में सिफारिश करने के लिए। मैंने एक

सिद्धांत बना रखा है। अगर खुद का नुकसान न हो, दूसरे का फ़ायदा हो, तो अपनी तरफ से उस काम को कर देना चाहिए। निगम के लिए दो या चार लाइनें लिखने से अगर उसको प्रमोशन मिल सकता है तो मेरी तरफ से क्या जाता है। जितनी मैं बाहर आई हूँ उतना मैंने इस सिद्धांत की सफलता को परखा है। निगम क्या मैंने बहुतों पर अहसान किये हैं और उस अहसान के बदले में उनसे तारीफ ली है। वक्त पर उनसे अपना काम भी साधा है।

थकान हो रही है लेकिन नींद फिर भी नहीं आ रही है। कहाँ निगम की 'मैडम जी' कहाँ इस वक्त की मैं। मेरा ध्यान फिर पीछे जा रहा है। आज क्या हो गया ? कभी-कभी यह क्या हो जाता है कि खुद की जिन्दगी की यादें इस तरह हावी हो जाती हैं कि दूसरी वास्तविकताओं को दबा देती हैं। मुझे ऐसा लगता है कि प्रौढ़ता की चौखट पर होकर भी मैं उसको मानना नहीं चाहती। हर तरह से खाली होते हुए भी अपने को भरा रहने के भ्रम में रखे रहना चाहती हूँ।

मन की धोखेबाजी बड़ी रहस्यमय होती है। लगता है कि वह किसी जगह तटस्थ है जबकि वह उस वक्त अनुरंगता लिए हुए होती है।

मैं अक्सर अपने आपके सामने दावा करती हूँ कि मुझे उससे मतलब नहीं, जो गुजर गया। वह नासमझी और रोमाण्टिकता का वक्त था जब मैंने उनको सिर्फ एक ही तरह से पहचाना था, वह था जिस्म के गीत और भावनाओं की उछाल के सहारे। जिस्म वही है, शायद अब इसका गीत, इसकी लय और ताल बदल गई है—या लँगड़ी हो गई है। क्या लँगड़ा गई है।

मैं शायद, कभी-कभी उस लय की खोज में ही अतीत तक जाती हूँ जिसकी सूनी धर्मशाला यह देह है, यह जिस्म। इसके मायने है कि उस लय का आरोह-अवरोह अब भी देह में है। लेकिन वह रिश्ता ? वह मैं ही हूँ अट्ठाइस साल पहले की मैं !

डैडी और मम्मी में इस विषय को लेकर विवाद चल रहा था कि मैं नौकरी करूँ या नहीं करूँ। मम्मी का कहना था उसे क्या जरूरत है नौकरी की, जितना पढ़ना था पढ़ा दिया।

—डैडी कहते थे कि पढाया है तो उसे अपने पैरो पर खड़ा होना सीखने दो। उसे बाहरी दुनिया को भी जानने दो।

—मम्मी ताना कसती, बेटे को बाहरी दुनिया की पहचान करवाते-करवाते अमरीका पहुँचा दिया, इसे भी क्या वहीं भेजोगे।

मम्मी का सीधा-साधा मतलब था कि उन्होंने बेटे को तो खो दिया, क्या बेटी को उसी रास्ते लगा दें।

—मम्मी कहती, ईश्वर का दिया हमारे पास काफी है, अगर नौकरी करवानी होगी तो इसका आदमी करवा लेगा।

—तो करवाओगी क्या ? आखिर शादी हथेली पर तो रखी नहीं है ?

मम्मी के पास इसका जवाब नहीं था। लेकिन उसके पास दूसरा तर्क था। पढाई की बात और है, नौकरी की और। अपनी लडकी की खूबसूरती को देखा है? आदमियों में काम करेगी तो मरे मक्खी की तरह ताक लगाते रहेंगे। क्यों तो आग के पास जाओ और क्यों कपडों को बचाते फिरो।

डैडी नाराज होकर कहते—अपना वक्त समझती हो। मेरे यहाँ जो लडकियाँ काम करती हैं वह सब तुम्हारी नजरों में बदचलन होंगी।

—रहने दो, तुम्हीं अपने मुँह से दफ्तर के किस्से सुनाते हो। और खा जाओ मेरी कसम तुम भी एक बार डोल नहीं गए थे।

मैं डैडी-मम्मी की नोंक-झोंक सुनती तो अन्दर-अन्दर मजा लेती। मैं जानती तो थी कि आखिरकार मम्मी को पीछे हटना होगा, इसीलिए मैंने अपनी तरफ से न 'हाँ' कहा था, न 'नहीं'।

लेकिन मम्मी के पास डैडी को परास्त करने का एक अचूक शस्त्र था। वह थे भैया। मैंने एक दिन उस नाग-फाँस को डैडी की तरफ फेंकते हुए मम्मी को सुना।

—तुम तो बेटे के लिए भी कहते थे कि अमरीका पढने जा रहा है। क्या हुआ बाद में ? पहले पढाई की। फिर नौकरी के लिए फुसलाया। फिर वहीं शादी करके बस गया। लौटा लिया उसे ?

डैडी खिसिया जाते। लेकिन उन्होंने मम्मी के सामने अपनी गलती

मानना नही सीखा था। वैसे मम्मी का हर कहा करते थे, लेकिन उस हद तक, जिस हद तक वह चाहते थे। जो नही चाहते थे, उसे वह घर में कभी नही होने देते थे। नाइत्तिफाकी के एक बिन्दु पर ऊपरी हाथ डैडी का होता था। डैडी और मम्मी के रिश्ते मे एक रेखा ऐसी थी जिसके दूसरी तरफ सिर्फ डैडी थे—यानी पति। और इस तरफ मम्मी थी जिन्हे उस रेखा को फलागने का अधिकार नही था। डैडी पुरुष थे, मम्मी स्त्री। डैडी पति थे, देवता थे, मम्मी पत्नी यानी उनकी दासी।

डैडी भैया की बात को यूँ साध देते कि वहाँ खुश तो है, खूब कमा-खा तो रहा है, यहाँ लौटकर क्या पाता? मैं अब गजेटेड अफसर होकर, नौकरी के इतने साल बाद जितना पा रहा हूँ उतने से कितना गुना तो वह अभी से पा रहा है।!

लेकिन असलियत यह थी कि डैडी ने भैया को लौट आने के लिए हर तरह से लिखा था, लेकिन वह लौटने को तैयार नही हुए थे। बल्कि उन्होंने तो जब-तब मेरे लिए भी लिखा था कि मैं वहाँ चली आऊँ।

डैडी के लिए अगूर खट्टे वाली स्थिति थी। लोमड़ी अगूर के देखते हुए भूखी चली गई थी। डैडी भी भैया को खोकर भूखे रह गए, मम्मी तो अपने दिल के घाव को भर ही नही सकी। बल्कि वह उस घाव को किसी कजूस की तरह अन्दर-अन्दर सेहती रही और एक दिन कैंसर की बीमारी से चल बसी।

कितनी आगे की हकीकत ले आई। कभी-कभी मम्मी का दर्द मुझे हिला देता है, हालाकि मैं क्या जानूँ, ममता का नासूर कैसी तकलीफ देता है? मैने तो ममता जानी ही नही। जब भी कभी छिपे तौर पर उठी, उसका उठना महसूस हुआ, मैंने उसे उतनी ही बेदर्दी से ज़िबह किया जैसे कोई कसाई कम उम्र के बकरे को जिबह करे। लेकिन इससे क्या वह ममता मर सकी?

आखिरकार डैडी ने मुझे नौकरी दिलवाई और मैंने कॉलिज को दुनिया से अलग बिल्कुल दूसरे माहौल मे प्रवेश किया।

मम्मी ने मुझे हर तरह से इसके लिए राजी करना चाहा था कि मैं खुद डैडी से नौकरी के लिए मना कर दूँ, लेकिन मैं कैसे तैयार होती? मेरे

लिए एक नये अनुभव का दायरा तैयार था, जो मेरी इच्छा का था। मैंने मम्मी को संतुष्ट करने, या यूँ कहूँ कि उनको फुसलाने के लिए यह वायदा किया था कि जैसे ही शादी होगी, मैं नौकरी छोड़ दूँगी।

यह सही है कि मेरी नौकरी की परिस्थिति दूसरी लड़कियों की परिस्थिति जैसी नहीं थी। पहली बात तो यह कि यह नौकरी शौक के लिए थी, जरूरत की वजह से नहीं। दूसरी बात की डैडी ने अपने दफ्तर में रखवाया। वह वहाँ अफसर थे। उनके दबदबे के कारण मैं किसी सीमा तक सुरक्षित थी। मेरे सेक्शन और दूसरे सेक्शन के क्लर्क चाहे अपने-अपने दायरे में मुझे लेकर बात करते हों (करते ही थे) लेकिन सीधी दोस्ती करने की या पहुँच बैठाने की हिम्मत नहीं करते थे। मैं अकेली ऐसी लड़की नहीं थी जो किसी ऑफीसर की बेटी होऊँ, इस तरह की कई थी, चाहे वह पत्नी हो, या बेटी, या और कोई रिश्तेदार। पता चला कि यह प्राथमिकता, या हक बन गया है। बल्कि अफसरी तबके ने ऐसा हक निकाल लिया है।

हम लोग ज्यादातर अपना गोल अलग रखते थे। उम्र के हिसाब से ग्रुप बना हुआ था। जो चढ़ी हुई उम्र की थी वह हमसे अलग अपनी हम-उम्र के ग्रुप में रहती थी। मम्मी ने डैडी से जिस सम्बन्ध की बात कही थी, वे भी यहाँ थे लेकिन प्रकट-अप्रकट। अफवाहों में भी और सबूतों के साथ भी।

मैं यह नहीं कह सकती उस वक्त मैं इस तरह के सम्बन्धों में क्या राय रखती थी। सच्चाई यह है कि राय बनाने की मैंने जरूरत नहीं समझी। हाँ, मैं जानती सब थी। कॉलिज में भी जानती थी। वैसे भी ऐसी जानकारी तो अपने-आप मिलती रहती है।

मुझे ऐसा लगता है कि मैं अपनी खूबसूरती को लेकर शुरू से कॉन्शस रही। इस अहसास ने, या हो सकता है किसी धारणा ने, मुझे कच्ची फिसलन से बचाए रखा। मैं किसी भी रोमियो को इतनी छूट कभी नहीं दे पायी कि वह मेरे रोमांस को उकसा सके। हालांकि मैं हद से ज्यादा चंचल और हद से ज्यादा छेड़खानी करनेवाली थी।

सिर्फ एक साल नौकरी की जिसमें एक घटना जरूर हुई। अब तो

नाम भी नहीं याद। नाम तो बहुत पहले, शायद नौकरी छोड़ने के बाद ही दिमाग से गायब हो गया था। वह देखने मे बहुत चटख और स्वभाव मे बडा चरपरा युवक था। उसने सोचा होगा कि वह मेरे काबिल है। उसने मुझमे रुचि लेनी शुरू की लेकिन बहुत सतर्कता से। मुझे काफी अरसे बाद पता लगा। मैं डैडी की मोटर साइकिल (फिटफिटिया) पर जाती थी और उन्हीं के साथ लौटती थी। वह सिर्फ लच टाइम मे मुझे देखता था और जतलाना चाहता था कि वह मुझमें रुचि रखता था। मुझे मेरी सहेली ने भी इशारा करके बताया कि वह तुम्हारा आशिक हो गया लगता है। मैंने 'धुत' कहकर उसकी बात को उडा दिया था लेकिन मैं जानती थी कि वह सच थी।

आखिर एक दिन उसने हिम्मत कर ली। मैं शची के साथ जब भी कैन्टीन मे बैठती थी वह दो मेज छोडकर ऐसी मेज पर बैठता जहाँ से वह मुझे देख सके। उस दिन शची नही आई थी, मैं अकेली थी। शची ने एक हफ्ते पहले बताया था कि कोई साहब उसे देखने आ रहे है। मैं जानती थी कि शची किसी को चाहती है और यह सम्बन्ध सिर्फ चाहने भर तक नहीं हैं, समर्पण तक पहुँच चुके है।

मैंने पूछा था – क्या तुम आने वालो के सामने जाओगी।

—हाँ ! उसने जवाब दिया।

—अगर तुम उनको पसन्द आ गई तो ?

—तो ठीक है।

—ठीक है के मतलब ? मैंने उसकी तरफ आश्चर्य से देखा था।

—मतलब कि वह हजरत भी आ रहे है। अगर मुझे जँचे तो मैं शादी कर लूँगी।

—फिर तुम्हारे इस सम्बन्ध का, जो इस वक्त है।

— वह टूट जायेगा। दूसरा जुड जायेगा।

मैं सकते में आ गई थी। हालाँकि ऐसी कोई बात नही थी सकते की। कॉलिज मे इस तरह के अस्थाई सम्बन्धों के कई किस्से मैंने सुने थे लेकिन वहाँ चोरी-छिपे की बात थी। और शादी में माता-पिता की चाह का दबाव था। शची के साथ ऐसा नहीं था। वह खुद घर की तरफ से इतनी

आजाद थी कि अगर वह अपनी मर्जी बताती तो उसके माँ-बाप उसकी ख़िलाफत नही करते।

मैं यह मानती हूँ कि शची मेरे अनुभव मे ऐसी लड़की आई जिसने मुझ मे एक जटिल धारणा दे दी। शची नाटे कद की, छोटी गर्दन की, चपटे नाक-नक्श की लडकी थी। उसका रग सावला नही, लेकिन उसके नजदीक का था। उसके बाद से पता नही क्यो मेरी धरणा बन गई कि इस तरह की लडकियाँ या पुरुष बहुत चालाक और काइयाँ होते है। वह विश्वसनीय नही होते।

—शची तुम्हें उसे छोडते हुए दर्द नही होगा ? मैने पूछा था।

—नही। उसने बिना हिचक के जवाब दिया था।

—उसके साथ धोखा नही है ?

—धोखा कैसा ? क्या उसी ने सबकुछ दिया है, मैने कुछ नही दिया। देना-लेना जहाँ बराबर का हो वहाँ धोखा कैसा ? तुम सोचती हो मैं अगर उससे शादी का प्रपोज़ल रखूँ तो मान जायेगा। वह फ़ौरन कोई गढा हुआ बहाना मेरे सामने रख देगा। क्या मैं जानती नही हूँ कि मुझ जैसी साधारण लडकी के साथ कोई मजबूरी मे ही बँध सकता है। जो श्रीमान जी मुझे देखने आ रहे है, उनकी एक बीवी मर चुकी है, एक साल भर की बच्ची भी है उससे। उनको आया और औरत दोनो की जरूरत है। मुझे एक आदमी की जो पति कहला सके।

—तुम नौकरी छोड दोगी ?

—नही, वह श्रीमानजी इसी शहर के है। यही उनकी एक बडी दूकान है—कपड़े की।

वास्तव में मै शची की बातों से घबरा गई थी। और जब उसने यह बताया कि कभी-कभी अपने सेक्शन के पचोली साहब भी उसे होटल ले जाते हैं तब मुझे मम्मी और डैडी के बीच की बहस याद आई। मम्मी की आपत्ति ठीक थी अगर वह मुझे नौकरी मे नही डालना चाहती थी। लेकिन दफ़्तर की हर काम करने वाली लड़की शची नही होती यह शची ने खुद कहा था। उसने एक सत्य थप्पड की तरह मेरे मारा था। मेरे पिता तुम्हारे डैडी की तरह अफ़सर नही थे। पंचोली साहब ने मुझे कोशिश करके

रखवाया था। यह मेरे पिता के किसी दोस्त के परिचित थे। नौकरी दिलवाने की याद दिलाकर कभी-कभी यह अपने अहसान की कीमत लेते है। इनकी उम्र तुम देखती नही हो ? क्या और साफ-साफ कहने की जरूरत है ? इनकी उकसाहटो को वह पूरा करता है—वह जिसके लिये तुम सहानुभूति दिखाना चाह रही हो।

शची पता नही किस मिट्टी और सस्कार की बनी हुई थी। उसने दूसरा थप्पड और मारा था मेरे। हमारे यहाँ तब लडकी ब्याही जा पाती है जब सात-आठ हजार लडके को तिलक मे दिया जाये। तुम्हारे डैडी दे सकते हैं, मेरे पिता मुझसे बडी बहिनो की शादी मे भुगतान भर चुके। वह अब रिटायर्ड है, एक दूकान पर दो सौ रुपये की पार्ट-टाइम नौकरी करते हैं।

शची ने अपने को दिखाने के लिये छुट्टी ली थी, वह हजरत जो अपने को मेरे काबिल समझते थे, उस दिन मौका पा गये थे।

मैं कैंटीन से निकली थी, उन्होने पीछे से आवाज दी थी—सुनिये !

मैं रुकी थी। वह नजदीक आए थे और बोले थे—आप बुरा न मानिये तो मुझे आपसे बात करनी है। टाइम दे सकेंगी।

—अभी लच खत्म होने मे वक्त है, कहिये ! मैंने सख्त शब्दों मे कहा था।

—तो कुछ नही कहना। सॉरी !

वह जाने के लिये पलट गया था।

—कहिये ! चल क्यों दिये ? मैंने एक तरह से आवाज देते हुए उससे कहा था, हालांकि यह ऐसी आवाज नही थी कि दूसरा कोई सुन पाता।

वह लौटा था।

—कहिये ? मैंने फिर दोहराया था।

—आप अपने माथे की शिकनें और बोलने की सख्ती को हटाइये तब कहूँ।

—फरमाइये ?

—मेरे डैडी फिनान्स मिनिस्ट्री मे गजेटेड आफीसर हैं।

—जी !

—मैं एम.एस-सी हूँ,

—जी !

—अगर मैं आपसे मैरिज का प्रपोजल रखूँ तो आपकी क्या राय होगी ? मैं उसकी शक्ल को देखते और उसकी हिम्मत पर आश्चर्य करने लगी।

—आप मेरे डैडी से कहिये।

—वह तो मेरे डैडी आप के डैडी से बात करेंगे। आपकी क्या राय है ?

—मेरे डैडी की राय, मेरी राय है। मैंने हड़बड़ा कर उसे उत्तर दिया।

—बड़ी पुरानी हैं, आप ! सॉरी। अगर आपको प्रपोजल पसन्द आए तो कल जवाब दे दीजियेगा। मुझे सिर्फ़ क्लर्क मत समझियेगा, मैं बहुत महत्वाकांक्षी हूँ। मैंने बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन का कोर्स भी कर रखा है, मौका लगते ही यह जॉब छोड़ दूंगा। शायद आप सोचने के लिये टाइम चाहेंगी। जवाब के लिये कल की जल्दी नहीं है। थैंक्यू !

—धन्यवाद ! मेरे मुँह में रह गया। वह चला गया। मैं हक्की-बक्की-सी कुछ पलों के लिए वहीं खड़ी रह गई।

उसके बाद मैंने उसे अपनी तरफ देखते कभी नहीं पाया। पहले वह कैन्टीन में जिस तरह कोण बनाकर बैठता था, उस तरह नहीं बैठा। अक्सर मेरी नजर उसको ढूंढ़ती। चौथे-पांचवें दिन वह दीख जाता।

मैंने दूसरे दिन ही शची को उसकी सारी बातें बता दी थीं। शची ने सिर्फ इतना कहा था कि है तो वह तुम्हारे लायक, लेकिन मैं कुछ नहीं कहूँगी। तुम समझोगी अपनी तरह तुम्हें बनाना चाहती हूँ।

मुझे उसमें गम्भीरता और साफगोई लगी थी। कमाल का आत्म-विश्वास था। उसने मुझे 'पुरानी' कहकर जैसे गाली दे दी थी। मैं यह कैसे जानती कि वह कितना 'नया' है ?

शची ने सुझाया कि मैं उससे मौका निकाल कर मिलूँ और उसको समझूँ। कहीं वह सिर्फ हावी होने के लिए तो ऐसा नाटक नहीं खेल गया ? मैंने चाहा कि मैं उसको तवज्जेह नहीं दूँ। लेकिन उसकी वह उपेक्षा, मुझे छोटा करने की कोशिश, मुझे सालने लगी। कई दिन तक, बल्कि तकरीबन महीने भर तक, मैं उस घटना को घोटती रही। आखिरकार मैंने तय

किया कि जब मैं उसके उस उजड्ड व्यवहार को माफ नही कर सकती तो उसकी कलई खोलने की चुनौती क्यो न लूं। मैं इस निर्णय पर पहुँच गई कि उसके उस दबगपने का उसी तरह से भुगतान करूँगी। मेरी कमजोरी है कि जो चुभ जाये उसे निकाले बगैर चैन नही पडता। यह चुनौती मुझे हमेशा फर्स्ट लाती रही और कॉलेज में कई कम्पटीशन जिताती रही। मैंने सोचा पहले पूछूंगी आपकी एम एस-सी मे कौन-सी क्लास थी?

हालांकि यह शची का ही सुझाव था कि मैं उससे मिलूं, और उसे समझूं, लेकिन मैंने पता नही क्यो सोचा कि मैं उससे मिलूं भी लेकिन शची से छिपाकर। वह पहला ऐसा लडका था जिससे मिलने का मैंने तय किया, मम्मी-डैडी की चोरी से। और मैंने मौका निकाल कर उसको वक्त और रेस्त्रा का नाम बता दिया था जहाँ उसे अकेले, बिना किसी को बताये, आना था।

वह निश्चित समय, निश्चित जगह, मुझसे पहले पहुँच गया। वह रेस्त्रा के बाहर खडा मेरा इन्तजार कर रहा था। मैं जितनी अन्दर से मजबूत थी, उतनी-ही घबरा भी रही थी। उसने मुझे देखा और बडी शिष्टतासे नमस्ते की।

मैंने जवाब दिया और उसके साथ ही अन्दर चलने के लिये कहा।

दोनो ने अकेली सुरक्षित मेज ढूंढी। वैसे भी दोपहर का वक्त था, इसलिये भीड नही थी। मुझे इस बात से भी तसल्ली हुई।

—क्या लेना पसन्द करेंगी? होट या कोल्ड।

—कुछ भी। मैं पता नही क्यो हताश-सी हो रही थी।

—आप अपनी कोई पसन्द नहीं रखती हैं? उसने जैसे मेरा हाथ उमेंठ दिया हो।

मैं सँभली।

—कॉफी! मैंने दृढता से जवाब दिया।

—यह बात हुई ना।

इस बीच बैरा आ गया था। उसने दो दोसे और बाद में कॉफी लाने का ऑर्डर दे दिया। बैरा चला गया।

अब वह चुप था और मैं भी। मुझे सूझ नही रहा था कि कैसे शुरू

होऊँ। उसको शुरुआत करने का मौका दिया।

वही बोला—शायद मेरी उस बात के बाद हम डेढ महीने में मिल रहे है।

—जी, मैंने सोचा किसी बात को अधूरी क्यों छोडा जाये।

—इसके मतलब हैं आपने मेरे प्रपोजल पर काफी सोचा।

—आपकी उस गाली पर कि मैं 'पुरानी' हूँ।

—ओह, उस पर! वह खिलखिलाकर हँस पडा। मैंने उसकी तरफ़ कड़ी निगाह से देखा। तकरीबन डाँटती हुई-सी बोली—यह रेस्त्रा है!

—क्या रेस्त्रा मे हँसना मना है? उसने मुस्कराते हुए पूछा।

—मैं वैसी लड़कियों मे से नही हूँ। मुझे लगा मैंने एक तरह से उस पर दोष आरोपित किया जो असगत था।

वह गम्भीर हो गया।

फिर पल भर के लिये चुप्पी ठहर गई। वह मुझे देख रहा था और मैं उसको देख नही पा रही थी। मुझ मे दहशत-सी बैठ गई थी। इधर-उधर देख लेती थी कि कोई परिचित तो नही है।

—आप डर रही है। जिस लिये बुलाया है जल्दी कह डालिये, फिर चले चलते है।

उसका इतना कहना था कि मैं सन्ना-सी गई। गुस्सा आँखों में चढ आया—मै डरपोक हूँ! अगर डरती होती तो आपको इस तरह बुलाती! आप शायद जरूरत से ज्यादा 'नये' लगते है।

—क्या 'पुरानी' कहने का बदला है। आप शायद लडने आई है? उसने उसी हताश करनेवाली मुस्कराहट मे कहा। अगर आपको ऑब्जेक्शन न हो तो मै सिगरेट पी लूँ?

—दोसे और सिगरेट! मैंने अब उसको देखा।

—सिगरेट तो किसी चीज के साथ भी चल सकती है। उसने जेब से पैकेट निकाला और लाइटर से सिगरेट जलाकर पैकेट और लाइटर दोनों चीजों को मेज पर रख दिया।

बैरा दोसों के प्लेट रखकर लौट गया।

—खाती जाइये वरना ठडे हो जायेंगे।

मैंने कांटा और छुरी हाथ में ले ली। उसने सिगरेट के दो गहरे कश खींचे और उसे ऐशट्रे में बुझा कर डाल दिया।

—आपने एम. एस-सी किया है? कौन-सी क्लास में?

—इन्टरव्यू ले रही है? फर्स्ट क्लास से।

—मैं भी फर्स्ट क्लास एम. एस-सी हूँ। मैंने कहा, हालांकि मेरा मकसद पिट गया था। मैंने पूछा—आपने मुझ में क्या देखा जो एकदम मैरिज का प्रपोजल रख दिया? आप मेरे बारे में क्या जानते हैं?

—जितना देखा, उतना भर जानता हूँ। मुझे लगा आप मेरे काबिल हो सकती हैं, मैंने प्रपोजल रख दिया।

—यह कैसे मान लिया कि आप मेरे काबिल हो सकते हैं? मैं अब आक्रमक हो रही थी, जैसे कॉलेज में डिबेट में हिस्सा लेते हुए होती थी। झिझक टूट चुकी थी।

उसने दोसे के गस्से को खत्म करते हुए जवाब दिया—काबिल मान लेना अपराध तो नहीं है। मैंने आपकी राय भी तो जाननी चाही थी। आपने अपने डैडी को डाल दिया बीच में।

—और आपके ख्याल से यह 'पुरानापन' था। आपको अपने डैडी पर विश्वास नहीं होगा, मुझे है।

—क्या हमें डिबेट करनी होगी। वैसे मैं डिबेटर रहा हूँ—अच्छा डिबेटर।

—मैं भी रही हूँ। मैंने गर्व से कहा।

—देखिये कितनी समानता है।

—मेरा स्वाभाव बहुत तेज है। आपकी उस गाली ने मुझे वाध्य किया कि मैं आपको बता दूँ, मैं क्या हूँ।

—और बता दीजिये कि आप क्या-क्या हैं? वह मुस्कराया। मुझे लगा वह बिच्छू का डंक मार रहा है।

—आप मुझे निभा सकते हैं? मैं जानती हूँ मेरी गर्दन ऊँची खुल गई थी।

—क्या आप अपने को निभाये जाने योग्य नहीं समझतीं। वह क्यों इस तरह जवाब दिये जा रहा था।

—जो शख्श इस कदर टेढ़े तरीके से बोलता है, उसे निश्चित रूप से अपने पर बहुत ज्यादा गुमान है। आपको बताने आई थी यह तरीका किसी लडकी से मैरिज करने का नहीं है।

—इसलिये कि दूसरे लडकों की तरह मैंने आपकी खूबसूरती की तारीफ़ नहीं की? आपको लगातर देखकर, आपका पीछा करके, यह अहसास नहीं करवाया कि आप महत्वपूर्ण हैं? साफ़ कह दिया, उसमें आपको मेरा घमण्ड लगा। किसे नहीं होता? आपको नहीं है? आपने यही जतलाने के लिये मुझे बुलाया था कि आप भी कुछ हैं? वह कड़वा और तीखा हो गया।

—सॉरी। मुझे महसूस हुआ कि उससे ज्यादा मैं अशिष्ट और अहमी हो गई थी।

बैरा कॉफ़ी ले आया था। रखकर चला गया। उसने दोसे को छोड़ कर कॉफी का घूंट भर लिया था।

दोनों के बीच के तनाव ने फिर चुप्पी पैदा कर दी। थोड़ी देर बाद वह शान्त होकर बोला—हम पढ़-लिखकर भी इस क़ाबिल नहीं हो सके कि अपनी जिन्दगी के हिस्सेदार का सोच-समझ कर चुनाव कर सकें। या तो हम माँ-बाप पर छोड देंगे, या तकदीर पर। मैंने समझदारी चाही थी आपसे। ख़ैर, आपका जवाब मिल गया।

मैं ढूंढना चाह रही थी कि मुझे उसके चेहरे पर किसी तरह की उदासी या प्रस्ताव के ठुकराये जाने का दुःख मिले। लेकिन वह पहले की तरह मुस्करा रहा था। दोसे और कॉफ़ी को खत्म करके हम उठे। वह काउन्टर पर चुकारा कर आया।

—चलिए! उसने कहा और हम दोनों बाहर निकल आए।

—मैं अपने डैडी से कहकर आपके डैडी तक पहुँच जाता, लेकिन शायद आपके लायक और मेरे लायक आप नहीं हैं। अपने को और अपने दिमाग को खुला रखने का अभ्यास करिए।

वह अपने स्कूटर तक गया। उसने मुझसे पूछा कि क्या वह पहुँचा दे!

मैंने मना कर दिया।

उस दिन के बाद वह जैसे बिल्कुल बदल गया था। वह दफ्तर में ही था। कभी सामने पड भी जाता तो बिल्कुल अजनबी-सा होकर निकल जाता।

शची को आने वाले लोगों ने पसन्द कर लिया था। जैसा शची कह रही थी। उसने एक बच्ची के पिता से शादी कर ली थी।

मैं नही समझ पाती कि उन दो मुलाकातों का ऐसा कौन-सा रिश्ता था जो आज तक गुम नही हुआ है। मेरे दिमाग में उसकी वही खूबसूरत शक्ल और दो-टूक की बेबाकी आज तक है। वह आज तक उसी तरह से जवान और आकर्षक है! कोई अहसास कितना अछूता और अक्षर होता है। वह भी तो मेरी तरह खिचड़ी बालों वाला अधेड हो गया होगा। लेकिन जब तक पहला अहसास नही टूटे वह तो नश्वर रहेगा।

क्या जब वह समझदार था, मैं नासमझ थी? कभी-कभी कल्पना करने को मन करता है—मान लूं कि मैंने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया होता?

लगता है कि मेरी जिन्दगी बहुत सुखी होती उसके साथ क्या पता ..?

लेकिन यूँ आकाशी सतह को सरोवर के पानी की सतह मान लेने से कौन-सी प्यास बुझती है? यह सच है कि उसे भूल नही पाई।

बैठे-बैठे, थकान-सी महसूस होने लगी है। पलकें भारी हो रही हैं। मैं कुर्सी को पीछे धक्का देकर खडी होती हूँ। खिडकी बन्द करती हूँ। टेबिल लैम्प को बुझा कर हल्के हरे रंग का जीरो वाट का बल्ब जला देती हूँ। मैं पलंग तक आ जाती हूँ और लेट जाती हूँ। आँखें अब खुली नही रह सकती। खाली-से दिमाग के साथ सो जाती हूँ। किर्र - किर्र...रिर्र...घंटी बजे जा रही है।

—आई! मैं अध-नींद में कहती हूँ, ड्राइंगरूम में जाकर दरवाजा खोल देती हूँ। पार्वती अन्दर आ जाती है। मैं फिर लौटकर पलंग पर पड जाती हूँ।

सुबह हो गई है, लेकिन मेरी नींद अभी पूरी नही हुई है।

अब रोज की तरह आधे सोने और आधे जागे रहने की स्थिति चलती

है। पार्वती झाड़ू-बुहारी और दूसरे काम करती रहती है। दूध वाला आया। डबल रोटी वाला आया। अखबार वाला आया। पार्वती किचिन मे चाय बना रही है। मैं बिल्कुल आराम की स्थिति मे पड़ी हूँ। नीद की खुमारी भी है और हो रहे काम की चेतना भी।

—बीबी जी चाय!

—रख दो!

पार्वती ट्रे रखकर चली जाती है।

मैं कुछ देर लेटी रहकर उठती हूँ, पलँग के सिरहाने का सहारा लेकर बैठती हूँ और केटली से प्याले मे काली चाय उडेल कर उसमे चीनी और दूध मिलाती हूँ। पहले सिप के साथ मेरी सुबह शुरू होती है।

मैं ताज़ी हूँ। हर रात सपने की तरह बीतती है और दूसरा दिन सुबह के साथ मुझे पुनर्जन्म-सा देता है। मुझे अक्सर लगता है जैसे मैंने एक पोशाक को छोड़ा हो और सुबह होते-होते दूसरी को पहिन लिया हो।

पार्वती चाय को ट्रे के साथ-साथ अखबार रख देती है। उसे मेरे उठने से लेकर दफ्तर जाने तक और शाम को मेरे लौट के आने से खाना खाने तक का कार्य पता है। वह मशीन की तरह क्रमवार काम करती जाती है और मैं पटरियों पर चलती हुई ट्रालो की तरह क्रमवार चलती रहती हूँ। पार्वती मेरी गृहस्थी चलानेवाली ऐसी औरत है जो घर की है, नही भी है। मेरे लिए वह ज़रूरी है। उसके लिए मेरे द्वारा दिये जानेवाली महीने की तनख्वाह। कितना साफ सम्बन्ध है।

मैंने अपने यहाँ काम करने वाली नौकरानी का जब एक बिम्ब जानना चाहा तो हमेशा ऐसी औरत का चित्र उठा जिसका एक पैर चौखट के अन्दर है और एक बाहर।

जो भी हो, उसे मेरी गृहस्थी का अंश बनना होता है और परायी भी। मेरी खुद की भी आदत पड़ गई है—जो नौकरानी जब तक रहे वह मेरी सरक्षिका है, पूरक है; उसके बाद वह बिल्कुल गैर हो जाएगी। क्योंकि वह जब तक थी तनख्वाह के लिए थी, उसके बाद उसका दूसरा पैर भी बाहर है।

मैंने दूसरा कप और बनाया और अखबार पढ़ती रही।

घड़ी नौ बजा रही है। रोज की तरह उठती हूँ। निवृत्त होने से लेकर कम्पनी जाने की तैयारी तक के लिए कार्य में लग जाती हूँ।

इस बीच में पार्वती खाना बना लेगी। मैं जब तक नहा-धोकर, कपड़े बदलकर बिल्कुल तैयार होऊँगी पार्वती मेज पर प्लेटें लगा देगी। मैं मेज पर बैठूँगी खाना अपनी भिन्नताओं के साथ मेरे सामने आ जाएगा।

कितनी खूबसूरत ज़िन्दगी है, जैसे ड्राइगरूम की किनारे वाली मेज पर रखी वीनस की संगमरमरी मूर्ति। उसको मेज़ का सहारा चाहिए, मुझे पार्वती का, किसी भी मेज़नुमा नौकरानी का, जिसके बगैर मैं, वीनस, वीनस नहीं लग सकती।

लोग कहते हैं कि मैं कितनी मुक्त हूँ, सुखी हूँ!

मैं तैयार होकर आ गई हूँ, पार्वती ने मेज़ पर प्लेटें नहीं लगाई हैं। मैं कुर्सी पर बैठते हुए पुकारती हूँ—पार्वती!

—लाई बीबी जी!

वह जल्दी-जल्दी आती है और मेरे सामने प्लेट लगाती है। मैं पार्वती को देखती हूँ। वह लौट जाती है, रोटी लाती है।

दाल से पहला गस्सा लेती हूँ, नमक नहीं है। सब्जी चखती हूँ उसमें भी नमक नहीं।

—पार्वती!

—जी। वह चावल लेकर आती है।

—न दाल में नमक है, न सब्जी में। मैं उसे फिर देखती हूँ। पार्वती से सामान्यतः ऐसी चूक नहीं हुआ करती।

—मैं ला रही हूँ बीबी जी। भूल गई।

वह फिर चली जाती है। मैं भाँपती हूँ, वह परेशान है। क्या इसके आदमी की तबीयत ज्यादा खराब है? वह परसों कह रही थी उसको बुखार चढ़ गया है। उस दिन वह शाम को छुट्टी लेकर गई थी।

पार्वती नमकदानी लेकर आती है। नीची गर्दन किए नमकदानी रख देती है, अपनी गलती को स्वीकार करते हुए। जाने को होती है जैसे अपने को मुझसे चुरा रही हो।

—तुम्हारे आदमी की तबीयत कैसी है?

—अब ठीक है बीबी जी। वह रुक जाती है।

—फिर क्या बात है?

पार्वती जवाब नहीं देती। वह टपटप रोने लगती है।

—क्या हुआ?

वह पल्ले से आँखें पोछती है।

—रुपये की जरूरत है?

वह एकदम कह उठती है—बीबी जी, मैं मुसीबत मे पड़ गई। पता नही यहाँ रहूँ, या ..

—क्यों? मेरा खाना रुक जाता है।

—बीबी जी, आपको बता दूँगी, फिर चाहे आप निकाल देना मुझे। उसके फिर आँसू आ जाते है।

—बताओ तो! मुझे झूँझल आ जाती है।

बीबी जी मेरा पहला आदमी दो दिन से आया हुआ है। पता नही उसे मेरा कैसे पता लग गया। वह मुझसे रास्ते में मिलता है और साथ चलने के लिए धमकाता है। मैं उसके साथ नहीं जाऊँगी बीबी जी, वह बड़ा कमीना है, नीच है।

मुझे यह भी नही पता था कि जो आदमी बीमार है वह उसका पति नही है। पार्वती मेरे पास साल भर मे काम कर रही, उसने कभी ऐसा जिक्र नही किया।

पार्वती अपने आप बोली—बीबी जी, मै बड़ी मुसीबत से इससे पीछा छुड़ा कर भागी थी। यह मुझसे पेशा करवाना चाहता था। इसने मुझे मारा-कूटा मैं नही मानी। एक दिन पैसे लेकर एक आदमी को घर ले आया। मैंने उस आदमी को मार कर भगा दिया। इसने उस दिन मुझे मारा तो मैंने भी इसकी खूब पिटाई की। फिर मैं मौका देखकर शिवपाल के साथ भाग आई।

—तू सच कहती है।

—भगवान की कसम खाकर कहती हूँ बीबी जी। मैंने शिवपाल को नही बताया है। उसका बुखार पूरी तरह टूटा नही है। उसे बता दिया तो वह उसे जान से ही मार डालेगा—बीमार है तो क्या।

—रोटी लाओ ! यह ठंडी रोटी ले जाओ। मैंने अपने को सँभालने के लिये पार्वती को हटाया। मैं खाना खाने लगी। एक इच्छा हुई कि किस झंझट में पड़ूँ। लेकिन पार्वती की हालत देखकर दूसरी तरह से सोचने लगी। कोई तरकीब सूझ नहीं रही थी। मैंने चुप्पी साध ली। पार्वती ने रोटी लाकर दे दी। वह भी नहीं बोली। शायद वह सोच रही थी कि मैं उस पर नाराज हो रही हूँ। मैं उसकी मदद करने को तैयार नहीं हूँ।

मैं उसी तरह खामोशी से खाती रही, फिर उठी और शैंक तक आकर कुल्ला किया। ड्राइंगरूम में आकर बैठ गई।

पार्वती डर के मारे सामने नहीं आई।

मैं सोच रही थी कि वह उसका असली पति है। शिवपाल जिसको अब तक वह पति कह रही थी, जिसके साथ रह रही थी, कानून उसका कुछ नहीं हो सकता। क्या मिसेज नागपाल को टेलीफोन कर दूँ, वह महिला परिषद की प्रेसीडेन्ट है। लेकिन वह पार्वती जैसी गरीब औरत का मामला क्यों लेंगी हाथ में ? अगर पार्वती ठीक कहती है कि वह उससे पेशा करवाना चाहता था, तो इसका भी सबूत वह कैसे दे सकती है ? मैं निर्णय पर पहुँची कि सिर्फ पुलिस की धमकी काम कर सकती है या उसके असली आदमी को जाल में फँसाया जाय। इतनी देर में मैं समस्या का हल निकाल ले गई। मैंने पुकारा—पार्वती ?

पार्वती आई। वह उदास थी। वह सहमी हुई थी।

मैं उससे कुछ कहने को होती हूँ कि नीचे कार का हॉर्न बजता है।

—देखो कौन है ?

पार्वती खिड़की में से देखती है। नीली कार है, बीबी जी।

—अच्छा, मिश्रा जी हैं, जा, बुला ला ऊपर, अभी टाइम है।

पार्वती नीचे जाती है, मिश्रा साहब को बुला लाती है।

—अभी तो टाइम है। कॉफी चलेगी।

—चल जायेगी। मिश्रा साहब सामने के सोफे पर बैठ गये। मुझे देखते हुए बोले, बड़ी सीरियस हो रही हैं। ह्वट्स द मैटर ?

—पार्वती कॉफी बना लाओ ! मैंने कहा। उसके जाने के बाद मैं मिश्रा साहब की तरफ हुई—एक बड़ी फनी प्रोबलम खड़ी हो गई है। मेरी

यह नौकरानी है जो अभी अन्दर गई है। इसका पति इससे पेशा करवाना चाहता था। यह छोडकर दूसरे आदमी के साथ भाग आई। उसके साथ डेढ-दो साल से रहती है वाइफ़ की तरह। वह पहला हस्बैंड किसी तरह पता लगा कर इस शहर मे आ गया है। वह इससे मिला और इसे अपने साथ ले जाने की जिद कर रहा है। यह औरत उसके साथ जाना नही चाहती। आप बताइये, इसे कैसे बचाया जा सकता है?

मिश्रा साहब बोले—इसमे क्या है? जाल बिछाइये, बदमाश अपने आप फँस जायेगा।

—आप तो माहिर है जाल बिछाने मे, तभी तो आपकी सलाह ले रही हूँ। मैंने चुटकी ली।

—देखिये; औरत चाहे तो क्या नहीं कर सकती है। और आदमी को तो सैकन्ड्स मे बेवकूफ बना सकती है। इससे कहिये असली आदमी को फुसलाये। दूसरे आदमी की बुराई करे। कहे कि यह भी पेशा करवाता है। बड़ा जालिम है। मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। अब पेशा करने को तैयार हूँ। यहाँ करती हूँ, तो तुम्हारे साथ रहकर क्यों नही करूँ। चलने से पहले एक-दो पछी फँसा लाओ। रुपया हो जायेगा, तो मन चाहे जहाँ चलेगे। आपको मानना चाहिये कि वह आदमी ऐसा करने को तैयार हो जाएगा। ठीक उस समय पुलिस से पकडवा दीजिये जब वह ग्राहक लाये। चलिये आज यह एडवेन्चर कर लें। दफ्तर लेट सही।

—ग्राहक आप बन जाइयेगा। मैंने मिश्रा साहब को उड़ाया।

—असलियत मे या नकली। मिश्रा साहब ने आदत के मुताबिक बाई आँख छोटी करते हुए कहा।

—देख लीजिये। स्टेटस और स्टेन्डर्ड। मैंने व्यग्य में कहा।

उन्होंने तपाक से जवाब दिया—अपने तो भेद-भावों से परे है।

पार्वती कॉफी ले आई।

जैसा मिश्रा साहब ने सुझाया वैसा मैंने पार्वती को समझा दिया। वह वैसा करने के लिये तैयार हो गई। मैंने हिदायत दी कि सँभल कर नाटक खेले। मैंने वह जगह पूछ ली जहाँ वह पार्वती से मिलता है। उसने बताया कि जब वह शाम को मेरे यहाँ काम करने आती है—पाँच बजे; वह उस

वक्त रास्ते में मिलता है।

कॉफी पीकर मैं और मिश्रा साहब कार मे चल दिये। रास्ते में मिश्रा साहब ने सिर्फ इतना कहा—आपकी नौकरानी है तो झगडे के लायक।

मैंने हँसकर कहा—उन पर तो कृपा दृष्टि ही रखियेगा। वरना मुझे होटल का मुँह देखना पड़ेगा।

मिश्रा साहब ठहाका मारकर हँसे। बोले—औरत जलती कितनी है, दूसरी औरत से।

—जी, और मर्द क्या करते है, यह देख लिया। खुद का वश नही चले तो पेशा ही करवाओ।

मिश्रा साहब ने पहले मुझे मेरे ऑफिस के सामने उतारा। मैं दो बजे आ रहा हूँ। बी रेडी। पुलिस को इत्तला कर दूँगा। उन्होंने अन्दर बैठे-बैठे कहा।

वह कार स्टार्ट करके चले गये।

इस इमारत के नजदीक आते ही कुछ आदतन क्रियाएँ होती है, उनका होना शुरू हो गया। मेरा हाथ दायें कंधे पर लटके थैलेनुमा पर्स मे जामा करता है और रूमाल निकाल लिया करता है। यह रूमाल चेहरे तक जाया करता है और धीरे-धीरे मेकप को थपका करता है। जब तक फाटक मे घुस कर बायी तरफ की लिफ्ट के सामने पहुँचती हूँ वही हाथ रूमाल से खाली होकर, धूप के चश्मे को बिला जरूरत छूकर नाक के खाँचे मे ठहराता है—जैसे वह जगह से हट गया था। लिफ्ट जब तक चौथे फ्लोर पर पहुँचाती है, स्वभावत मैं बदल चुकी होती हूँ। जब मैं उस हॉल के सामने होती हूँ जिसमें अलग-अलग मेज़ो पर, दीवारो के सहारे बनी केबिनो मे, कम्पनी के कर्मचारी काम करते होते है, तब तक मेरे चेहरे पर सीरियसनेस, अफसरी गरिमा, ऊँचे होने की भावना खुद-ब-खुद उभर कर आ चुकी होती है। आदतन मैं होठो पर कृत्रिम मुस्कान और देह मे चुस्ती का तनाव लिये हुए हॉल को पार करके अपने कमरे के सामने पहुँचती हूँ जिस के सामने बैठा हुआ चपरासी खडे होकर मुझे सलाम करता है। मैं उसी तरह से ज़रा-सी गर्दन नीचे करके उसके सलाम को स्वीकार करती हूँ जैसे दूसरों का अभिवादन स्वीकार करती हुई अभी आई हूँ। मैं अपने

कमरे मे आकर अपनी सीट पर बैठ जाती हूँ। एक सहज क्रिया के पूरी होते-होते मै अपनी सीट के अनुरूप हो जाती हूँ—हो गई। मेरा कंधे से लटका पर्स दायें हाथ की तरफ़ के रेक पर उतरकर पहुँच जाता है। मैं अब फ़ाइल्स देखने लगती हूँ और सामने रखे तारीख वाले कागज को पढती हूँ कि कौन-कौन मे काम आज के लिये निश्चित है। हां, सन गॅगेल टेलीफोन की बगल मे अपनी जगह पहुँच गया है।

मैं थोडी देर बाद बज़र दबाती हूँ।

चपरासी आता है।

—स्टेनो-बाबू को भेजो। मैं फाइल से बिना नजर हटाए कहती हूँ।

वह जाता है और स्टेनो-बाबू आ जाता है।

—बैठो।

वह एक तरफ कुर्सी पर बैठ गया है। मेरे बोलने का इन्तजार कर रहा है।

मैं फ़ाइल मे लगे उस खत को पढती हूँ, जिसका जवाब लिखवाना है। बता देती हूँ कि उस कम्पनी को जाना है। फिर बोलना शुरू करती हूँ।

उसकी पैन्सिल कॉपी पर चलने लगती है।

बीच-बीच मे मेरी नजर उसको देखती है। आज नीली बुंदकियों की बुशर्ट पहिनकर आया है। रोज बदल-बदल कर आता है। स्मार्ट लगता है। अभी उम्र पच्चीस से ज्यादा नही लगती।

मैं उसे पूरा खत बोल देती हूँ।

यका-यक किसी दूसरे महत्वपूर्ण खत की याद आती है। पूछती हूँ—वह 'सिरिल' वालों का जवाब आया या नही? पता करना।

—जी!

ऊपर वाली फाइल को हटाकर, दूसरी फाइल ले लेती हूँ। उसे खोल-कर उसमे लगे जरूरी पन्ने को देखती हूँ।

—यह कम्पनी 'बोगस' लगती है, क्या ख्याल है तुम्हारा?

—कौन सी? वह सिर उठाकर पूछता है।

—'कार्मिक एण्ड को'।

—इन्होंने हमारी कन्डीसन्स भी पूरी नही की है।

—तभी तो मुझे डाउट हुआ। मैं सोचने लगती हूँ। मेरे हाथ का पैन मेरे होंठों को ठकठका रहा है।

इनको साफ लिख दें कि अस्सी प्रतिशत एडवान्स के बगैर हम ऑर्डर पूरा नहीं कर सकते।

—जी, ठीक रहेगा। वह लिखने के लिये फिर झुक जाता है।

मेरा ध्यान उसके बड़े-बड़े बालों पर जाता है।

—तुम इन बालों को क्यों नहीं कटाते? कितने बड़े रख रखे हैं।

—जी? वह मेरी तरफ देखता है, फिर जवाब देता है—आप कहती हैं तो कटा लूंगा।

—आई सजेस्ट। वैसे तुम्हारी इच्छा है। तुम वैसे ज्यादा हैन्डसम लगोगे।

—वह शर्मा जाता है।

—डोंन्ट माइन्ड इट। मैं जवाब बोलना शुरू करके उसे परेशानी से उबारती हूँ। वह लिखने लगता है।

मैं फिर उसे उसके अनजाने मे देखने लगती हूँ। भोला चेहरा। गदुम रंग। खींचने वाला नक्श। कभी-कभी यह बहुत भाता है। लेकिन तभी मैं अपने को छिपा ले जाती हूँ। मैं बचती हूँ कि कहीं वह मेरी चोरी को जान न ले। मैं सामने देखते हुए खत बोलने लगती हूँ।

खत खत्म करके मैं कहता हूँ; बस। वह खड़ा हो जाता है।

—जा सकता हूँ। वह मुझे देखते हुए पूछता है।

मैं मुस्करा कर जवाब देती हूँ—हाँ।

वह जाने को होता है। दरवाजे तक नहीं पहुँचता कि मुझे ख्याल आता है—मुझे दो बजे जाना है।

—राजेश!

लौटता है—जी!

—पहले लेटर को जल्दी टाइप करके लाना। मुझे दो बजे के करीब जाना है।

वह कहता है—जी। फिर जाता नहीं किसी दुविधा में पड़ता है, फिर पलटकर कहता है, मैडम, आज मुझे भी जल्दी जाना था। पर्मीशन दें

दीजियेगा ?

—मौका देख रहे थे ?

—जी नहीं; जाना ही था।

—क्यों ? शो देखने।

वह नर्वस हो जाता है। उसका चेहरा लाल हो जाता है। रहने दीजिये। कहता हुआ जाने के लिये घूम जाता है।

—सुनो ! . चले जाना। सिर्फ़ आज। मेरा गैस ठीक है ना ?

—यस, मैडम ! वह मानता हुआ चला जाता है। मैं उसे मुस्कराते हुए देखती रहती हूँ।

मैंने एक दिन इससे कहा था मुझसे कभी झूठ मत बोलना। मुझ पर बहाना मत लगाना। यह सब से सचेत है। जैसा होता है कह देता है। मैंने कहा है, यह कल बाल कटा लेगा। वैसे है बहुत चंचल लेकिन मेरे सामने कैसा भोला बनकर आता है। कभी-कभी इस कदर छू जाता है कि मुझे अपने पर काबू लेने में दिक्कत होती है। मैं जानती हूँ क्यों ? लगता है कि अगर मेरे कोई अपना होता तो...जैसे ही मुझे लगता है कि मैं इसके पास पहुँच गई हूँ, मैं इतनी ज़ोर से उल्टी भागती हूँ कि इसकी आन्तरिक घुटन से बाहर हो जाती हूँ। मैं फिर अपने को ढक लेती हूँ। ढेक लेती हूँ।

—चपरासी एक परिचय-कार्ड देता है।

—भेज दो ! मैं फ़ाइल हटाकर सँभलती हूँ। एक महाशय बैग लिये अन्दर आते हैं।

—गुड मोर्निंग ! आइ एम फ्रोम 'ज्यूक-बोक्स एण्ड को'।

—बैठिये।

वह अपने बैग में से दो कैटलॉग निकालते हैं और उनको खोलकर मुझे दिखाना शुरू करते हैं। यह हमारे द्वारा तैयार किये गये नये मोडेल्स हैं। पुरानों में भी तब्दीलियाँ की गई हैं। देखिये, कितने एट्रेक्टिव हैं। ड्यूरेबिल भी हैं। अब की आपका कोटा ज्यादा बढ़ाया जा सकता है।

मैं कैटलॉग को ध्यान से देखती हूँ।

—अब की कम्पनी को कुछ प्राइसेज बढ़ानी पड़ी हैं। मजबूरी थी। रॉ मैटीरियल की कीमतें बढ़ने की वजह से ऐसा करना पड़ा। महाशय

कहते हैं।

—पिछले साल आपकी सप्लाई ने हमें बहुत मुश्किल में डाला। आखिर हम भी तो वर्डस से बधे होते हैं—कितनी गुडविल खराब होती है जब हम अपने ऑर्डस तारीखों पर पूरे नहीं कर पाते। मैं शिकायत के लहजे में कहती हूँ।

—मैडम रॉ मैटिरियल और जरूरी पार्टस एवेलेबिल नहीं हुए। आप जानती है कुछ पार्टस के लिये हमें फॉरेन पर डिपेन्ड रहना पड़ता है, वे डिडिन्ट सप्लाई अस इन टाइम। जब उन्होंने हमें वक्त पर सप्लाई नहीं किया तो हम कैसे मैन्यूफैक्चर करते। अगले दो साल में हम इन पार्टस को अपने यहाँ बनाना शुरू कर देंगे, तब आपको शिकायत नहीं होगी।

—आप मिस्टर घोष से मिले ?

—आप अप्रूव कर दें, उनसे तो मिल लूंगा।

—आप ऐसा करिये, उनसे ही मिल लीजिये। वह मुझसे पूछेंगे तो मैं बता दूँगी।

—आप विश्वास करिये अब की आपको दिक्कत नहीं होगी। आप की कम्पनी की नाराजगी की वजह से मुझे भेजा गया है। यू जस्ट गिव अस वन मोर चान्स।

—आप घोष साहब से मिल लीजिये। ही इज 'फाइनल से'।

—आप तो सिफारिश कर दीजिये। मैडम हमारे लिए तो आप ही 'फाइनल से' है।

—डॉन्ट बी टू फ्लेटरिंग। मुझे गुस्सा आ जाता है। हम जब अपने टर्म्स क्लियर रखते हैं तो क्या आपकी कम्पनी से आशा नहीं कर सकते ? पिछली बार हमें आपके आइटमों को दूसरे लोकल डीलर से खरीद कर देना पड़ा। वह आप ही के आइटम्स का दूसरी मैन्यूफेक्चरिंग कम्पनी का होल सेल एजेन्ट था। हमारी पोजीशन कितनी ऑकवर्ड हुई ? मैंने घोष से रेलशन स्नेप करने को कह दिया था।

—मैडम, इसीलिए मुझे भेजा गया है। आप हमारे पर विश्वास करिये। आप कनविंस होइए तो मैं घोष साहब से बात करूं। आप जो भी दूसरी सुविधाएँ चाहेंगी, हम देंगे।

—मैं एश्योर नही कर सकती, आप बॉस से मिल लीजिए। थैन्क्यू।

—मैं कैटलॉग स्टडी कर लूँगी।

—मैं फाइलो मे से एक फ़ाइल उठा लेती हूँ और देखने लगती हूँ। वह थोड़ी-सी देर मेरी तरफ से प्रतिक्रिया का इन्तजार करता है फिर धीरे से खडा होकर जाने के लिए पूछता है। मैं गर्दन हिला कर उसको जाने की इजाजत दे देती हूँ। उसके जाते ही अपने तनाव को हल्का करने के लिए आराम की हालात मे हो जाती हूँ।

बजर बजाती हूँ।

चपरासी आता है।

—पानी।

—चपरासी चला जाता है। ट्रे मे पानी ले आता है। मैं गिलास रख जाने का इशारा करती हूँ। वह गिलास ढक कर रख जाता है।

—मैं घोष साहब को रिंग करती हूँ।

—घोष साहब 'ज्योक वौक्स' वाला आया था। आइ हेव टेकेन हिम टू टास्क। नही-नही मैंने किसी तरह का एश्योरेंस नही दिया है। जी ..जी, लेकिन उससे डील तो करना पडेगा। इन आइटम्स के दूसरे मैन्यूफैक्चरर अपने पहले होलसेल डीलर को छोड़ने को तैयार नहीं है। कम्पटीशन मैनटेन करने के लिए इसके माल को खरीदना तो होगा। आप टेपिटकली डील करियेगा। मै काफी हार्श हो गई थी। जी ..जी! वह आपके पास पहुँच ही रहा है। और घोष साहब, मुझे आज कोई जरूरी काम है, दो बजे जाऊँगी। उसे कल के लिए लटका दीजिएगा। हाँ, देख लूँगी ठीक-ठीक। आज ? शाम को ? ऑलराइट ! ऑलराइट ! नही...नही कोई इनकनवीनियन्स नही है। थैन्क्यू।

—मैं टेलीफोन रख देती हूँ। एक साँस-सी खीचकर बाहर आती हूँ। गिलास उठाकर पानी पीती हूँ। फिर आराम मे आती हूँ। लेकिन सोच रही हूँ कि घोष साहब ने कहाँ अटका दिया। आज ही उनकी बेटी की बर्थ डे पड़ती थी। सोचा था मिश्रा साहब के साथ शाम को पिक्चर देखूँगी। फिर अपने को समेट कर फाइलें देखने लगती हूँ।

राजेश लेटर टाइप करके लाता है।

मैं पढ़ती हूँ। दस्तखत करती हूँ। वह दूसरा भी बढ़ा देता है। उस पर भी दस्तखत करती हूँ। बजर बजाती हूँ।

चपरासी के आने पर दो कॉफी लाने को कहती हूँ।

बैठो !

वह बैठ जाता है। वह मुझे देखता है। उससे रहा नहीं जाता। पूछता है—मैडम, आप ऑफ है ?

—नहीं ! वह 'ज्यूक बॉक्स' वाला डिस्टर्ब कर गया। मैं झूठ बोल जाती हूँ। फिर पता नहीं क्यों अचानक उससे पूछ बैठती हूँ—तुम मेरे किसी सजेशन का बुरा तो नहीं मानते हो ?

—नहीं मैडम ! लेकिन मुझे आपसे डर जरूर लगता है।

—क्यों ? मैं आश्चर्य से उसे देखती हूँ।

—कि ऐसा तो कुछ नहीं कह दिया कि आप को फील हो गया हो।

नहीं-नहीं ! मैं मुस्कराती हूँ। थोड़ी-सी सामान्य होती हूँ। एक बात बताओगे ? मैं कई दिनों से पूछने को सोच रही हूँ।

—जी ?

—मैं कहीं-कहीं बहुत ओपिन हूँ। दफ्तर वाले मेरे बारे में क्या ओपीनियन रखते हैं।

—आपको हार्श समझते हैं।

—वह तो हूँ। होना पड़ता है।

—इसीलिए मेरे जरिये बात करवाना चाहते है। निगम जी भी कह रहे थे मैं उनके केस के लिए आप से कहूँ।

—वह आज जान खाने नहीं आए।

—छुट्टी पर है; सुना है तबीयत खराब है।

—मैंने उनसे हामी भर दी थी। मैं भला किसी के फायदे के बीच में क्यों आऊँगी। मैं सामने देखती हूँ। चपरासी कॉफी रख जाता है।

—मैडम, लोग इसके लिए जरूर कहते हैं।

—किसके लिए ? मेरी गर्दन भी उठकर जैसे सवाल करती है।

—कॉफी जो पिलाती हैं। वह सहजता से उत्तर देता है।

—बकने दो ! आइ डोन्ट केयर। पता नहीं क्यों मुझे एकदम गुस्सा

भर आता है। वह दहशत खा जाता है। मैं सँभलती हूँ।

—स्टेनो-बाबू अगर चौथे-पाँचवें दिन मेरे साथ कॉफी पी लेते हो तो इसमें क्या बात है ? लो, पियो ! मैं स्वाभाविक होने की कोशिश करती हूँ। प्याला उठाती हूँ। वह भी चुप-चाप अपना प्याला उठा लेता है। बोलता नहीं।

—क्यों ? खामोश क्यों हो गये। मैं मुस्कराती हुई पूछती हूँ।

—जी, कह नहीं सकता।

—श्योरली, तुम्हें बुरा लग गया। देखो, तुम्हारी तरह मैंने भी सोचा था कि आज शाम को पिक्चर जाऊँगी। लेकिन बॉस ने शाम को बुला लिया, उनकी बेटी की वर्थ डे है। तुम अपनी वर्थ डे नहीं मनाते ?

—जी नहीं। माँ-पिता जी मनाते थे, जब वह यहाँ नहीं है तो कौन मनाये। लगा जैसे वह एकदम उदास हो गया।

—तुम लोकल नहीं हो ? मेरा मतलब है यहाँ क्या कहीं दूसरी जगह से आए हो।

—जी ! नौकरी यहाँ मिल गई, आ गया। कमरा लेकर रहता हूँ। एक साथी और साथ में है।

—ओह ! तुम्हें बेकार घर का खयाल दिला दिया। देखो कितने महीनों से तुम ऑफिस में हो। मुझे आज पता लगा कि तुम अकेले रहते हो। वह भी जिक्र आ गया तो पूछ लिया। मैंने तो कॉफी खत्म भी कर ली।

—मैं इतनी जल्दी नहीं पी पाता। वह कुछ बोलने को हुआ, पर अपने को रोककर मुँह बंद कर लिया। मैं समझ गई कि यह किसी बात को दबा गया।

—तुम हिचक गये किसी बात पर। है ना ? मैंने जैसे उसकी चोरी पकड़ी हो।

—जी ! कहिये तो पूछ लूँ। हालाँकि आपकी छूट का नाजायज फ़ायदा नहीं उठाना चाहिये। आखिर आप मेरी···

—अफ़सर हूँ। सही है। इसका मतलब है कि मैं जब तक यहाँ रहूँ, इस सीट पर; एक तनाव को लिये रहूँ।

—मैं यही पूछ रहा था आप से। कभी आप मेरा नाम लेकर पुकारती है, कभी स्टेनो-बाबू कहती है। मुझे पहले मे अपनापन लगता है, दूसरे मे गैरपन। मैं जान नही पाता कि क्या रहूँ। राजेश या स्टेनो-बाबू ?

मैं एकदम धक्का-सा खाती हूँ। लेकिन फौरन बोल उठती हूँ—जैसा मुँह मे आता है निकल जाता है, कोई खास बात नही है। क्या हो सकती है ? सिवाय इसके कि जो जब निकल जाये।

मैं इतनी तेजी से अपने को ढकती हूँ जैसे मुझे डर हो कि कहीं वह मेरे अन्दर न झांक ले।

मुझे राजेश ही कहा करिये। या फिर सिर्फ स्टेनो-बाबू। दोनो मे से एक। वह यकायक खड़ा हो जाता है। मैं चलूँ, मेरी बदतमीजी को माफ करियेगा।

वह वास्तव मे निकल जाता है। उसके अचानक के इस व्यवहार से मैं जैसे सट्ट-सी रह जाती हूँ। वह शायद कहीं से दुःख गया। शायद वह उत्तेजित हो गया। मेरा हाथ बजर तक बढ़ता है, पर रुक जाता है। मैं उसको बुलाना चाहती हूँ। लेकिन इससे पहले कि मैं भी उसके मुकाबले का भावुक व्यवहार कर जाऊँ, मेरे अन्दर की रुकावट सबल हो जाती है। एक छिपाव प्रकट होते-होते मेरे द्वारा काबू कर लिया जाता है। मैं थोड़ी देर तक वैसी ही बैठी रहने के बाद सामने रखे हुए दोनों खतो को देखती हूँ। उन्हे बिना कारण पढ़ती हूँ। शान्त होकर बजर दबाती हूँ।

चपरासी आता है।

उसकी तरफ उन दोनों टाइप किये हुए खतो को बढ़ाते हुए कहती हूँ —स्टेनो-बाबू से कहो कि इनको लिफाफे मे बन्द करके आज ही भेज दें।

वह खत ले जाता है।

मुझे लगता है मैंने अपनी किसी कमजोरी को लिफाफे मे बन्द कर दिया है। हाँ, उस कमजोरी को जिसे मैं उसके सामने स्वीकार नहीं कर सकी। करूँगी भी नहीं।

मैं फिर फाइलों को निपटाने लगती हूँ पूरे ध्यान से, उत्तरदायित्व के साथ।

मुझे पता है कि मेरे चेहरे पर निश्चित रूप से फर्क आ गया है। वह

वैसा नही रहा है, जैसा थोडी देर पहले था।

घोप साहव भी कितने दिलचस्प इन्सान है। सुनाने बैठ जायें तो लतीफे पर लतीफे सुनाते जायें, लोगों के हँसते-हँसते चाहे पेट में दर्द हो जाये। जिसको बनाना चाहें, दो सैकण्ड मे बना दें। आज पता नही क्या सूझा कि मुझे ही निशाना बना लिया। पार्टी चल रही थी, उनकी मिमेज़ ने मुझे ड्रिंक ऑफर किया। मैं पहले ही काफी पी चुकी थी इसलिये उनमे मना कर दिया। घोप साहव को कहाँ चैन था। फौरन बोले—आप लोगों को एक किस्सा मुनाऊँ। एक राजकुमारी थी। उसे अपनी खूबसूरती पर नाज था। वह बला की खूबसूरत थी भी। उसका दावा था कि वह जिसको चाहे अपने असर में ले सकती है। वह जिससे जो चाहे करा सकती है। उसकी सहेली ने कहा, अगर आप उस खूबसूरत औरत को अपने हाथ में शराब दीजिये और वह ले ले तो हम जानें। राजकुमारी ने शर्त मजूर कर ली। वह शराब का प्याला लेकर उसके सामने गयी और कहा—लो! मैं इस देश की खूबसूरत राजकुमारी तुम्हे अपने हाथ से जाम दे रही हूँ।

वह औरत उनके मुँह की तरफ देखती रही।

उसने फिर कहा—देखा मैं अपने पतले-पतले कमल की नाल के-से हाथों से तुम्हे साथी बनाकर शराब पिला रही हूँ।

वह औरत राजकुमारी के हाथ को देखने लगी। उसने प्याला नहीं लिया।

राजकुमारी को अपनी हार दिखाई पडने लगी। तब एक वदसूरत-सी औरत आई उसने प्याला वढा कर कहा—लो राजकुमारी के हाथ का नही, मेरे हाथ का जाम पियो।

औरत ने नाक-भौं सिकोड़ी और फौरन उसके हाथ से प्याला ले लिया। उसने उस वदसूरत औरत की तरफ पीठ कर ली।

राजकुमारी झुंझलाकर बोली—मेरे हाथ से प्याला नही लिया, उस भद्दी औरत के हाथ का प्याला अच्छा लगा। तुम्हे खूबसूरती की इज्जत करनी भी नहीं आती।

यह बात नहीं है राजकुमारी। आप प्याला दे रही थी, मैं चेहरे पर

मोहित हो रही थी, आपने दूसरी बार कहा तो मैं आपके खूबसूरत हाथ देखती रह गई। शराब से ज्यादा आपकी खूबसूरती अच्छी लग रही थी। इस बदसूरत औरत को मैं देख नही सकती थी इसलिये इसका प्याला लिया और पीठ कर दी इसकी तरफ़।

घोष साहब मेरी तरफ प्याला बढाते हुए दूसरों से बोले—देखिये कितनी जल्दी यह प्याला लेती है और पीठ करती है। आपको यह भी साबित हो जाएगा कि मेरी मिसेज़ उस राजकुमारी से कम खूबसूरत नही है।

मेरी गरदन न ना कर सकी, न हाँ।

वह फिर बोले—लीजिए नही तो लोग कहेंगे मैं खूबसूरत हूँ, आप मुझे देखती रह गईं, प्याला नही लिया।

मैंने घबडा कर हाथ बढा दिया और प्याला ले लिया। मैंने शर्मा कर उनकी तरफ़पीठ कर ली तो सब ताली बजाने लगे। अच्छी-खासी बन गई।

—चलो यह तो साबित कर दिया घोष साहब तुम्हारे लिए उस बद-सूरत औरत की तरह हैं।—मिश्रा साहब हँस कर चुटकी लेते है।

मैं सहज भाव से कहती हूँ—एक बात बताऊँ मिश्रा साहब; मेरे दिमाग मे घोष साहब के लिए बहुत इज्जत है। वह हैं भी इसके लायक। एक बार मुझे झुँझल तो आई थी, जब उन्होंने पार्टी के लिए मुझे बुलाया, क्योंकि मैं आपके साथ आज पिक्चर देखने की सोच रही थी। लेकिन वहाँ जाकर अफ़सोस नही हुआ। वो तो वहाँ से चली तो आपका ध्यान आ गया। मैंने उनके ड्राइवर को आपके घर का पता बता दिया। उसने आप के यहाँ छोड दिया।

फिर आप मुझे यहाँ अपने घर ले आईं। मेरा भी क्या इस्तेमाल किया आपने—बचे-खुचे टाइम का एन्टरटेनर। मिश्रा साहब ने पता नही किस मकसद से कहा।

मेरे डंक लग जाता है। मैं एकदम झल्ला कर बोल पडती हूँ—मिस्टर मिश्रा! क्या मतलब है आपका इससे? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं आपके यहाँ इसलिए आई क्योंकि मेरे पास टाइम बचा था? क्या आपकी जलन बोल रही है।

मिश्रा साहब सहम जाते है, लेकिन मेरे मन में घृणा भर जाती है। मेरा जी चाहता है कि उनसे कह दूँ—आप निकल जाइये अभी मेरे घर से !

तुम नाहक बुरा मान गईं। मैंने तो मजाक में कहा था। अच्छा सॉरी। वह मुझे मीठा-सीला करना चाहते हैं लेकिन मेरे दिमाग मे गुस्सा भरता जा रहा है। नशे की तेजी में वह मुझे दुश्मन की मानिन्द लगते है। मुझ से नहीं रहा जाता तो मुँह से निकाल देती हूँ—आदमी कितना ओछा होता है ! औरत को अपनी मर्जी की कठपुतली बनाना चाहता है।

मिश्रा साहब को बात लग जाती है। वह खड़े हो जाते है। तुम अपने आपे में नहीं हो, मैंने गलती की आकर।

—तो जा सकते है। मैं गुस्से में पागल होकर कहती हूँ।

वह उठते हैं और ड्राइंगरूम से बाहर जाकर सीढ़ियों पर खट-खट करके उतर जाते है। मुझे उनकी कार के स्टार्ट होने की आवाज सुनाई देती है। मैं खिड़की के पास आकर देखती हूँ, उनकी कार जा रही है।

मैं दरवाजा बन्द करती हूं और सोफे पर बैठ जाती हूँ। दिमाग में गुस्सा अब भी चक्कर काट रहा है। मिश्रा क्यों चले गए। रुकते और मुझसे सुन के जाते कि अगर वह समझते है कि मैं उनके किसी भी ताने को बर्दाश्त करूँगी तो यह गलतफ़हमी है। वह क्या हैं ? मेरे कौन हैं ? महज एक दोस्ती ही तो है मेरे-उनके बीच मे। दोस्ती मे अगर वह बराबरी नहीं रख कर जलन और किसी अधिकार को रखना चाहते हैं तो वह रहा उनका रास्ता। मैंने अपनी जिन्दगी मे किसी को हक़ नहीं रखने दिया न रखने दे सकती हूँ।

मेरा गुस्सा शान्त हो रहा है, लेकिन कुछ शक्लें मेरी आँखो के सामने घूम रही हैं। उनको मैं पहचान नहीं सकती। कब ? कौन ? किस वक्त मेरे नजदीक आया और किस तरह से ? किस वजह से ? मेरी जिन्दगी मे निकल गया, मुझे याद नहीं है। जब जिन्दगी सिर्फ़ जरूरतें पूरी करते हुए जैसा आए उसको बिता देने का नाम हो जाये तब किसी के पीछे छूट जाने से क्या सरोकार।

घोष साहब की मिसेज ज्यों-की-त्यों मेरे सामने खड़ी हो जाती हैं।

कोई कह सकता है कि दूसरे कन्ट्री की है। घोष साहब की बेटी और उन मे कितना फर्क है। घोष साहब फक्र से कहते है, यह गलती से इंगलैंड मे पैदा हो गई। इसने मुझे रिलीजियस बना दिया।

कितनी शालीन और गम्भीर है मिसेज घोष। काली माँ की पूजा करती हैं। कभी-कभी मुझे उनके बंगले जाने का मौका पडा है। सुबह स्नान करके वह पहले पूजा में बैठती है। नौ बजे उठती है।

एक दिन पूछा था—आप काली माँ और राधा-कृष्ण की पूजा क्यों करती है?

जवाब दिया था—अच्छा लगता है, इसलिये करती हूँ।

—क्या मिलता है आप को इससे?

वह बडी नम्रता और मिठास से बोली थी—शान्ति, विभोरता; अपने से साक्षात्कार। पूजा के बाद मैं इतनी प्रसन्न और उत्साह से भर जाती हूँ कि जिन्दगी खुशनुमा लगती है। लगता है कि फूल-पत्ती, जानवर और आदमी सब अट्रैक्शन के रूप है।

मैंने कहा था—आप भी तो कितनी आकर्षक लगती है।

—हाँ, यह सब उसी प्रेम की देन है जिसे मैं काली माँ के सामने पाती हूँ, कृष्ण-राधा के लीला-गीतों मे पाती हूँ।

मैंने चाहा था कि मैं भी उस अनुभव को हासिल करूँ, जिसे मिसेज घोष पा रही थीं। मैंने पूजा शुरू भी की। लेकिन लगा कि मेरा खालीपन वैसा-का-वैसा है। मुझ मे कुछ तार हैं जो कट गये है। मैं उस आनन्द को नहीं पा सकती जो मिसेज घोष का स्वभाव बन चुका है। जो मिस्टर घोष का भी स्वभाव बन चुका है।

एक प्यास, एक बिखराव शायद मेरा अस्तित्व बन चुका है जो मुझे दिशाहारा बना कर भटकाता है। मिसेज घोष के पास पति है, बच्चे है, पैसा है और संतुष्ट करने वाली गृहस्थी है।

वह कहती हैं, यह सब काली माँ की देन है। मेरा दिल चाहता है कि उनसे कहूँ आप की काली माँ और राधाकृष्ण इन सारी चीजों के मिलपाने की देन हैं। यानी आप को हर तरह की तृप्ति प्राप्त है, इसलिये आपकी पूजा है। मैं क्यों नहीं पा सकी, मेरे प्रयास के बाद भी। लेकिन मैं कहती

नहीं। उनकी बेटी तक कहती है—मम्मी को पता नहीं क्या मिलता है ?

मैं क्या हूँ ? मैं क्या हो गई ?

दिल भर आता है। मैं फूट-फूट कर रो पडती हूँ। खाली हूँ फिर भी न जाने जब-तब यह आँसू किसी सोते से क्यों बहते चले आते है ? रोते-रोते चुप हो जाती हूँ। मिश्रा साहब फिर ध्यान में आते है।

मिश्रा साहब इसलिए आए थे कि घण्टे-दो घण्टे बैठेंगे। वह और मैं एक दूसरे के लिये अपने में उठाव महसूस करेंगे। फिर हम उस हालत में पहुँच जायेगे कि एक का जिस्म दूसरे को पाने के लिए लालची हो उठेगा। ऐसा हो जायेगा। थोडी देर बाद वह जाने के लिए तैयार होंगे और मैं यही चाहूँगी कि वह चले जाएँ। मै भी तो शायद इसीलिये उन्हे लेने गयी थी।

उनके जाने के बाद मैं फिर वैसी-की-वैसी रह जाती, जैसे इस वक्त हूँ।

घोप साहब की बेटी का जन्म दिन सुनकर मैं पहले झल्लाई थी। लेकिन वहाँ पहुँच कर अच्छा लगा। कितने खुश थे घोप साहब और उनकी मिसेज ! मै भी वैसी ही खुश हुई थी जब उनकी बेटी ने केक काटा था। मैंने भी सब के साथ तालियाँ बजाई थी।

और राजेश आज दफ्तर में किस नाराजगी से यह कहता हुआ उठकर चला गया था कि मै उसे या तो स्टेनो-बाबू कहूँ, या राजेश।

मिश्रा साहब ने तरकीब से पार्वती के असली आदमी को पुलिस के हवाले करवा ही दिया। मैं भी छिपी हुई देख रही थी जब पुलिस का आदमी नकली ग्राहक बनकर पार्वती के आदमी के हाथ पर नोट रख रहा था। पार्वती को छुट्टी मिली उस कमीने से। अब सोच रही हूँ कि मिश्रा साहब पर बेवजह इतना तैश में आ गई। जब मैं बर्दाश्त नहीं करती तो कोई क्यो करेगा। अन्दर से फिर एक उछाल आती है कि मैं रोऊँ। लेकिन अब नहीं रोना चाहती। क्या पाऊँगी रोकर ? सिर्फ अपने को ही तो थकाऊँगी। जिसकी नियति यही हो कि हर तरफ बढे और फिर अपनी सीमा को पहचान कर फिर उसी जगह आ जाये, जहाँ थी, उसका क्या सोचना, क्या रोना ?

कोई कह सकता है कि दूसरे कन्ट्री की है। घोष साहब की बेटी और उन मे कितना फ़र्क है। घोष साहब फ़क्र से कहते है, यह गलती से इंगलैंड मे पैदा हो गई। इसने मुझे रिलीजियस बना दिया।

कितनी शालीन और गम्भीर हैं मिसेज घोष। काली मां की पूजा करती हैं। कभी-कभी मुझे उनके बगले जाने का मौका पड़ा है। सुबह स्नान करके वह पहले पूजा मे बैठती हैं। नौ बजे उठती है।

एक दिन पूछा था—आप काली मां और राधा-कृष्ण की पूजा क्यों करती हैं?

जवाब दिया था—अच्छा लगता है, इसलिये करती हूँ।

—क्या मिलता है आप को इसमे?

वह बडी नम्रता और मिठास से बोली थी—शान्ति, विभोरता, अपने से साक्षात्कार। पूजा के बाद मैं इतनी प्रसन्न और उत्साह मे भर जाती हूँ कि जिन्दगी खुशनुमा लगती है। लगता है कि फूल-पत्ती, जानवर और आदमी सब अट्रैक्शन के रूप है।

मैंने कहा था—आप भी तो कितनी आकर्षक लगती है।

—हां, यह सब उसी प्रेम की देन है जिसे मैं काली मां के सामने पाती हूँ, कृष्ण-राधा के लीला-गीतों मे पाती हूँ।

मैंने चाहा था कि मैं भी उस अनुभव को हासिल करूँ, जिसे मिसेज घोष पा रही थी। मैंने पूजा शुरू भी की। लेकिन लगा कि मेरा खालीपन वैसा-का-वैसा है। मुझ मे कुछ तार हैं जो कट गये है। मैं उस आनन्द को नही पा सकती जो मिसेज घोष का स्वभाव बन चुका है। जो मिस्टर घोष का भी स्वभाव बन चुका है।

एक प्यास, एक बिखराव शायद मेरा अस्तित्व बन चुका है जो मुझे दिशाहारा बना कर भटकाता है। मिसेज घोष के पास पति है, बच्चे है, पैसा है और सतुष्ट करने वाली गृहस्थी है।

वह कहती है, यह सब काली मां की देन है। मेरा दिल चाहता है कि उनसे कहूँ आप की काली मां और राधाकृष्ण इन सारी चीजों के मिलपाने की देन हैं। यानी आप को हर तरह की तृप्ति प्राप्त है, इसलिये आपकी पूजा है। मैं क्यों नही पा सकी, मेरे प्रयास के बाद भी। लेकिन मैं कहती

नहीं। उनकी बेटी तक कहती है—मम्मी को पता नहीं क्या मिलता है?

मैं क्या हूँ? मैं क्या हो गई?

दिन भर आता है। मैं फूट-फूट कर रो पड़ती हूँ। खाली हूँ फिर भी न जाने जब-तब यह आँसू किसी सोते से क्यों बहते चले आते हैं? रोते-रोते चुप हो जाती हूँ। मिश्रा साहब फिर ध्यान में आते हैं।

मिश्रा साहब इसलिए आए थे कि घण्टे-दो घण्टे बैठेंगे। वह और मैं एक दूसरे के लिये अपने में उठाव महसूस करेंगे। फिर हम उस हालत में पहुँच जायेंगे कि एक का जिस्म दूसरे को पाने के लिए लालची हो उठेगा। ऐसा हो जायेगा। थोड़ी देर बाद वह जाने के लिए तैयार होंगे और मैं यही चाहूँगी कि वह चले जाएँ। मैं भी तो शायद इसीलिये उन्हें लेने गयी थी।

उनके जाने के बाद मैं फिर वैसी-की-वैसी रह जाती; जैसे इस वक्त हूँ।

घोष साहब की बेटी का जन्म दिन सुनकर मैं पहले झल्लाई थी। लेकिन वहाँ पहुँच कर अच्छा लगा। कितने खुश थे घोष साहब और उनकी मिसेज! मैं भी वैसी ही खुश हुई थी जब उनकी बेटी ने केक काटा था। मैंने भी सब के साथ तालियाँ बजाई थीं।

और राजेश आज दफ्तर में किस नाराजगी से यह कहता हुआ उठकर चला गया था कि मैं उसे या तो स्टेनो-बाबू कहूँ, या राजेश।

मिश्रा साहब ने तरकीब से पार्वती के असली आदमी को पुलिस के हवाले करवा ही दिया। मैं भी छिपी हुई देख रही थी जब पुलिस का आदमी नकली ग्राहक बनकर पार्वती के आदमी के हाथ पर नोट रख रहा था। पार्वती को छुट्टी मिली उस कमीने से। अब सोच रही हूँ कि मिश्रा साहब पर बेवजह इतना तैश में आ गई। जब मैं बर्दाश्त नहीं करती तो कोई क्यों करेगा। अन्दर से फिर एक उछाल आती है कि मैं रोऊँ। लेकिन अब नहीं रोना चाहती। क्या पाऊँगी रोकर? सिर्फ अपने को ही तो थकाऊँगी। जिसकी नियति यही हो कि हर तरफ बढ़े और फिर अपनी सीमा को पहचान कर फिर उसी जगह आ जाये, जहाँ थी, उसका क्या सोचना, क्या रोना?

मैं उठती हूँ, ड्राइंगरूम के नीले बल्ब को जलता छोड़कर बेडरूम में आती हूँ—बिना साडी बदले पलँग पर पड जाती हूँ। सरूर से दिमाग अब भी भारी है। आँखें मुँदने लगती हैं। तरह-तरह की आकृतियाँ आँखों मे घूमती हैं—इतनी बेतुकी और बेतरतीब कि उनमे कोई सूत्रता नही। मैं इसी चित्रावली मे सो जाती हूँ।

इतने दिन हो गये मिश्रा साहब ने न टेलीफोन किया न खुद आये। मैंने कितनी बार चाहा कि अपनी तरफ से ही पहल कर लूँ, लेकिन जैसे किसी ने मना कर दिया। पता नही कैसी प्रवृत्ति है कि बिना बात के सतर्कता से उठती हूँ। सतर्कता किससे ? किसी अपनेपन के पैदा हो जाने से ही तो ! ऐसा लगता है कि मैं अपनी हर इच्छा की तृप्ति तो चाहती हूँ लेकिन बिना बँधे।

राजेश ने उस दिन कहा कि मैं उसे स्टेनो-बाबू कहूँ या उसका नाम लूँ। मैंने उस दिन से उसे स्टेनो-बाबू कहना शुरू कर दिया। मैं जानती हूँ कि मेरे इस व्यवहार को वह कठोरता समझता है, लेकिन वह विरोध नही कर पाता। बल्कि उसने जानकर अलगाव ले लिया है। मैंने एक बार उस से कॉफी पीने के लिए कहा—उसने बहाना बना लिया।

वह गलत कैसे है ? मिश्रा साहब ने मिलने की कोशिश नही की तो वह भी गलत नही हुए। मैं भी कहाँ गलत हूँ ?

सोचती हूँ उनके हाल-चाल तो पूछ लूँ। टेलीफ़ोन तक हाथ बढ़ाती हूँ, लेकिन फिर पीछे की तरफ हाथ खींच लेती हूँ। यकायक खयाल आता है मिसेज नागपाल का। उनके दफ्तर रिंग करती हूँ।

—हाँ, मैं नागपाल बोल रही हूँ। चलो भई हमारा ध्यान आया तो। मैं जवाब देती हूँ—इन दिनों मैं ज़रा कम्पनी के काम मे बिजी थी। हालाँकि मैं झूठ बोल रही थी।

मिसेज नागपाल खुद कम थोडे ही हैं, फौरन कहती है—बिजी तो इस वक्त का हर आदमी है—वह भी जो पत्ता तक नही हिलाता। खैर; कहिये कैसे याद फरमाया ?

मैं उन्हीके लहजे मे जवाब देती हूँ—याद आ गई तो रिंग कर

लिया। जरूरी है कि कोई वजह ही हो।

—चलो यूँ सही। वैसे बिना काम के कौन याद करता है आजकल। आजकल कम्पनी के काम के अलावा और क्या हो रहा है?

—आप बताइये? मैं उनसे पूछती हूँ।

—भई हमारी जिन्दगी तो चकरी है। ऑफ़िस के अलावा जिन झंझटों को गले मे डाल रखा है वही फुर्सत नही लेने देते। दो-दो सेन्टरों की देख-भाल, सरकारी दफ्तरों के चक्कर, डोनेशन्स, डोनेशन्स के लिये कार्यक्रमों का आयोजन, बस यही सब फँसाये रखता है। बताओ साँस लेने की भी फुर्सत हो सकती है?

मेरी आँखों के सामने किसी पुराने खूबसूरत खण्डहर की अवशेष-सी मिसेज नागपाल का चेहरा मौजूद हो जाता है, जो बात करने मे माहिर और अपने विज्ञापन मे दक्ष है। इससे पहले कि वह इसी विषय को पकड़कर बैठ जाएँ, मैं पूछती हूँ—आजकल नागपाल साहब क्या कर रहे है?

—भई उनके काम वह जाने। सरकारी कमेटियों के लिये वह, सरकारी कमेटी उनके लिये। फिर आज यह दोस्त, कल वह दोस्त। कभी केरल से, कभी पजाब से, कभी बगाल से। वास्तविक बात तो यह है कि अपनी वह जानें, मैं तो अपनी जानती हूँ। भई मेरी ही मेरी जाने जाओगी या अपनी भी कहोगी। मिसेज नागपाल को जैसे ख़याल आया कि वह ज़रूरत से ज्यादा बोल रही हैं—वह भी अपनी ही अपनी।

मैंने कहा—अपनी क्या बताऊँ, आपने अपनी सस्था की कार्यकारिणी का मेम्बर तो बना लिया पर कभी बुलाया ही नही, इसी बहाने [मिलना हो जाता।

मिसेज नागपाल को लगा मैंने ताना ठोक दिया उन पर। फ़ौरन जवाब दिया—भई, मीटिंग ही नही कर पाई, बुलाती क्या। तुम तो जानती हो मैं काम मे ज्यादा विश्वास करती हूँ कागजबाजी मे कम। अच्छा आज टाइम है? कम्पनी से छूटकर दफ्तर आ जाओ मेरे। कहीं चलकर ताजे भी हो लेंगे, मिलना भी हो जायेगा! मंजूर?

—आ जाऊँगी। मैंने कह दिया।

अच्छा मैं ही आ जाऊँगी अपनी कार लेकर, तुम्हे दिक्कत होगी।

इतनी बार कहा कार खरीद लो मगर तुम्हारी समझ में ही नहीं आता।

—आपके पास है तो, वह भी तो मेरी ही है। मैंने बात बनायी। हालांकि जानती थी मिसेज नागपाल के कहने का मकसद, अपना बड़प्पन दिखाना था।

—ओके, तो मैं जरूर आ रही हूँ—पाँच बजे।

—जी ! मैं कहती हूँ।

—थैंक्यू ! सो काइन्ड ऑफ यू, फोर द कम्पनी। और वह खिलखिला कर हँस दी। रख दूँ। ·

—जी !

उन्होंने टेलीफोन रख दिया। मैंने भी रख दिया। सोचा आज यही शुगल सही। कार की बात चुभ-सी गई। घोष साहब भी कई बार कह चुके हैं। मिश्रा साहब भी उकसाते हैं—लेकिन मेरी इच्छा नहीं बनी। हालांकि टैक्सी कम नहीं खाती है।

—मैं अन्दर आ जाऊँ। स्टेनो-बाबू थे।

—आ जाओ मैंने कहा।

वह आता है और खड़े-खड़े फ़ाइलों को एक तरफ रखता है, उनमें से एक खोलकर मेरे सामने फैलाता है।

—बैठ जाओ ! मैं कहती हूँ। मैं महसूस करती हूँ पिछले दिनों में उसने बिल्कुल दफ़्तरी व्यवहार अपना लिया है। न वह ढीला होना चाहता है, न मुझे मौका देता है, जैसे नाराज़गी दिखाने का उसने तरीका निकाला हो। मैं भी इस तनाव को अपनाये हुए हूँ।

—तीन-चार रिमाइन्डर जा चुके, यह कम्पनी पेमेंट नहीं भेज रही है। वह कहता है।

मैं फाइल के पन्ने पलट कर अपने यहाँ से भेजे गये खतों को सरसरी तौर पर पढ़ती हूँ।

—अरोड़ा साहब की क्या ओपीनियन है ? मैं सेल्स एजेन्ट की राय चाहती हूँ।

—उनका कहना है कि छोटे-बड़े भाई की पार्टनरशिप अलग होने की सम्भावना है। वास्तविक मालिक के फ़ादर की डेथ हो चुकी है।

—हमें इसमें क्या मतलब ? इस लिहाज से तो उन्हें और जल्दी पेमेंट कर देना चाहिए। अरोड़ा साहब है ? मैं पूछती हूँ।

—जी।

मैं बजर बजाती हूँ। चपरासी अन्दर आता है।

—अरोड़ा साहब को बुलाकर लाओ।

चपरासी जाता है।

—यह अरोड़ा साहब की क्या आदत है। अपने टूर की समरी क्यों नहीं दिया करते है ?

—कल आए है, मुझे ब्रीफ कर दिया था। बाकी उस ज़ोन के बाबू को भी लिखा दिया था।

—वह ठीक है। लेकिन समरी मेरे सामने भी तो आनी चाहियें।

स्टेनो-बाबू चुप रहता है।

—यह नोट कर लो। तीनों टूरिंग एजेन्ट, टूर में लौटने के बाद टूर की समरी तुम्हें देंगे, तुम मेरे सामने रखोगे।

—जी।

अरोड़ा आ गया।

—बैठिये। मैं सामने की कुर्सी की तरफ इशारा करती हूँ। अरोड़ा बैठ जाता है।

—कैसा बिजनेस हुआ ?

—जी सेटिसफैक्टरी रहा। वह मुझे देखता हुआ कहता है।

—फिगर !

—बीस हज़ार का। तकरीबन !

—नये कॉन्टैक्ट्स ?

—चार-पाँच बन पाये। मैंने आहूजा को लिखा दिया है।

—आप लोगों से पहले भी कहा था, आप समरी दे दिया करिये, ताकि मैं जानकारी में रहूँ।

—जी, तैयार कर दूँगा। वैसे मैंने आहूजा को लिखवा दिया है।

—वह तो मैंने सुन लिया, लेकिन मैंने भी तो सोचकर कहा था आप लोगों से। कब आहूजा जी की तरफ से फाइलें आएँगी, कब मैं जानूँगी।

काम की डिले होती है ना।

—मैं अभी बनाकर दे दूंगा।

—सरीन और सेठी से भी कह दीजियेगा।

—सेठी टूर पर है। सरीन परसों जाने वाले हैं। स्टेनो-बाबू कहता है।

—सरीन से कह देना। सेठी जब लौटे उससे रिपोर्ट ले लेना। यह जौहरी एण्ड जौहरी के पेमेन्ट क्यों रुक रहा है।

—मालिक की डेथ हो गई है—दोनों भाई साथ मे बिजनेस रन नहीं करना चाहते। अलग होना चाहते हैं।

—यह तो अच्छा है—दो पार्टी बन जायेंगी—लेकिन पेमेन्ट के लिये तो आपको जोर देना चाहिये था।

—मैंने कहा था मुझे पेमेन्ट दे दीजिये—या मेरे सामने भेज दीजिये, लेकिन कहा पन्द्रह दिन में भेज देंगे। मुझे शक है, अभी भेजेंगे नहीं। यहाँ से लेटर जाना जरूरी है।

—चला जायेगा। दोनों ब्रदर्स इसी बिजनेस को रन करेंगे?

—जी!

—तो आपको दोनों से अलग-अलग मिलना था।

—मैं मिला हूँ। इसीलिये मैंने ज्यादा बिगाड़ नहीं की। अरोड़ा ने जैसे अपनी काबलियत बताई।

—ठीक है, समरी स्टेनो-बाबू को दे दीजियेगा।

—जी!

मैं फ़ाइल को हटा देती हूँ। अरोड़ा खड़ा होता है। चला जाता है।

दूसरी फ़ाइल देखती हूँ।

—निगम की।

—जी! उन्होंने कहा था आपका रिमार्क लिखवा लूं।

—उनकी तबीयत कैसी है? कुछ पता चला?

—सुधरी है; मैं कल घर गया था उनके।

—तुम्हारा उनके यहाँ आना-जाना है? उनके तो...मैं बात रोक जाती हूँ। लाओ लिख दूं, तसल्ली हो जाएगी उन्हें। मैं ऊपर के काग़ज़

को पढ़ती हूँ, फिर उस पर नोट लिखती हूँ।

—उन्होंने एक बात और कही थी, अगर आप बुरा ना माने तो कह दूँ। वह मुझे देखने लगा, जैसे मेरे मूड को जाँच रहा हो।

—बोलो। मुस्कराहट मेरे होंठो पर आ जाती है, जानती हूँ वह क्या कहना चाहता है।

—फिर कहूँगा। वह नरवस हो जाता है। मैं अपने अन्दाज़े से आश्वस्त हो जाती हूँ।

—अपने यहाँ एक वैकेन्सी है, शायद निगम साहब ने उसके लिए कहा होगा। मैं कहती हूँ।

उसकी घबराहट उसको बोलने नहीं देती। वह संयत होने की कोशिश करता है, फिर जैसे दृढ़ता लेता हुआ कहता है—आप निगम साहब की इकॉनोमिक कन्डीशन जानती है, चाहे तो उनकी बड़ी लड़की को क्लर्क की जगह दे सकती है। वह हायर सेकण्डरी है, टाइप जानती है।

—और अगर नहीं चाहूँ तो? मैं पता नहीं क्यों तनाव रहित हो जाती हूँ।

—तो मैं क्या कर सकूँगा। लेकिन ..

—सुनो स्टेनो-बाबू। आज आठ बजे के करीब मेरे घर आओ। तुम्हारा खाना मेरे यहाँ। एतराज तो नहीं है? मैं उसको देखती हूँ। वह मुझे ताज्जुब से देख रहा है।

—हाँ, हाँ! आ ही जाना। मेरा फ्लैट तो जानते ही होंगे। यह जानकारियाँ तो अपने आप ले ली जाती है, तुम लोगों द्वारा। बहुत से किस्से भी जुड़ ही जाते है, जब दफ्तर के चार बाबू बैठते है। मसलन, कि मैं तुम्हारे साथ कॉफी पीती हूँ, वह भी अपने कमरे में।

वह सोच नहीं पा रहा था कि क्या जवाब दे। मैंने देखा, उसके चेहरे पर डर-सा उभर आया है।

—अच्छा, न चाहो तो मत आना। मैंने वैसे ही कह दिया था। और कोई काम पेंडिंग तो नहीं है।

—जी नहीं। वह खड़ा हो गया। जाऊँ? उसने पूछा।

—हाँ! मैं फिर इतनी-सी देर मे अपने से अलग हो गई।

वह चला गया।

मुझे लगा मैं बहुत निर्दयी हूँ। वह कितना सहम गया था, जैसे कोई चिड़िया बिल्ली को अपने ठीक नजदीक पाकर। मुझे दुःख भी होता है कि क्या मेरी सामान्यता और असामान्यता दोनों इतनी दहशत देने वाली है। मैं अनमनी-सी हो जाती हूँ। काम निकालकर जबरदस्ती काम में लग जाती हूँ। करती जाती हूँ कि इस-उस तरफ कतई नहीं सोचूँ। लेकिन ज्यादा नहीं कर पाती। एक तरफ तह किये अखबार को फैलाकर आराम लेते हुए पढ़ने लगती हूँ। मेरी पीठ कुर्सी के पुश्त से टिकी है। पैर नीचे के पायदान पर टिके हैं। मैं बिल्कुल सुविधा की हालात में हूँ। अखबार की खबरें मुझे खींचती हैं, क्योंकि मेरा उनसे कोई सीधा सरोकार नहीं है, बस इतना कि वह पहले की जानकारी को इधर-उधर से कुरेद दें।

मैं दफ्तर की इमारत के सामने एक तरफ खड़ी मिसेज नागपाल का इन्तजार कर रही हूँ। पाँच बजे आने को कहा था, सवा पाँच बज रहे हैं। बाजार और सड़क की हलचल इस वक्त रोजाना की तरह तेज है। दफ्तरों से निकल कर आने वाले आदमी समूह बनाकर पान की दुकानों, नजदीक के रेस्त्राओं के आस-पास मँडरा रहे हैं। जिन्हें जाने की पड़ी है, वे जा रहे हैं। दोपहर के मुकाबले स्कूटरों, कारों का शोर दुगना है।

इन्तजार करने की स्थिति बड़ी पशोपेश में डाल देती है। कितना ही सँभल कर खड़े होओ ऐसा लगने लगता है दूसरे हमें ही देख रहे हैं। ऐसा होता भी है। मैं जहाँ खड़ी हूँ, वहाँ से दस कदम आगे खिसक लेती हूँ। दोनों तरफ दूरी तक देखती हूँ कि किसी तरफ से मिसेज नागपाल की कार आती दिखाई दे। हद है, इन्डियन मेन्टेलिटी को—दिये हुए वक्त का ध्यान ही नहीं। मैं लगभग ऊबता जाती हूँ। निश्चय करती हूँ कि अगर पाँच मिनट तक नहीं आईं तो चली जाऊँगी।

सोचती हूँ कहाँ जाऊँगी? क्या अभी से घर? नहीं, किसी रेस्त्राँ में जाऊँगी; आज अकेली रहूँगी।

वास्तव में इच्छा ही उठती है कि अकेलेपन की मस्ती लूँ। मनाती हूँ कि मिसेज नागपाल नहीं आयें।

लेकिन जैसे ही मैं इस मूड को बनाती हूँ मिसेज नागपाल की लाल कार नजर आती है। न आती तो क्या कुछ बिगड़ जाता—अपने मन मे ही दोहराती हूँ। मैं आगे बढ़कर हाथ दिखाती हूँ। मिसेज नागपाल कार रोक देती है। उनके साथ एक महिला और है, जिन्हे मैं नही जानती।

—सॉरी भाई, देर हो गई। वह स्टेयरिंग के सामने बैठी-बैठी बोलती हैं। बैठो ! तुम्हारा नया परिचय कराऊँगी।

मैं आगे की सीट भरी देखकर, पीछे बैठ जाती हूँ। मिसेज नागपाल कार स्टार्ट कर देती हैं।

—यह है मिसेज कीर्ति अग्रवाल। कैप्टेन अनिरुद्ध कुमार अग्रवाल की मिसेज। नागपाल बताती है। यह आई तो सिर्फ आधे घन्टे के लिये मुझसे मिलने। मैं जबरदस्ती साथ ले आई।

—नमस्ते ! उन्होंने थोड़ी-सी गर्दन घुमाकर कहा।

मैंने मुस्कराहट के साथ हाथ जोड़ दिये। मैं सीमा हूँ। एक कम्पनी मे काम करती हूँ। मैंने नागपाल को एकतरफा परिचय कराने की गलती को रेखांकित किया।

'सॉरी' कहकर वह अपनी मरदानी हँसी हँस दी।

कार में चुप्पी हो गई। मिसेज कीर्ति की उम्र मुझे उन्तीस-तीस से ज्यादा नही लगी। गोल खूबसूरत चेहरा, छोटी-सी तोतयी नाक, बड़ी आँखें और पतले होंठ। जरा सी झलक ने मासूमियत का प्रभाव दिया।

—अरे भई, चुप क्यों हो, नयी दोस्ती बनाओ। वरना फिर मैं शुरू होऊँ। नागपाल बोली।

—अब आप ले तो चल रही है, मेज के तीन तरफ बैठकर आमने-सामने दोस्ती बनेगी। पीठ की दोस्ती मे क्या मजा ! मैंने चुटकी ली।

—जवाब नही है तुम्हारा, बाल का काँटा फँसा देती हो। नागपाल ने बुजुर्गाना लहजे मे कहा। मिसेज कीर्ति चुप बैठी रही। जरा-सी गर्दन मोड़ कर मुस्करा भर दी। उसके रंगे होठ पर वह मुस्कराहट भली लगी।

कार परिचित रेस्त्राँ के सामने खड़ी हुई—जो बार भी था। हम दोनो उतर गये। मिसेज नागपाल कार को पार्क करने चली गई।

—आप से पहली बार मिलना हुआ। मैंने मिसेज कीर्ति से कहा।

—जी; मौका नहीं पड़ा। मिसेज नागपाल की बातों मे यदा-कदा आपका जिक्र आया तो। उसके स्वर में मिठास था।

मिसेज नागपाल अपना पर्स हिलाती हुई चली आ रही थीं। मैंने अब देखा कि वह लगातार भारी और चौड़ी होती जा रही है। गालों का मांस ऊपर आँखों की तरफ चढ़ता जा रहा है।

—अरे, बाहर ही खड़ी रह गई। वह पास आकर बोली। चलो! चलें। और वह नेतृत्व-सा करती हुई अन्दर घुसी। हम दोनों उनके पीछे हो लिये। डील-डौल से वह लग भी ऐसी रही थीं।

हम तीनों एक खाली मेज पर बैठ गये। बैरा के आने पर वह बोली, अपनी-अपनी मर्जी कह दो, मैं तो व्हिस्की लूँगी।

—मैं कोल्ड ड्रिंक। मिसेज कीर्ति बोली।

—मैं भी कोल्ड ड्रिंक लूँगी। मेरी व्हिस्की वगैरह की इच्छा नहीं थी। बैरा चला गया।

—अब बताओ टेलीफोन पर क्या शिकायत कर रही थी?

—वह तो मजाक कर रही थी, आपने क्या सीरियसली ले लिया। मैं तो कह रही थी इस बहाने मिलना-विलना हो जाता। मैंने बात बनायी।

—भई मैं तो चाहती हूँ कि तुम लोग मेरा हाथ बटाओ, लेकिन तुम लोगों को मुझ पर दया आती नहीं। हर बार सोचती हूँ, इस अध्यक्षता के पद से हट जाऊँ, लेकिन सब मुझको ही बना देती हैं। उन्होंने ऐसा कहा जैसे दूसरों के द्वारा उनको अजहद बोझ से दबा दिया गया है।

मिसेज कीर्ति ने उनकी बड़ाई करते हुए कहा—काबिल को ही तो मार दिया जाता है। आप तो अब घर-गृहस्थी से फारिग है, हमें तो इसका-उसका करना ही फुर्सत नहीं देता।

चलो तुम्हारी तो मान ली—इनको कौन से पहाड़ ढोने पड़ते हैं? न आगे, न पीछे, चाहे तो कितना ही काम कर डालें। भई, यह तो दया और उपकार का काम है।

मिसेज नागपाल कभी-कभी हद से ज्यादा मुँहफट हो जाती हैं—दूसरे की भावनाओं तक का ध्यान नहीं रखतीं। मुझे उनकी बात लग गई।

मिसेज कीर्ति न होती तो शायद इतनी न लगती।

मिसेज कीर्ति ने पूछा—क्यों ? आपकी फैमिली यहाँ नहीं है ?

फैमिली के नाम तो आगे-पीछे यही है। कैसे-कैसे ओछे किस्म के आदमी होते हैं, अरे अगर निभा नहीं सकते तो शादी क्यों करते हैं ?

मुझे क्या पता था कि मैं ही बात का विषय बन जाऊँगी। मुझे झल्लाहट-सी आ गई। मैं एकदम बोल पड़ी—मिसेज नागपाल, मैं सोचती हूँ आप अपने सेन्टर की औरतों को भी तकलीफ ज्यादा देती होंगी, आराम कम।

मिसेज कीर्ति मेरी चुभन को भाँप गईं। स्थिति को सँभालते हुए बोलीं—किसी की पर्सनल स्थितियाँ क्या होती हैं, हम जान नहीं सकते और जब जान नहीं सकते तो एक ही धारणा से नतीजे भी लागू नहीं कर सकते।

मिसेज नागपाल को अब समझ में आया कि वह क्या कह गईं और उनकी बात क्यों लगी मुझे।

मेरा तुमसे मतलब नहीं था मिसेज सीमा। भई मैंने तो जनरल बात कही थी। मिस्टर नागपाल ही कौन से कम ओछे हैं—नाराज होते हैं तो इस उम्र में भी मेरे पुरखों तक की ख़बर ले लेते हैं।

—अभी कुछ दिन हुए—शायद आठ दिन, मैं आपको एक केस देने वाली थी। वह तो मेरे मित्र मिश्रा जी ने अक्लमंदी से हल कर दिया।

—क्या था। उन्होंने पूछा

—मेरी नौकरानी का। उसका पहला आदमी यहाँ आ गया, उसे ले जाने के लिए, जब कि वह दूसरे आदमी के साथ रह रही थी।

—यह छोटी जात की औरतें यही करती हैं। पढ़ी-लिखी तो होती नहीं हैं, बस जिसके पास आराम देखा बैठ गई। मिसेज नागपाल बोल पड़ीं।

—आपने पूरी बात सुनी नहीं, अपना रिमार्क दे दिया। वह अपने आदमी के पास से इसलिए आई थी क्योंकि वह उससे पेशा करवाना चाहता था।

—माई गॉड ! हसबेंड पेशा करवाना चाहता था, अपनी औरत से !

हमारे यहाँ तो औरत की गलती पर सीधा ख़ून-ख़च्चर हो जाता है। मैं आप को बताऊँ, कैप्टन साहब के अन्डर में लेफ्टीनेन्ट सुरजीत थे। बहुत ही ख़ूबसूरत जवान। नयी-नयी शादी हुई थी। पता नहीं कैसे शक हो गया अपनी वाइफ पर। उसने उसको शूट कर दिया। ख़ुद अपने भी गोली मार ली। हमारे ब्लाक में कई दिन तक इस घटना का टेरर हावी रहा। मैंने देखा था, दोनों इतने भले और एडजस्टेड लगते कि कोई सोच नहीं सकता था।

बैरा ड्रिंक्स ले आया। रखकर चला गया।

—*गुस्सा बहुत बुरी चीज होती है। जब मिस्टर नागपाल गुस्सा* करते है तो मैं उनको फौरन टोकती हूँ। फिर भी नहीं मानते तो मैं कमरा छोड़ देती हूँ। है न सही दवा! मिसेज नागपाल ने फिर अपनी मरदानी हँसी का नमूना दे दिया।

—सॉरी, आपकी नौकरानी का क्या हुआ? मिसेज कीर्ति ने पूछा।

—मिस्टर मिश्रा ने एक चाल चली और वह आदमी पुलिस के हवाले हो गया। हमने नौकरानी को सिखा दिया। तू हामी भर दे। उससे यह भी कह दे अब पेशा भी कर लूंगी। चलना है तो कुछ यहीं से कमा कर चलो। वह बेवकूफ ग्राहक ले आया। ग्राहक भी पुलिस का सफेदपोश आदमी था। बस, वहीं उसको पकड़ा दिया। आप क्या करती मिसेज नागपाल? मैंने पूछा। नागपाल ह्विस्की को गिलास में डालकर पी रही थी।

—मैं तुम से सॉरी कह देती। ऐसी छोटी जात के केसेज ले तो हम एक दिन के भी नहीं रहें।

—मैं जानती थी। ऐसी छोटी किस्म की औरतों के लिए आपके पास कहाँ वक्त। लेकिन ऐसी कहाँ जाएँ, आपने सोचा?

—हाँ! बहुत-सी कल्याण संस्थाएँ है, उनके पास जाएँ। जिस स्टेटस की हम हैं; उसी स्तर पर तो काम करेंगे। हम से क्या यह चाहा जाना चाहिए कि हम गन्दी बस्तियों में जाएँ, मजदूर दर्जे की झोपड़ियों में जाएँ। मैं बहुत साफ हूँ इस मामले में। जिस तरह की हमारी क्लास है, उसी के मुताबिक काम हो सकता है। हम फंड के लिए कल्चर शो ओर्गेनाइज कर रहे है। बॉम्बे से नामी प्लेबैक सिंगर बुला रहे है। मिनिस्टर साहब को

चीफ़ गेस्ट बनायेंगे। हम लोगों के यही तरीके हो सकते है। इसलिए हमारे काम करने का लेबिल और एरिया भी फिर ऐसा ही होगा। क्यो मिसेज कीर्ति! क्या मैं ठीक नही हूँ? मिसेज नागपाल ने समर्थन चाहा।

मिसेज कीर्ति जो कोकाकोला स्ट्रा से खीच रही थी बोली—आप सिविल मे है, इस तरह के दर्जे बना सकती है, हमारे यहाँ तो फौजी को भी उतना महत्व दिया जाता है जितना किसी कमीशन्ड ऑफिसर को। यह बात दूसरी है कि वो लोग पोजीशन के फासले को मानते है। बार टाइम में हम लोग उन्ही सोलजर्स के लिये कर रहे थे जो सबसे नीचे केडर होते हैं। हम जानते हैं कि जितना ख़तरा उनके लिये होता है—उतना ही हमारे लिये।

—लेकिन सिविल में तो बहुत-सी चीजें फैशन की तरह होती है,इसी-लिये काम कम अखबारों मे तस्वीरें छिपाना ज्यादा होता है। यह सर्विस नही, उसका दिखावा होता है—अहं की तृप्ति। मैंने बोलकर जैसे मिसेज नागपाल पर छीटा कसा।

मिसेज नागपाल ने बचाव नही लिया। स्वीकार करते हुए बोली —तुम सही कह रही हो। मैं अगर मना करूँगी तो सही बात को नकारना होगा। लेकिन मिसेज सीमा, जहाँ पैसो के आधार पर सामाजिक दर्जे होंगे, वहाँ तो ऐसा होगा। हमारे अपने दर्जों के संस्कार है। उनसे छुट-कारा नही पाया जा सकता। तुम भी नही पा सकती, मिसेज कीर्ति भी नही पा सकती। लेकिन मैं चाहती हूँ मिसेज सीमा तुम एक्टिव होओ। बड़े लोगों से कॉन्टेक्ट होंगे, तुम जिस अकेली ज़िन्दगी को जी रही हो उस मे भराव आएगा।

आपने कई बार कहा है मिसेज नागपाल, और मैंने इस पर सोचा भी है—लेकिन अपने को तैयार नही पा सकी। मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैं किसी ऐसे हिस्से को अपने साथ लगाये हूँ, जिसे मुझे बहुत पहले अलग कर देना था। मै शायद अपनी कमियों को ज्यादा प्यार करती हूँ, इसीलिए कैसा भी नया मोड़, या नयी तबदीली नही ले पाती। मैं लगभग हिल गई थी और अपने पर काबू नही पा रही थी।

मिसेज कीर्ति का चेहरा उदास हो गया। मुझे ख़याल नही रहा था

कि बहुत ही मासूम और अछूती लगने वाली एक युवती—मिसेज कीर्ति, हमारे साथ है। उनसे नही रहा गया। वह सहानुभूति दिखाते हुए नम्रता से बोलीं—आप ठीक कहती हैं। मैं ज्यादा तो नहीं जानती आपके बारे मे लेकिन आप के दु.ख को मैं समझ सकती हूँ। अकेला होना बहुत बडी सजा है। मैं जानती हूँ कि जब कैप्टन साहब, और दूसरे लोग लड़ाई पर गये थे तब हमारी क्या हालत हुई थी। दुबारा यह जिन्दगी मिलेगी या नही, कोई नही कह सकता था। रोज घटों पूजा करती थी और ईश्वर से मांगती थी—उनकी रक्षा करना ! उन्हें सुरक्षित लौटाना। कैसी जुआ-सी लगती थी जिन्दगी। अगर नही लौटे तो जड़ से बर्बादी, लौट आए तो फिर से सुहागिन। आप भी मिसेज सीमा किसी आशा के सहारे जी रही हैं—शायद किसी दिन.

—छोडिये मिसेज कीर्ति ! मैं तो सारी आशा बहुत पहले डुबो चुकी। जिन्दगी को काटना है, काट रही हूँ। कभी सब कुछ भुलाकर, कभी बिलकुल फालतू चीजों मे अपने को व्यस्त करके।

अरे भाई, यह ट्रेजिक माहौल क्यों घेर दिया। नाऊ लीव दिस ऑल। क्या हम इसीलिए आए थे की दर्द लेकर जाएँ अपने साथ। हँसा करो भाई, दो ही तो चीज हैं जो आदमी के साथ खेलती है—सुख, या दुख ! दुःख को हँस कर नहीं उडा सके तो वह दबोच लेगा हमे। यह वल्चर है, गिद्ध ! जानती नही कि दो साल पहले मैंने सबसे बड़ा बेटा खो दिया था, क्या कम दर्द हुआ ? लेकिन देखो कैसा हँसती हूँ। इतना हँसती रहती हूँ कि वह दर्द भी दर्द न रह पाए। दर्द अगर दर्द रह गया तो जीना मुहाल हो जाएगा। आदमी रोता रह जायेगा।

मैं ताज्जुब मे देखती रह गई कि मिसेज नागपाल की आँखें डबडबा आई। उनके होंठो पर मुस्कराहट थी, आँखो मे डबडबाहट। मिसेज कीर्ति भी उन्हे देखती रह गई। मिसेज नागपाल की साँसें घुटने लगी। ऐसा लगा कि उनको साँस तकलीफ से आ रही है। वह खडी हो गई। कम आउट ! कहकर वह काउटर की तरफ चली गई ! हमने अपने-अपने पर्स उठाए और बाहर चल दिये। लगा कि किसी गुफा से निकले हो। मिसेज कीर्ति का वह चेहरा जिसकी मैंने कुछ देर पहले तारीफ की थी मन-ही-मन

वह अब उतरा हुआ था। अपना मैं देख नही सकती, लेकिन भारीपन महसूस कर रही थी। मिसेज नागपाल आईं, वह फिर पहले-सी हो गई थी। हम कार मे बैठ गये। मिसेज नागपाल ने कार स्टार्ट कर दी।

झुटपुटा अँधेरा हो चुका है। सड़क की बिजली जल गई है। मैंने मिसेज नागपाल को अपने घर की तरफ नही खीचा। इस तरफ आती तो मिसेज कीर्ति को पहुँचाने के लिए लम्बा चक्कर काटना पडता। मैंने रास्ते से टैक्सी ले ली थी जिसने मुझे मेन सडक पर छोड़ दिया। मिसेज कीर्ति ने मुझे अपने फ्लैट का पता दिया और वायदा ले लिया कि मैं उनके यहाँ जरूर आऊँगी। मुझे मिसेज कीर्ति भली लगी। भली से ज्यादा मुझे वह खूबसूरत और आकर्षक लगी। उन्होंने आने के लिए कहा तो मैं खुश ही हुई। उनकी भावुकता और कोमलता से ऐसा लगा कि वह मिसेज नागपाल की तरह अक्खड और अपने को दर्शाने वाली नही है। मैंने महसूस किया वह आत्मीय मित्र बन सकती है, बना सकती है। इतना पाने की सम्भावना होना छोटी बात नही, खास तौर से मेरे लिये जो कितनी ही बदल गई हो पर अपने दिल से दूर नही जा पा रही हो।

मैं दोनो तरफ के क्वार्टरों के बीच चलती हुई अपने फ्लैट के लिए गलियो का शॉर्ट-कट लेती जा रही हूँ। क्वार्टरो के सामने के लॉन में अब भी बच्चे खेल रहे है। घरो मे लाइट जल रही हैं। आसपास के पडोसियों मे दो-चार बात कर लेने का यही वक्त है। औरतें दिन मे एक-दूसरे के घरो मे हो आती हैं लेकिन मर्द, इस समय मिल-मिला लेते है। कोई ऊपर से खडे होकर नीचे टहलने वाले से बात कर लेता है। कोई अपने सामने खिडकियों मे से। बस औपचारिकता—कैसे है? आप कैसे हैं? दफ्तर मे क्या हो रहा है? बस बडा तग कर ली है साहब! कैरोसीन और डालडा तो इद हो गया जी। बडे शहर की जिन्दगी तो हेल हो गई जी।

बातो मे कोई तारतम्य नही। किसी की समस्या से किसी को मतलब नही। हर फ्लैट की एक अलग दीवार, दीवार के अन्दर की पृथक जिन्दगी।

मैं अपने क्वार्टर के सामने आ जाती हूँ। जीने से चढती हूँ, और

दरवाजे पर ताला न पाकर बेल बजाती हूँ।

—कौन ? पार्वती पूछती है।

—मैं। मैं कहती हूँ

वह दरवाजा खोलती है। वह बताती है कोई आया था।

—कौन ? लड़का-सा था या उम्र वाला।

—अपना नाम राजेश बता रहा था। पार्वती ने कहा।

—रोका क्यों नहीं। मैं सोफे पर बैठ जाती हूँ।

—वह गया है थोड़ी देर में लौटकर आएगा।

—ठीक है ! मैं जल्दी नहीं आ पाई। क्या बनाया है ?

मटन-पनीर की सब्जी, भिन्डी। परांठे। पार्वती के हाथ आटे में सने हैं।

वह भी यहीं खाएगा। उसका खाना भी बना लेना। बना चुको तो थोड़ी-सी मिठाई और दही ले आना, बाजार से जाकर। पैसे है ?

—जी अभी तो है, परसों दस रुपये दिये थे ना, उसमें से तीन बचे हैं कल दो की सब्जी...

—तीन से क्या होगा। मैं हिसाब न सुनकर पर्स में से एक दस का नोट निकाल कर देती हूँ। अगर अच्छे आम मिल जायें तो ले आना। वरना नमकीन तो ले ही आना।

—जी।

—बाल्टी लगा दो, नहाऊँगी। कॉफी का पानी रख देना।

पार्वती चली जाती है।

मैं कुछ देर तक सुस्ताता हूँ। बदन आराम पाकर ढीलाई लेता है। मैं आँख मूँद लेती हूँ। इच्छा होती है कि दिमाग को शून्य-स्थिति में कर लूँ ताकि भारीपन हट जाये। कोशिश करके सोचने की क्रिया को रोकती हूँ। बंद आँखों का अँधेरा योग देता है। ऐसा लगता है कि मैं अन्दर अपने में जा रही हूँ। हल्की-सी नींद आती है। लेकिन तभी ऐसा लगता है नल की धार गुसलखाने के फर्श पर गिर रहा है। मैं हड़बड़ा कर उठ पड़ती हूँ।

इतनी-सी देर में लगता है काफ़ी हल्की हो गई हूँ। पाइप की धार

गुसलखाने में नहीं गिर रही है। मुझे नहाना है, शायद इसलिए ऐसा था।

खड़ी होकर अन्दर जाती हूँ, कपड़े लेती हूँ और गुसलघर में आ जाती हूँ।

शरीर बिल्कुल हल्का। मस्तिष्क शान्त हो गया है। मैं ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठकर बदन पर पाउडर छिड़क कर बाल ठीक करती हूँ। सच कहूँ, कभी-कभी अपने प्रतिबिम्ब को देखकर ऐसा लगता है जैसे मैं अब भी अच्छी लगती हूँ। हालाँकि ऐसी आत्म-चाटुकारता हर एक का मन अपने लिये करता है, लेकिन मैं तटस्थ होने पर भी पाती हूँ कि मेरी सुन्दरता अभी अछोजी है। क्या कोई अपने से तटस्थ हो सकता है?

इसी वक्त बेल बजती है और मैं समझ लेती हूँ कि राजेश ही आया है।

—पार्वती, देखना! मैं कहती हूँ।

पार्वती कमरे में से निकलकर ड्राइंगरूम में जाती है और सुनाई पड़ता है कि वह उससे बैठने को कह रही है। वह रसोई में बताती हुई जाती है कि जो पहले आए थे, वही आए है। मैं बालों में कंघा फेर कर, खुले बालों जाती हूँ। वह खड़ा हो जाता है।

—बैठो! दोबारा आना पड़ा। मैं लम्बे वाले सोफ़े पर बैठती हूँ।

—हाँ; मेरे एक परिचित इसी तरफ रहते है, उनसे मिलने चला गया था।

—चलो, काम हुआ! वरना कब आते इस तरफ़। बड़े शहर का यही सुख तो है। मैं मुस्कराती हूँ।

—नहीं, इनके यहाँ तो महीने में एक बार आ ही जाता हूँ। वह ऐसे कहता है जैसे महीने का वक्त तो दो-चार दिन का अन्तर है।

—कितनी जल्दी-जल्दी आना होता है। मैं वास्तव में हँस जाती हूँ। वह मेरे व्यंग्य को समझ कर झेंप जाता है। मैं देखती हूँ वह बढ़िया कमीज़ और पैन्ट पहने है। बहुत ढंग से आया है।

पार्वती कॉफी बना लाती है।

—पहले से ही तैयार।

मैं बीच में बोल पड़ती हूँ—नहा करके पीने की आदत है। खास

से तुम्हारे लिए नहीं बनी है।

पार्वती पूछती है—मैं बाजार हो आऊँ?

—चली जाओ।

वह पहले अन्दर जाती है फिर थैला लेकर चीज़ें लाने चली जाती है।

—आपने क्यों बुलाया था? वह पूछता है।

—वह!...मेरे तो ध्यान से उतर गया था। तुम ने जवाब नहीं दिया था, मैंने सोचा आओ, न भी आओ। मुझे दफ़्तर की बात ध्यान आ गई जो दरअस्ल मिसेज़ नागपाल और मिसेज़ कीर्ति से मिलने पर भूल-सी गई थी।

—आपने कहा था, आना तो पड़ता। उसने मुझे देखा।

—स्टैनो-बाबू से बात करूँ या राजेश से? मैंने उसके चेहरे को देखा, वह जैसे हड़बड़ा गया।

—जैसा आप उचित समझें। उसने जवाब दिया।

—घर तो मैंने राजेश को बुलाया है, स्टैनो-बाबू से काम होता तो कल दफ़्तर में ही जाता।

वह चुप हो गया। सिर्फ़ मुझे सम्मोहित-सा देखता रहा।

—क्या देख रहे हो? मैंने पूछा। मेरे होंठों पर मुस्कराहट थी।

—जी; आप वह तो नहीं हैं जैसी ऑफिस में होती हैं।

—यहाँ भी वैसी ही चाहते हो। कॉफ़ी पियो! ठंडी हो जायेगी।

वह प्याला उठा लेता है। एक घूंट लेता है। ड्राइंगरूम की सजावट देखने लगता है।

—सिगरेट पीते हो? शर्माना नहीं। मुझे आने-जाने वालों के लिये रखनी होती है।

—पीता हूँ। लेकिन पियूँगा नहीं। उसने जवाब दिया।

मैं जानती हूँ, मैं उसे देख रही हूँ और मेरे मन में वही भाव उठ रहा है जो उसको देखकर सहज स्थिति में उठा करता है।

—तुम क्या मुझे लेकर कभी सोचते हो? मैं सीधा प्रश्न करती हूँ।

—जी? वह आश्चर्य से मुझे देखता है। लेकिन तभी वह उठता है—मुझे क्या हक है आपके बारे में सोचने का; मैं आपका. .

—नकलीपन पर मत आओ ! मैं टोकती हूँ। मेरे शब्द कठोर हो जाते हैं। मैं फौरन सहज होती हूँ। मेरा मतलब है छुपाओ मत।

—बुरा मत मानियेगा अगर मैं कुछ कह जाऊँ। वह दृढ़ता से कहता है। उसके चेहरे पर गुस्सा दीखता है जो मुझे भला लगता है।

—नही मानूंगी। मैं कहती हूँ।

—मैं सोचता था, लेकिन आपने मजबूर कर दिया कि मैं अपनी औकात न भूलूँ।

मेरे थप्पड़-सा लगा। वह सही था।

एकदम चुप्पी आ गई दोनों के बीच मे। न उसके पास बोलने को था, न मेरे पास। इसलिये दोनों कॉफी का सहारा ले रहे थे।

उसने सिर उठाकर फिर मुझे देखा, उसकी आँखों मे इस कदर तरलता थी कि मैं पूरी-की-पूरी हिल गई। वह उसी दशा मे बोला—आपने मुझे इतनी चोट पहुँचाई कि मैं कह नही सकता। आप इतनी अस्थिर क्यों है?

उसकी दृष्टि मे छेद जाने की क्षमता थी। मैंने महसूस किया कि वह मुझे वहाँ से उघाड रहा है जिसे मैं मजबूती से ढके हुए रही हूँ। मैं घबरा गई। बचने के लिए मैंने रुख बदलते हुए पूछा—तुम निगम की लडकी की बात कर रहे थे।

लेकिन उस पर जैसे भूत सवार हो गया था। बोला—छोडिये उसकी बात। आप बताइये कि आप इतनी निर्दयी क्यो हैं ? आपने मेरी भावना पर क्यों चोट पहुँचाई ?

अब मैं क्या जवाब देती। मैं उसका सामना करने मे अपने को बिलकुल असमर्थ पा रही थी।

—आपने राजेश कहते-कहते स्टेनो-बाबू कहकर मुझे क्यो छोटा किया ? बताइये ?

मैं उसको इतना खतरनाक नही समझती थी। वह जैसे इतने दिन के भार को मेरे ऊपर पलट देना चाहता था। मैं महसूस कर रही हूँ। मेरी आँखों मे मेरी छिपी हुई भावना उभर आई है। उसने थोडा-सा भी और आवेश लिया तो मैं अपना नियत्रण खो बैठूंगी।

मैं कह उठती हूँ—राजेश ! सँभलो। जबकि वास्तव में यह शब्द मुझे अपने से कहने चाहिए।

वह जैसे हताश होता है। उसका स्वर धीमा हो जाता है। कहता है —आप नहीं जानतीं अपनापन देकर, छीन लेना कितनी कड़ी सज़ा होती है। मुझे आपने दिया, फिर ले लिया। मैं क्या कर सकता था ? उसको जैसे होश आया। मैंने आपसे पहले कह दिया था, कुछ कह जाऊँ तो बुरा मत मानियेगा।

वह चुप हो गया। उसने मुँह फेर लिया जैसे उन आँखों को छिपा रहा हो, जो भीगने लगी थीं।

—मैं बुरा नहीं मान रही हूँ राजेश ! मैंने इसलिये बुलाया था ताकि मैं वास्तविक हो सकूँ तुम्हारे सामने। क्या तुम कुछ नहीं पाते मुझ में ?

वह मेरी तरफ नहीं देखता, जैसे अपने को चुरा रहा हो।

—लेकिन दफ्तर और घर में फरक होता है, यह तो मानते हो ? मैं पूछती हूँ।

—जी। लेकिन मैंने दफ्तर में ही आपके अपनेपन को पाया था। फिर क्या गलती हो गई मुझसे ? उसने मेरी तरफ देखा।

—अगर मैं अपनी गलती मान लूँ तो ? मैंने सम्मोहित-सी देखते हुए उससे कहा।

—मेरा मतलब यह नहीं है। मैं हर तरह से छोटा हूँ। आप अब तो स्टेनो-बाबू नहीं कहेंगी ?

—और अगर मैंने कॉफी पीने के लिये कभी कहा, तो तुम बहाना लगा दोगे।

—दफ़्तर वाले कहते जो हैं। बड़े भोलेपन से उसने कह दिया। मुझे उस पर हँसी आ गई। मैं वास्तव में हँस पड़ी।

—खुद डरते हो, मुझ से स्वाभाविकता चाहते हो। जानते हो, मैं अकेली हूँ। कल को दफ़्तर वाले और भी कुछ कह सकते हैं।

—उनके थप्पड़ मार दूँगा। वह भड़क पड़ा।

—किसको-किसको मारोगे। अभी दुनिया कम देखी है। समझे ! साफ़ हो कर भी अपने पर अंकुश रखना होता है; छिपाना पड़ता है। इस-

लिये बिना चाहे कठोर भी हो जाना पडता है। मैं ज्यादा आगे न कह जाऊँ इसलिये जानकर कहा—खैर, मैं अब तुम्हें राजेश कहूँगी। स्टेनो-बाबू नहीं कहूँगी। बस।

मैं देख रही हूँ वह उखड़ गया। कुछ सोच रहा है। मैं उसे सोचने देती हूँ। पार्वती सामान लेकर आती है, अन्दर चली जाती है। मुझे अकवसाहट-सी होती है। अपने को थोडा-सा हल्का करने के लिये मैं खिडकी के पास आकर खडी हो जाती हूँ। सामने के क्वार्टरों को निरुद्देश्य देखती रहती हूँ। कोने वाले क्वार्टर के निचले हिस्से में रहने वाले सरदार जी किन्हीं आए हुए मेहमानों को विदा कर रहे हैं। यह जोडा है, उनके साथ एक खूबसूरत-सा छोटा बच्चा है। पत्नी स्कूटर के पीछे बैठ गई है— उसका उत्साह और हाथ तथा गर्दन का हिलना-चलना, हँसी की आवाज का आना, जतला यही रहा है कि वह पत्नी है। वह बच्चे को गोदी में लिये है। सरदार जी स्कूटर पर बैठते हैं और स्टार्ट कर देते हैं। स्कूटर चलता हुआ सामने से जाता है। मैं देखती हूँ सरदारिनी अपने पर काबू न पाकर चलते स्कूटर पर अपने बच्चे को चूम लेती है। एक सरसराहट-सी मेरी पूरी देह में दौड जाती है। हिस्सा फिर सूना हो जाता है।

—मैं चलूँ। राजेश खडा होकर पूछता है।

मैं क्षण भर के लिये यही भूल गई थी कि वह भी यहाँ है। अपने में होकर कैसे कट-सी गई थी सारी स्थिति से।

—अभी!...खाना खाकर जाना। मैं जरा अजीब-सी हो गई थी। बैठो। मैं उससे कहती हूँ और खुद भी आकर बैठ जाती हूँ।

—क्या सोचा? मैं उससे पूछती हूँ, जैसे कहना चाहती हूँ अगर सोचा तो बेकार में।

—कुछ नहीं। राजेश ने जवाब दिया।

—तुम निगम की किसी लडकी की नौकरी की कह रहे थे ना? मैंने थोडा गम्भीर होते हुए कहा।

—जी, उनके घर की हालत को देखते हुए जरूरी है। देखते हुए कहा।

पार्वती ने बीच में आकर पूछा—खाना लगा दूँ।

—क्यो ? भूख लगी है, या थोडी देर मे ? मैंने राजेश से पूछा।

—क्यो तकलीफ की ? वह औपचारिकता में बोला।

—तकलीफ तो हो ही गई। मैंने तो सुबह दफ्तर मे ही कहा था, लेकिन तुमने हामी कहाँ भरी थी।

—आप से भय जो खाता हूँ। वह मुस्कराया।

—थोडी देर मे खा लेंगे। मैंने पार्वती से कहा। वह चली गई। फिर जरा हँसती हुई बोली—डरते भी हो, लेकिन तैश भी पूरा दिखाते हो।

—क्या करूँ ! आप भी तो.

—उस बात को छोडो। मैंने बीच मे बात काटी। क्या मैं यह पूछ लूँ कि तुम निगम की बेटी से...

—मैं जानता था आप यह सवाल जरूर करेंगी। उसने मेरी बात को बीच मे काटा।

— जवाब भी शायद तैयार हो कर लिया होगा। मेरी हँसी थोडी-सी और बढी।

—मेरे आपके बीच मे तैयार करने जैसी झूठ है नहीं, इसलिये कह दूँ कि मैं उनकी छोटी बेटी को चाहता हूँ। उसने मुझ पर से दृष्टि हटा ली।

—सिर्फ चाहते हो ! वह भी चाहती ही होगी ?

—हाँ !

—और आगे भी सोचते होगे। शायद शादी करने की ? अपने पिता-माता जी की इजाजत ले ली है ? मैंने उसको पढ़ने की दृष्टि से देखा।

—इतना मैंने सोचा नहीं है। बडी बहिन ने इस बारे मे इशारा किया जरूर था। लेकिन उसकी नौकरी लगनी जरूरी है।

—उससे क्यों नहीं करते? वह भी नौकर हो जायेगी, तुम भी। आज-कल जरूरी है ना। मै टटोलती हूँ उसे।

—ऐसा हुआ करता है क्या ? यह भी बदले जाने वाली चीज है।

—बदलने को क्या हुआ। आगे का फायदा और जिन्दगी का आराम स्थाई होता है, भावुकता का आवेश तो पाने पर खत्म हो जाता है।

—आपकी बातें मेरी समझ मे नहीं आती। मैं सिर्फ इतना जानता आया हूँ कि जो मन चाहे, वही करो। उसने दृढता से कहा। अब वह मुझ

से नजर मिला रहा था।

—मान लो अगर तुम्हारे माता-पिता न चाहें ?

—न चाहें ! तो न चाहें।

—उनसे विद्रोह कर सकोगे।

—अगर वह इसको विद्रोह समझेंगे, तो करूँगा।

—उसके बाद ! मैंने फिर मुस्करा के पूछा। अब की शायद मेरी मुस्कराहट में व्यंग्य था।

—यह बाद की बात आप हमेशा आगे लाती है। बाद में क्या हुआ करता है ? जो होता है क्या पता होता है ? मुझे पता था कि अपने घर से इतनी दूर सर्विस करने आऊँगा। क्या यह पता था कि निगम साहब की लडकी से मेरा सम्पर्क होगा। आगे की सोचना बेकार है। जो सामने है, वह ठीक है। वह जैसे अपने को बोल जाता है।

—फिर शादी के बाद लडो-झगडोगे भी। फिर वही लडकी जिसके लिये आज इतनी चाह है, वह तुम्हें अपने विपरीत लगने लगेगी। फिर तुम्हारा अहं चोट खायेगा, उसका खायेगा तब ? मैं कह तो गई, लेकिन लगा यह मैं अपने को बोल रही हूँ।

—आप बहुत निराशावादी हैं। हर चीज को उलझाकर देखती है। मेरी यही शिकायत आपसे है।

—और मेरी शिकायत है तुम बड़े तेज हो, जोशीले हो, लेकिन डरते भी उतना ही हो। मैं कह रही थी, बडी बहिन से शादी करो, नही तो छोटी के नौकरी लग जाने का इतजार करो। वैसे तुम्हारे अपने मामले में मैं कौन बोलने वाली होती हूँ। लेकिन थोडी देर पहले तुमने मुझे कोई अधिकार दिया है ना ? मैं इसको इतना नही जतलाऊँगी कि तुम विद्रोही मुद्रा मेरे सामने भी अपना लो। मैं समझ सकती हूँ। मैंने बहुत धैर्य के साथ कहा।

राजेश चुप रहा।

—एक-दो दिन में एप्लीकेशन दिलवा दो। उसे जगह दिलवा दूँगी घोष साहब से कह कर।

राजेश को एकदम पता नही क्या सूझा, बोला—आपने एक बात तय

की ? वह मुझे देखने लगा'। उसकी आँख मे फिर वही भावना उभर आई जिससे मैं काँपती हूँ।

—क्या ? मैंने पूछा।

—मैं नही जानता कि आप किस भावना, या रिश्ते से मुझे लेती है। लेकिन निश्चय ही वह स्नेह का है। क्या अब उससे...

—वह ममता का है। मैं एकदम कह उठी। वह सच्चाई मे उस रूप का है जो मुझे मिला नही, और अगर मिलता तो तुम्हारे बराबर, तुम्हारा-सा होता। मेरा बेटा। मैं जैसे किसी शाख की तरह हिल गई। मेरी भावनाएँ पत्तियो की तरह खडखडा उठी।

—तो आपको हटना नही होगा इससे। इससे भाग कर मुझे फिर बार-बार बदलने को बाध्य मत करियेगा। उसका चेहरा दमदमा रहा था।

मैं उसको देख रही थी, लेकिन अन्दर जैसे निशक्त होती जा रही थी। मुझे लगा कि मेरा सिर चकरा रहा है। मैंने आँख मूँद ली। और फिर मुझे नही पता मैं कब शिथिल हो गई।

मेरी जब आँख खुली तो पार्वती मेरे पास गिलास लिए खडी थी। राजेश मेरे मुँह मे चम्मच से ठडा पानी डाल रहा था।

—कैसी तबीयत है ?

मैंने सिर घुमाकर देखा। होश आया। मुंह से निकला—ठीक हूँ।

—चलिये, कमरे मे लेट जाइये। राजेश के हाथ मेरे बालो पर फिर रहे थे। मैंने फिर पलकें बद कर ली। वह स्पर्श-सुख मेरे लिए कितना अपरिचित था, लेकिन कितना तृप्ति देने वाला। मैं सिर्फ अनुभव कर सकती थी, अपने मे समो सकती थी। मैं उसी तरह बैठी रही। धीरे से अपना हाथ उठाया और राजेश के हाथ पर रख दिया। अपने बालो पर दबाये रखा।

—ठीक है। खाना लगा दो। मैंने राजेश को पार्वती से कहते सुना। मेरी आँखो से अपने आप आँसू बह पडे।

राजेश ने धीरे से हाथ हटा लिया। मेरे ही पल्ले से आँसू पोछते हुए बोला—अब सँभलिए। चलिए खाना खाएँ।

वह हट गया था मेरे पास से। मैं जैसे-तैसे उठती हूँ। एक बार डग-मगाती हूँ। संभलती हूँ।

—चलो। कहती हूँ। मैं अन्दर आकर डायनिंग टेबुल पर बैठ जाती हूँ। राजेश मेरे पास बैठा है। मैं उसको कभी देखती हूँ, कभी अपनी गर्दन नीचे झुका लेती हूँ।

वह मुस्कराकर कहता है—दफ्तर में तो आप

—हाँ, दफ्तर में मैं निर्दयी हूँ, कठोर हूँ। एक कवच होता है जिसे पहने रहती हूँ।

—वह यहाँ टूट गया। वह और अधिक मुस्कराया।

—कवच नहीं पहने थी, तभी तो ऐसा हुआ। लेकिन यह सब

—मैं किसी से नहीं कहूँगा कि आप इतनी...

—कमज़ोर हूँ। लेकिन अब बात मत करो। लो, खाना शुरू करो।

खाना खाया। खाना खाकर राजेश ने जाने की स्वीकृति माँगी। मैंने उसे जाने दिया।

लोहे के फाटक के सीधी तरफ की दीवार मे दूधिया शीशा लगा हुआ है, जिस पर काले अक्षरो मे लिखा है—के. सी. सहाय। यानी कैलाशचन्द्र सहाय। इस शीशे के पीछे दीवार के अन्दर बल्व है जो रात मे जला दिया जाता है। फाटक के दोनो तरफ की रोशनी देने वाले ग्लोब के साथ यह नाम भी चमकता रहता है। जिस जगह यह बंगला है उसके आसपास बंगले-ही-बंगले हैं। यानी पूरा क्षेत्र अफसरो या बड़े आदमियो का है।

सुबह का वक्त है, के. सी. सहाय अपनी रोजाना की दिनचर्या के अनुसार इस समय सध्या मे है।

अच्छा शरीर, तन्दुरुस्त चेहरा, सिर के बाल बीच से उड़े हुए। वह इस समय सफेद बनियान और सफेद पायजामा पहिने आसन जमाये बैठे हैं—कभी साँस ऊपर खीचते हैं कभी रोकी गई साँस को बाहर निकालते हैं। उनके होठ कुछ बुदबुदा रहे है जो सस्वर न होकर अन्दर उच्चरित किया जा रहा है।

अन्त मे उनके मुँह से निकलता है—मैं शान्ति रूप हूँ, मैं शक्ति रूप हूँ, मैं, तुम हूँ।

वह आँख मूँदे हुए, ध्यानावस्थित इन तीन वाक्यो की पुनरावृत्ति करते है—मैं शान्ति रूप हूँ। मैं शक्ति रूप हूँ। मैं, तुम हूँ।

इसी तरह थोड़ी देर जाप-सा करने के बाद वह आँख खोलते है। हाथ जोड़ कर जरा-सी कमर झुकाते हैं। वह दोनो हथेलियो से अपने चेहरे को मलते हैं, फिर खड़े हो जाते है।

चहरे पर गाम्भीर्य है। तन्मयता की उस विस्मृति से इस जगत मे

आने के वीच आधे खोयेपन और आधी चेतना का मिला प्रभाव उनके दिमाग़ मे है।

—सोनू !

—जी साहव।

—मैं पूजा कर चुका। वह अपने पढने के कमरे में आते है।

सोनू एक वड़ी गोल ट्रे मे ढके हुए दूध के गिलास और चार टुकडे मक्खन लगी डवल रोटी के ले आता है।

—साहव, आप को जाना है ?

—हाँ, मीटिंग मे जाना है, दोपहर मे खाना खाने आ जाऊँगा। सोनू चला जाता है। वह दूध का घूंट पीते है और टोस्ट के टुकड़े को कुतरते हैं। वह मेज पर केस मे रखे चश्मे को निकाल कर लगा लेते है। वह अब शायद होने वाली वैठक मे जिन विपयो पर विचार किया जाना है उस पर सोच रहे हैं।

घूंट-घूंट करके दूध खत्म करते हैं, टोस्ट खत्म करते हैं, उसी में रखे सफेद रुमाल से मुँह पोछते हैं, ट्रे को मेज से हटाकर फ़र्श पर रख देते है।

अव उन्होंने उन फ़ाइलो को नजदीक खिसका लिया है, जिनको देखना है।

एक वार वह गर्दन घुमाकर वडे शीशो की वनी वायी तरफ की चौडी दीवार के पार देखते है—अभी धूप नही निकली है।

वह फाइल खोल कर पढने लगते है और पास मे रखे कागज पर ज़रूरी प्वाइंट लिखते जाते हैं। फिर वह इस कार्य मे डूव-से जाते है।

चेहरे पर शान्ति है, गहराई है, चिन्तन की जव-तव उठने वाली सिकुडन है। उन्हें नही पता रहता कि सोनू कव ट्रे उठा ले जाता है।

वह एक फ़ाइल को बांधते है, उसे हटाते है, दूसरी ले लेते है। इसी तरह तीसरी, चौथी।

वाहर घन्टी वजती है।

उनका ध्यान टूटता है; तव तक सोनू जाकर लौटता है, खवर देता है—कोई साहव मिलना चाहते हैं ?

—बैठा दिया ?

—जी हाँ !

—ठीक है।

वह फाइलों को तरतीब से रखकर, नोट लिए कागज को उसी में फँसा देते हैं, खड़े हो जाते हैं।

बरामदे में पहुँचते हैं, तो अपरिचित आदमी को अखबार पढ़ता हुआ पाते हैं।

—आइम अनिल सारस्वत फ्रोम ·

—बैठिये ! बैठिये ! बहुत खुशी हुई आप से मिलकर। सामान ? सहाय ने दूर तक देखा जैसे वह जानना चाह रहे हों कि क्या उन्होंने अपनी कार बाहर खड़ी कर रखी है।

—मैं रात ही आ गया था। सर्किट हाउस में ठहर गया। सारस्वत ने बैठते हुए कहा।

—उधर ठहरने की क्या ज़रूरत थी ? यहीं आ जाते। खैर, ड्राइवर से सामान मँगवा लेंगे।

—एक ही बात है। क्यों बॉदर करते हैं ?

—सोनू ! सोनू ! सहाय ने नौकर को पुकारा।

—जी सरकार ! वह आकर खड़ा हुआ।

—थोड़ा-सा नाश्ता-वाश्ता तैयार करो। ज़रा जल्दी।

—रहने दो मिस्टर सहाय, क्यों फोरमेलिटी में पड़ते हो। मैं बिलकुल तैयार होकर चला हूँ। सारस्वत बोले।

—अच्छा कॉफी तो ले लीजियेगा। वह सोनू की तरफ हुए। सोनू; दो कॉफी ले आओ। सारस्वत साहब दोपहर का खाना यहीं खायेंगे।

सोनू चला गया।

—आप तो पूरी औपचारिकता निभा रहे हैं। सारस्वत ने पीठ को सहारा दिया।

—इसमें क्या है—पहली बार मिल रहे हैं। आपको रिसीव करने मुझे आना था, लेकिन आपने इत्तला नहीं दी। चलिये यहाँ आ गए—सो काइन्ड ऑफ यू।

—सिगरेट ! सारस्वत ने जेब से पैकेट निकालते हुए सहाय की तरफ़ बढाया।

—धन्यवाद ! पीता नही हूँ। सहाय मुस्कराये।

यह इन्दर-हरबिन्दर का क्या मामला है? मैंने सोचा मीटिंग मे डिसकस करें इससे पहले, वैसे जान लूँ आप के जरिये।

—मैं उन्हीकी फाइल देख रहा था। वैसे पार्टी जबरदस्त है, और तेज भी है। ऐसी भी खबर है कि इसकी कई कम्पनियाँ काम कर रही है, जो वास्तव मे किसी जगह नही है। इनका कोई ऑफिस उन नामो से बिजनेस करता रहता है। सहाय आराम से बैठ गए।

—सवाल यह है कि अपने लोग किस तरीके से चलें। वैसे तो मैं अपनी तरह से भी मूव ले सकता था, लेकिन आपका कॉपरेशन समस्या को जल्दी हल कर सकता है। सारस्वत, सहाय को गौर से देख रहा था।

—ऐसे मामलो मे ट्रस्ट करना ही फायदेमन्द रहता है। इनमें हरबिन्दर बहुत तेज है। प्रभाव और दबाव दोनो खुलकर इस्तेमाल करता है।

—अगर माइन्ड न करो, मिस्टर सहाय; तो मैं एक प्रस्ताव रखता हूँ। वह मेरे और तुम्हारे बीच तक रहे।

सोनू को कॉफी लाता देख कर सारस्वत चुप हो गए। वह कॉफी रखकर लौट गया तब बोले—मैं सोचता हूँ हम मीटिंग मे उन तरीकों को रखें, जिनको हमे कतई इस्तेमाल नही करना है। आप खुद अनुभवी हैं; इसका कोई न कोई आदमी आपके यहाँ होगा; वह उसे जरूर खबर पहुँचायेगा। हम अपना तरीका दूसरा रखकर उसकी बुक्स और रिकार्ड पकडने में सफल हो सकेंगे।

—आप मुझ पर विश्वास रखते है ? सहाय ने पूछा। कॉफी ! उन्होंने कप उठाने के लिए कहा।

—ऐसा न होता तो मैं तुम्हारे पास नही आता—सीधा मीटिंग मे मिलता। मेरे पास आप के बारे मे काफी सूचनाएँ है—वह विश्वास करने के लिए काफी है। यूँ अगर मैं ही दोहरा रोल प्ले कर जाऊँ तो कोई क्या करेगा। यह तो कैरेक्टर की बात है। सारस्वत ने कॉफी का सिप

खीचा।

—तो ठीक है। मुझे खुशी हुई आप को समझ कर। मैं खुद इस पार्टी के पीछे कब से पड़ा हूँ लेकिन इसने हाथ नही रखने दिया। मेरे पास कई तरह से इसने पहुँच बैठाई, बड़ी रकम का प्रस्ताव भी रखा, लेकिन मैंने ठुकरा दिया। सहाय भी कॉफी ले रहे थे।

—जरूरत है मिस्टर सहाय। देखिये सब होता है, और होता रहा है; लेकिन जब गोवर्नमेंट ने कड़ा कदम ले लिया तब हमको कैसा होना होगा। होना चाहिए। सारस्वत ने दबाव के शब्दों मे कहा। उनका कॉफी पीने का क्रम जारी रहा। साथ मे सिगरेट चल रही है।

—ईमानदारी की बात है। मिस्टर सारस्वत कभी-कभी तो राजनीतिक लोगो का हद से ज्यादा इन्टरफीयरेंस काम नहीं करने देता था। ऊपर से ट्रांसफर का डर। बेकार-से-बेकार डिपार्टमेन्ट में फेंके जाने से कौन हिचक नही खायेगा। इस हरविन्दर के ताकतवर होने का खास कारण यही था। सहाय ने जैसे अपना स्पष्टीकरण दिया।

—लीव दिस आल। जैसा वक्त वैसा बदलाव। गोवर्नमेन्ट स्ट्रिक्ट है, हम हो जाएँ। अपने को तय कर लेना चाहिये इस केस को पकड़ कर छोड़ेंगे। लेट अस बी एन्थूजिस्टिक। हम कमर कसें तो क्यों नही कामयाब होंगे। सारस्वत का चेहरा चमक उठा।

—होंगे। मुझे विश्वास है। सहाय के चेहरे पर आत्मविश्वास झलक उठा।

—तो फिर तैयार होओ! उन्होंने कलाई घड़ी देखते हुए कहा। वक्त हो गया है।

—मैं पाच मिनट मे आता हूँ। सहाय खड़े हो गये। अन्दर चले गये। सारस्वत ने दूसरी सिगरेट जला ली और कश लेते हुए सोचने लगे।

सहाय जब तक तैयार होकर आए तब तक ड्राइवर उनकी कार ले आया था। वह फाइलों को अपने स्टडीरूम से ले आए। दोनों पीछे की सीट पर बैठ गये। कार ऑफिस के लिये चल दी।

के. सी. सहाय। यानी कैलाशचन्द्र सहाय। जाहिर है इस बंगले का

मालिक आई. ए. एस. केडर का अफसर है। के. सी. सहाय इन्कम टैक्स ऑफीसर हैं। सरकार के इतने महत्वपूर्ण विभाग के महत्वपूर्ण अफ़सर हैं, इसलिये यह अन्दाज लगाना मुश्किल नही है कि इनको समाजिक, खास तौर से आर्थिक आधार पर प्रचलित मान्य श्रेणियो मे से किसमे रखा जा सकता—अपर मिडिल क्लास। उच्च मध्यम वर्ग। उसमें भी आयकर विभाग! आदमी तनख्वाह के अलावा कुछ भी ऊपर से न लेना चाहे, फिर भी आता ही है। बरसात मे कोई सिर पर छाता तान ले तब भी क्या बौछारें छोड़ती है। और मिस्टर सहाय ने ऐसे विरक्त सन्त होने का दावा कभी नही किया। जैसा कि सरकारी नौकरी का चक्र है—मिस्टर के. सी. सहाय यानी कैलाशचन्द्र सहाय की नाम की प्लेट उनके तबादलो के साथ, एक शहर से हटती, दूसरे शहर के किसी भी आलीशान बंगले पर लगती रही है।

अभी तक के परिचय से इतना पता लगा कि सहाय के बंगले मे सोनू था, ड्राइवर था इसके अलावा दफ्तर के चपरासी काम के लिये आते ही रहते है। हमारे हिन्दुस्तान मे चपरासी एक ऐसी जात होती है, जिसे सरकारी कोषागार से तनख्वाह मिलती है, दफ्तर का काम करने के लिये लेकिन उसे अफसर, उसकी बीवी-बच्चो की हाजिरी बजानी पड़ती है—यह उतना ही जरूरी है जितना रोजाना दफ्तर के हाजिरी रजिस्टर मे दस्तखत करना। तो क्या सहाय साहब के बीवी-बच्चे बाहर गये हुए है?

नही, उनकी बीवी और कोई नही है, वही मिसेज सीमा है, जिनको सहाय साहब से अलग हुटे तकरीबन बीस साल हो गये। संतान हुई नही। आठ साल, जिस समय यह साथ रहे, उस बीच तो संतान हुई नही, आगे अलग हो जाने ने दोनो की जिन्दगी के रास्ते ही अलग कर दिये। यह तो अलग होने के बाद कुछ साल तक तकलीफ होती है—अभ्यस्त और आपसी निर्भरता या समझौते के रुटीन्ड जीवन मे बाधा पडने पर—उसके बाद तो व्यक्ति ढर्रा ले ही लेता है। फिर वह वास्तव मे अपनी अकेले की दुनिया को तरह-तरह का व्यस्तताओं से भर लेता है—न करे तो क्या करे?

जिन्दगी कोई बन्द गली नही है। और फिर आज के वक्त मे जबकि व्यक्ति का अहं अपनी शक्ति रक्त मे घोल कर उसको विकल्पो की चट्टानो के सामने खड़ा कर देता है। बस, उसमें सामर्थ्य और चुनौती को स्वीकार

करने का माद्दा हो। के. सी. सहाय, यानी कैलाशचन्द्र सहाय, ने और सीमा ने, दोनो ने अपनी-अपनी तरह से इस चुनौती को लिया बावजूद कि दोनों पहले एक दूसरे के साथ थे। एक पति या, एक पत्नी थी। बाद मे दोनो अपनी-अपनी इकाई हो गये।

सीमा बढते-बढते कम्पनी की ऊँची जगह पा गई, सहाय अपने काम मे लगे, अपना चारों तरफ की सोसायटी मे हारते-जीतते-खेलते उस इज्जत को पा गए जो एक विश्वसनीय और योग्य अफसर को प्राप्त हुआ करती है।

सीमा चाहती तो अपनी इकाई को बदल सकती थी। सहाय चाहते तो अपनी अकेली ज़िन्दगी के लिये स्थाई संगिनी का चुनाव कर सकते थे। दोनों को छूट थी, दोनो ने अलग होते वक्त एक दूसरे से पूछ लिया था। लेकिन सीमा, मिसेज़ सीमा सहाय रही और के सी सहाय इस खुले विकल्प को नही अपना सके।

स्पष्ट है कि बगले मे—चाहे तबादले की वजह से कितने ही शहर बदलते रहे हों—स्थाई रूप से कोई औरत उनकी पत्नी बनकर नही आ सकी गो कि दिक्कत कही नही थी। न उस तरफ से न अपनी तरफ से।

अनिल सारस्वत ने दफ्तर से एक बड़े होटल का कमरा बुक कर लिया था। उन्होंने मीटिंग के बीच मे यह घोषित कर दिया था कि वह आज शाम को जा रहे है। सहाय को उन्होंने शाम को पाँच बजे स्टेशन पर पहुँचने के लिये कहा था। सहाय के समझ मे नही आया था कि होटल का कमरा उन्होंने किसके लिये बुक करवाया है। उनके दिमाग मे शक जागा कि सारस्वत कहीं उन पर चाल तो नही खेल रहे हैं! उन्होंने यह सोचकर इस शक को काटना चाहा कि शक करना हमारी आदत हो गई है। पुलिस वालों की तरह हमें भी सामान्य-सी घटना मे धोखा-धडी और कोई-न-कोई 'स्टोरी' दीखने लगती है।

स्टेशन पर जब वह पहुँचे थे तब इन्सपैक्टर और चपरासी वहाँ मौजूद थे। सारस्वत साहब फर्स्ट क्लास के सामने खड़े थे। उनकी रिजर्व्ड-सीट पर चपरासी ने उनका बिस्तर बिछा दिया था। वह गाल मे पान

दवाए सिगरेट पी रहे थे।

सहाय ने इस वक्त उन्हें गौर से देखा। गोरा रग, इकहरी देह, चेहरा लम्बोतरा, आंखों में चमक। देखने से साफ जाहिर हो कि वह एक तेज और काइयें अफ़सर है।

वह इन्सपैक्टरों को उपदेश दे रहे थे—मैंने जाना कि आप लोग बहुत मुस्तैदी से काम कर रहे हैं। आप लोगों को अपनी ड्यूटी को ईमानदारी से पूरा करना चाहिए। हमारा डिपार्टमेन्ट बहुत बदनाम है खाने-पीने के लिये। हमे काम करके लोगो की इस ओपीनियन को बदलने की कोशिश करना चाहिये। मै जानता हूँ कि लोग इतने पर भी हम पर विश्वास नही करेंगे, लेकिन हमारे हाथ तो साफ़ होंगे।

इन्सपैक्टर वगैरा चुप्पी साधे ध्यान से सुन रहे थे। मेरे पहुँचते ही सारस्वत उधर से हटकर मेरी तरफ हुए—आपको बहुत तकलीफ दी। मै इन लोगो को बता रहा था कि मैं आपके काम से सतुष्ट हुआ हूँ।

इन्सपैक्टर वगैरह सहाय साहब के आने से पीछे हट गये थे। प्लेटफार्म पर जितनी जाने वालों की भीड थी, उतनी ही पहुँचाने वालों की। ऐसा लग रहा था कि टिकिट चैकरो का उडन दस्ता रुका हुआ था, क्योंकि बहुत से चैकर नये-नये से थे।

गाडी मे इन्जन लग चुका था। वह पहली सीटी दे चुका था। गार्ड ने विसिल बजा दी थी और ऊपर हाथ करके हरी झडी हिला रहा था।

सारस्वत ने धीरे से—बिल्कुल इतने धीरे से कि सिर्फ सहाय सुन सके, कहा—सीट मी इन द होटेल एट नाइन इन द नाइट।

सहाय उनका चेहरा देखते रह गये। नौ बजे रात को होटल मे मिलूं। गाडी चल दी और सारस्वत हाथ मिलाकर डिब्बे मे चढ गये थे। गाड़ी चल रही थी और वह होंठो पर मुस्कराहट जडे विदाई का हाथ हिला रहे थे। सहाय भी मशीन-से बने सीधा हाथ हिलाये चले जा रहे थे और दिमाग में घूम रहा था—नौ बजे होटल मे मिलना। होटल, जिसका कमरा सारस्वत ने उनके कमरे मे बैठकर उनके सामने बुक करवाया था।

गाडी सामने से गुजरती गई। उसके आख़िरी डिब्बे की पीठ दीख रही थी। सहाय साहब चकराये हुए प्लेटफार्म के बाहर आए और कार मे बैठ

गये। ड्राइवर से कहा—बंगले चलो।

सहाय साहब ने सोनू को शाम की छुट्टी दे दी थी कि वह चाहे तो कोई पिक्चर देख आए। उन्होंने कह दिया था कि वह आज होटल में खाना खा लेंगे। वैसे भी महीने में आठ-दस दिन ऐसे पड़ ही जाते थे जब वह या तो किसी दोस्त अफसर के यहाँ खा लेते थे, या यूँ ही किसी होटल में। और यह बात कोई नौकर नहीं जानता था कि ऊपर से गम्भीर, सधे हुए और अपने को बाहरी व्यस्तता में फँसाए हुए उनके मालिक क्यों ऐसा करते थे। सब सोचते थे, अफसर हैं, साहब लोगों का दोस्त-अहबाबों में ऐश-मस्ती करना, पार्टी करना-कराना, जीने का कायदा होता है।

लेकिन वास्तव में सहाय कभी-कभी अपने अकेलेपन से भागते थे। उनको बंगले का खालीपन अजीब तरह से चुभ उठता था। तब, वह दोस्तों को चाह उठते थे, गप-शप और हल्के-फुलके वातावरण में दर्द को भुलाने की तदबीर कर लेते थे।

ऐसा हमेशा नहीं होता था (वह खुशी से भी पार्टियों में शामिल होते थे) लेकिन अक्सर ऐसा ही होता था कि जब उन्हें बंगला दूसरी यादें दिलाने लगता था, तब वह पीछा छुड़ा कर भागते थे।

पर इस वक्त वह सारस्वत के कहे मुताबिक होटल जाने के लिए तैयार हो गये थे। हालांकि वह यह तो समझ रहे थे कि कोई-न-कोई वहाँ मिलेगा, लेकिन कौन-कौन मिलेगा, खुद सारस्वत मिलेंगे या उनकी बनाई हुई योजना मिलेगी, इसका अन्दाज नहीं था। उन्होंने घड़ी देखी, साढ़े आठ बजे थे। सोचा कि होटल से सम्पर्क करके पूछ लें, लेकिन फिर सोचा, जब जाना है तब पूछ-ताछ की क्या जरूरत।

ड्राइवर को टाइम दिया था, वह कार ले आया।

—सोनू पिक्चर गया है, तुम बंगले पर रहना। उन्होंने कार में बैठते हुए कहा।

—जी साहब! ड्राइवर तैयार होकर आया था, उसे नहीं पता था कि साहब खुद कार ले जाएँगे।

—फाटक खोल दो। सहाय साहब ने कार स्टार्ट की। ड्राइवर दौड़ा-

दौड़ा गया, फाटक खोला। कार निकल गई। वह फाटक दोबारा बन्द करके लौट आया।

नौ बजे के करीब सहाय की कार उस बड़े होटल में थी। कार पार्क करके वह अन्दर पहुँचे। वह काउंटर तक पहुँचे, सारस्वत के नाम से बुक किया कमरा पूछा; पता लगा कि उसमें तो वह अभी तक नहीं आए हैं, उनके एक दोस्त कमरा नम्बर इक्कीस में ठहरे हैं। नाम विश्वास धवन है, उन्होंने मिस्टर सारस्वत के कमरे का एडवांस पेमेंट किया है।

बताने वाले ने एक व्यक्ति को उनके साथ किया, और सहाय साहब के हटते ही मैनेजर को रिंग करके सूचना दी—इन्कम टैक्स ऑफीसर आए हैं। वह सहाय साहब को पहचानता था।

सहाय इक्कीस नम्बर कमरे में पहुँचे तो सारस्वत को सोफे की एक कुर्सी पर बैठा पाया। उनके सामने स्कोच रखी थी। प्लेट में कुछ नमकीन रखा था। पेग भरा हुआ था और वह उंगली में सिगरेट दबाए धुआँ छोड़ रहे थे।

—आ गये, मैं इंतजार कर रहा था। बैठिए! सारस्वत बोले। जाहिर था कि वह थोड़े से शरूर में थे।

कमरा बताने वाला व्यक्ति लौट गया था। सहाय एक तरफ की कुर्सी पर बैठ गए।

—मैंने तुम्हें बताया नहीं था कि मुझे अगले स्टेशन से उतर कर यहाँ आना था। वह सब मेरी स्ट्रैटिजी का हिस्सा था। ताकि सब सोचें कि मैं यहाँ से चला गया। उन्होंने सहाय को बताया। न बताते तो भी अब तो सहाय साहब को सब पता चल गया था।

—सिगरेट तो नहीं पीते, इसमें तो एतराज नहीं होगा? सारस्वत ने सिप लिया।

—एतराज तो सिगरेट में भी नहीं है, लेकिन जब आपने पूछा था, उस वक्त मैंने यही कहा था कि पीता नहीं।

—तो लो; फिर मस्ती से बातें करेंगे। सारस्वत ने दूसरे पैग को भर दिया।

सहाय ने नमकीन का टुकड़ा मुंह में डालकर एक घूंट लिया। फिर

उन्होंने सिगरेट जला ली। स्पष्टीकरण दिया—जब यह पीता हूँ उस वक्त सिगरेट जरूर पीता हूँ।

—असल में शाम के कुछ पेग, दिन भर के काम की थकान को हटा देते हैं। मैं तो महसूस करता हूँ कि सोचने की गहराई इसके पीने के बाद ही आती है। सारस्वत अब पेग को खाली कर रहे थे।

—या तो गहराई आती है या फिर होश भी चला जाता है। सहाय ने टिप्पणी की। अब तक वह किसी डर की वजह से खुल नहीं रहे थे। अब वह साफ़गोई पर आ गये। उन्होंने हाथ के पैग को आधा खत्म कर दिया, जिसे सारस्वत ने फिर भर दिया।

—मिस्टर सहाय, वैसे तो वह पीना ही क्या जो होश बाकी रखे, लेकिन अपने लोग तो संयम रखने वाले हैं, इसलिए उतनी ही पीते हैं जितनी में मस्ती आए। यार छोटी-सी जिन्दगी है, इसका ज्यादा-से-ज्यादा मजा नहीं लिया जाये तो पैदा होने का मकसद ही क्या हुआ? सारस्वत ने धुआँ उड़ाते हुए एक उर्दू का शेर सुनाया जो शराब से सम्बन्धित था।

—वाह; आप तो शायर का दिल भी रखते हैं! सहाय ने हँसकर कहा।

—अरे जनाब यह चीज ही ऐसी है—शेर-शार तो यह खुद बुलवा लेती है। सारस्वत ने सिगरेट को ऐश ट्रे में डाल दिया।

सहाय को लगा कि यह आदमी गजब का चलताऊ है। उनको बहुत सँभल कर इसको वर्तना होगा। वह बोले—मेरा खयाल है हम काम की बातों पर आ जाएँ।

—इसको खत्म करो! एक और लो। जरा मस्ती में आओ, फिर काम की बातें करेंगे। मिस्टर सहाय, काम का एक दूसरा भी मतलब होता है। उसकी जरूरत हो तो बोल देना, साइड वाला कमरा अपने ही नाम है। सारस्वत ने इस बेहूदा तरीके से आँख मारी की सहाय धक्का-सा खा गये।

—मेरा उसमें इन्टरेस्ट नहीं है। सहाय ने जवाब दिया।

—क्या सिगरेट की तरह मना कर रहे हो? भाई अपने को तो जरूरत पड़ती है, इसलिये हमने तो बुकिंग करा रखा है।

सहाय चुप रहे।

—मालूम पड़ता है बीवी से बहुत डरते हो ? सारस्वत का पैग खाली हो गया था, उसने भर लिया। सहाय को नीचे करने का इशारा किया।

—बस, थैंक्यू ! मेरे लिये काफी है। उन्होंने पैग नीचे नही किया।

—मजा किरकिरा मत करो। कैसे अफसर हो ? हमने तो तुम्हारी जिन्दादिली की बहुत तारीफ़ सुनी थी। सारस्वत ने अपने पेग का घूंट भरा।

सहाय के चेहरे पर खीज झलक आई थी। बीवी से डरने की बात उन्हें बेहूदी लगी थी। वह जैसे-तैसे अपने पर काबू ला सके। उन्होने सोच लिया वह ऊल-जलूल बातों का जवाब न देकर चुप रहेगे—अपने आप असली बातों पर आएगा।

—बीवी तो अपनी भी खूंखार ही है। पता चल जाये तो महाभारत छेड दे। इसलिये जब उससे दूर, बाहर होता हूँ, तब जायका बदलता हूँ। बीवी तो बस बीवी होती है।

सहाय चुप रहे।

वह आगे बोला—यार, आदमी हर्गिज बूढा नही होता अगर वह जवान औरतों का साथ लेता रहे। वह बिलकुल टोनिक का काम करती है।

सहाय का सयम छूटता जा रहा था। उनकी इच्छा हुई कि कमरे से निकल जायँ, पर फिर जबर्दस्ती बैठे रहे। सुबह की और स्टेशन पर की आदर्शवादी बातें उन्हे बकवास लगी। वह फिर भी चुप रहे।

सारस्वत को अब महसूस हुआ कि जैसे वही बोले जा रहे है, सहाय चुप बैठे है।

—सॉरी, सहाय लगता है तुम शाकाहारी हो यानी प्यूरिटन। एक बीवी के पत्नीव्रता। कोई बात नही। लाओ फिर तुम्हे अपना प्रोग्राम बता दूं। तुम्हें यह पता चल गया, मैं सारस्वत नही आज से। विश्वास धवन हूँ। मैं बॉम्बे का व्यापारी हूँ। मैं यहां ठहरूँगा, इन्दर-हरबिन्दर से सौदा करूँगा। आप अपने ऑफिस मे यह फैलाओगे, कि विश्वास धवन नाम का व्यापारी इस होटल मे ठहरा है, इस पर धोखा-धडी के चार्ज

तब पकडना है जब यह सौदा कर रहा हो किसी कम्पनी से।

—आप अकेले यह काम करेंगे। सहायक ने पूछा।

—नही, चार आदमी कल आ रहे है, जो कही दूसरी जगह ठहरेंगे—किन्ही दूसरे होटलो में। आपको ऐसा बन्दोबस्त रखना है कि जब आपको सूचना मिले फौरन छापा मार दें। सारस्वत अब गम्भीर थे। उनका चेहरा ऐसा हो गया था जैसे उनकी योजना, पूरी डिटेल्स के साथ उनकी आँखों मे घूम रही हो।

आत्मविश्वास और जोश उनके शब्दों में था।

—ठीक है। अगर वैसे भी जरूरत पडे तो मैं तैयार हूँ।

—हाँ, आप हरबिन्दर की खोज-खबर पूरी तरह से रखियेगा। मै भी रखूँगा। मुझे सूचनाएँ मिलती रहनी चाहिए। इट इज सीक्रेट। यह किसी तरह से आउट नही होना चाहिए कि मैं अनिल सारस्वत हूँ—यही फैलना चाहिये कि मैं विश्वास धवन हूँ।

अटेंडेन्ट आया—साहब खाना कितनी देर मे लाऊँ।

—कितनी देर मे नही, अभी ले आओ। दो सेट।

अटेंडेन्ट चला गया। सहाय सोच रहे थे कि ''

—क्या सोच रहे हैं? सारस्वत ने पूछा। बुरा मत मानना, मै आउट स्पोकेन हूँ। तुम अगर पूछते तो मैं तुम्हे अपनी बीवी के बारे मे बताता। अपनी बडी लडकी के बारे में भी जिसकी शादी मैंने सेठ के लडके से की। वह इसलिये मान गया क्योंकि उसका केस मेरे पास था। मैंने उसका फ़ायदा कराया, उसके लड़के को माँग लिया। लडकी खूबसूरत और पढी-लिखी थी। सेठ के लडके को पसद करने मे आना-कानी नही करनी पडी। तुम्हारे बाल-बच्चे?

सारस्वत ने प्रश्न किया।

सहाय को फिर लगा कि सारस्वत उस क्षेत्र मे घुसना चाहते है जो उनका व्यक्तिगत क्षेत्र है। वह चोट खाए से बोले—मेरे न बीवी है न बच्चे। इससे ज्यादा नही पूछियेगा।

—क्या? सारस्वत ताज्जुब से देखने लगा।

—हाँ! सहाय ने जवाब दिया।

—इसके मतलब है तुम—आप, क्वाँरे हो। सारी ज़िन्दगी को इस बेरहमी से तुमने खराब किया। एक्सक्यूज़ मी मिस्टर सहाय, मैंने समझा था .

—आपने जो समझा था, वह गलत था। सहाय ने बीच में बात रोकते हुए कहा। लेकिन अब उनको भी हलका-सा नशा आने लगा था। नशे ने और लेने की इच्छा उठा दी थी। उन्होंने सारस्वत के कहने का इन्तज़ार नहीं किया बोतल में से अपने प्याले को भर लिया। उन्होंने सामने रखे पैकेट में से एक सिगरेट खींच ली—जला ली।

—क्या आदमी, आदमी को पहचानता है? मिस्टर सारस्वत! क्या कोई भी किसी को जानने का दावा कर सकता है। सहाय ने पूछा।

सारस्वत मस्ती में थे।

—एक्सक्यूज़ मी सहाय, डोन्ट पुट अप वासटर्ड क्वेश्चन्स। उन खयालों को लेकर दिमागी ताकत जाया नहीं करनी चाहिये, जिनके सिर और पजे टूटे हों। मैं अपसे को वेस्टमैन मानता हूँ, क्योंकि जो करना है उसे जानता हूँ—करना इसलिए है कि मेरी तमन्नाएँ है, विशेज है। मैं उनके लिये जीता हूँ, लड़ता हूँ और पूरा करता हूँ। नथिंग वियोन्ड दिस। इसके अलावा कुछ क्यो? और सारस्वत बिलकुल नाटकीय ढंग से हाथ नचा उठे। उनको फिर चैन नहीं पड़ा।

वह आगे बोले—मैंने तुम से दोस्ती का हाथ बढ़ाया, इसलिये कि मुझे इस केस में तुम से मदद लेनी है—और ऐसे केसेज़ की कामयाबी, मेरे प्रमोशन्स की सीढ़ी होगी। उसके बाद तुम्हें काम पड़े तब तुम मेरी मदद ले लेना। अपनी ख्वाहिशों को पाने के लिये क्या छोटी-सी फिलॉसोफी काफी नहीं है! आई वाँदर लीस्ट देन दिस!

सहाय, सारम्बत के आवेश और जोश को देखते रह गये। उन्हें लगा जैसे आदमी नहीं है। विस्फोटक डाइनामाइट है। पतले से सींकिया शरीर में इतनी जबर्दस्त ताकत! वह दब-से गये। क्या वह इसलिये आए थे कि जरा-जरा-सी बात पर सामने वाला यह आदमी उन्हें निहत्था कर दे? कहाँ गई उनकी मजबूती?

सहाय ने गहरा घूँट लिया जैसे वह उस शराब से ताकत लेना चाह

रहे हो। उन्होंने सारस्वत को परास्त करने के लिये जैसे दाँव लिया—यू टॉक टू मच सुपरफ्लूअस ! क्या तुम मुझे इस तरह रेजेक्ट करके छोटा बताना चाहते हो, जब कि तुम—मुझे लगता है—जी नहीं रहे हो, वह रहे हो, हर दिन के साथ, हर घटना के साथ। और इसलिये तुम्हारी कोई, शक्ल नहीं है। तुम वह हो, जैसा तुम बनाये जाते हो किसी भी परिस्थिति के द्वारा।

सहाय ने महसूस किया कि उनका आक्रमण भारी था। सारस्वत खामोश हो गये। उन्होंने दूसरी तरफ गर्दन फेर कर लगातार सिगरेट को खींचना शुरू कर दिया। दोनों के बीच में ठहराव आ गया।

अटेन्डेन्ड ने बाहर से पूछा—आ सकता हूँ ?

—हाँ। सारस्वत ने जवाब दिया। वह छोटी गाड़ी को अंदर लाया जिस पर खाना लगा हुआ था। उसने एक तरफ रखी डाईनिंग टेबुल पर प्लेट्स बिछा दी। स्कोच की दूसरी बोतल मेज पर मुँह उठाये हुए थी।

—साहब; आइये ! वह मेज के पास से बोला।

—उठो। सारस्वत ने सहाय की तरफ देखा और खड़े हो गये। सहाय ने देखा वह अजहद गम्भीर हो गये थे—जैसा उनके चेहरे पर था। लेकिन वह शान्त थे। सहाय को उठना पड़ा। नेपकिन्स को अपनी-अपनी जाँघों पर बिछा कर दोनों ने खाना शुरू किया। सारस्वत ने नयी बोतल खोल ली और प्याले को भर लिया—आप, मिस्टर सहाय !

—अब नहीं; मुझे लौटना भी है। सहाय ने जवाब दिया।

—क्या दूसरे कमरे में रुकना नहीं चाहेंगे ?घर पर क्या है ? सारस्वत ने सहाय को देखा।

—मुझे घर ही जाना होगा। सहाय को आश्चर्य हो रहा था कि वह अन्दर से गिरते जा रहे थे। उन्होंने कोशिश की कि उनके चेहरे पर उदासी न आए, लेकिन वह आ चुकी थी।

सारस्वत ने अटेन्डेंट को आज्ञा दे दी कि वह जा सकता है। वह चला गया।

—मिस्टर सहाय, सारस्वत बोले—आपकी नजर में मैं बहने वाला हो सकता हूँ, लेकिन मुझे लगता है आप ठहर गये हो ! किसी कमरे में

बद हो ! क्या मैं सही नही हूँ ? फिर सारस्वत ने अपने आप जवाब दिया —मैं सही हूँ। क्या मुझे जानने दोगे कि तुमने अब तक शादी क्यो नही की ? देखो, आदमी के साथ ऐसे भी मोमेन्टस होते है, जब वह दूसरे के दर्द को अपने दर्दों के ज़रिये महसूस कर सकता है। क्या मुझे इस काबिल समझते हो ? हालाँकि मेरे दर्द किसी हारे हुए आदमी के दर्द नही है।

सहाय को लगा इस आदमी ने फिर उनको छुआ। उनके पर्दो को पार करके अपनत्व का हिलाने वाला स्पर्श दिया। उन्होने हाथ के निवाले को रोका, बोले—मिस्टर सारस्वत, मैं सिर्फ इतना बता सकता हूँ, कि तकरीबन बीस-बाईस साल पहले मैं एक चाही जाने लायक लड़की का हसबेंड था। वह प्लीजिंग थी, बहुत डियर थी मुझे। लेकिन फिर हम अलग हो गये। इतने अलग कि आज न उसको मेरा पता है, न मुझे उसका। क्या कोई आदमी अपने मन की औरत पाकर, उसको खोने के बाद, फिर किसी को चाह सकता है ? नही, वह सिर्फ उसे, उसकी याद को चाह सकता है, या फिर किसी को नही चाह सकता।

—उसके बाद तुमने किसी औरत को अपने दिल के नजदीक नही आने दिया ? तुमने किसी औरत के सहारे अपने आधेपन को पूरा नही करना चाहा ? सारस्वत ने सहानुभूति के साथ पूछा।

सहाय हँस दिये। उनकी हँसी मे जैसे सारस्वत का मजाक बनाना, या उन पर तीखा व्यंग्य करना था—मिस्टर सारस्वत बिलकुल ऐसा तो नही हुआ। मैंने भी चाहा कि एक उस औरत की कमी को दूसरों मे पा लूँ। मैंने तलाश करने और पाने की कोशिश भी की कई तरह से; तरह-तरह की औरतो के ज़रिये। लेकिन जानते हो अभी तुम ने क्या कहा था ? मैं 'आप' नही कह रहा हूँ, 'तुम' कह रहा हूँ। तुमने वास्ता दिया अपनत्व का, उन क्षणों का जिसमे एक दर्द, दूसरे दर्द को समझता है, उसे राहत देता है। शायद मेरा अपना दर्द—उसका दिया हुआ दर्द—जो किसी की दी हुई राहत को ले नही सका। मैंने उस तलाश को रोक दिया। जो चीज़ एक जिस्म के ज़रिये, उससे अलग होकर, अन्दर की हो गई हो, वह सिर्फ उसी से सुकून पा सकती है। उसी से अपने अधूरेपन की कम्पलीटनेस पा सकती है।

—यह सेन्टीमेन्टिलिटी है, फ़ालतू की भावुकता है। सारस्वत एक-दम तिलमिला उठे।

—तो मैं तुमसे मना थोड़े ही करता हूँ। तुम अपनी किसी कमी की तलाश जारी रखो! मेरी कमी की पूरक अगर अप्राप्त है तो मैं क्या कर सकता हूँ।

—मेरी कोई तलाश नहीं है। मैं जिस्म को जिस्म मानता हूँ। मैं अगर अपनी संतुष्टि को खरीद सकता हूँ तो मुझे कोई हिचक नहीं है।

—मैंने कब कहा कि तुम गलत हो। अपनी-अपनी ज़िन्दगी को अपनी-अपनी तरह से ही तो जिया जा सकता है। कोई किसी की ज़िन्दगी कैसे जी सकता है।.. नहीं जी सकता! कैसे जी सकता है किसी की ज़िन्दगी? बताओ, क्या जी सकता है? लेकिन तलाश के नाम पर अंधा भी तो नहीं हो सकता।

—नहीं जी सकता, मिस्टर सहाय! शायद इसीलिये, बाकी जगहों पर एक कॉमन इन्टरेस्ट और कॉमन ईमानदारी को जिया जा सकता है।

—हाँ; अपने को साथ लिये, आदमी दूसरों के साथ, अपने व उनके लिये जी सकता है। हमारा खयाल है हम एक होने वाली जगह पहुँच गये।

—बहुत झगड़े के बाद! सारस्वत हँसे। हालाँकि यह साथ जीने की बात भी एक फर्स्ट क्लास दकाव है—कवर अप।

—हाँ, झगड़े और फर्क के बाद! सहाय के ठंडी साँस-सी निकली। बहुत गहरी साँस। सारस्वत नहीं जान सके कि उस साँस में कौन था; उन शरूर भरी आँखों में कौन तैर रहा था।

वह सीमा थी! मिसेज सीमा! अछोजी उम्र वाली बीस साल पहले की सीमा।

सहाय होटल से बंगले आए उस वक्त साढ़े ग्यारह बज रहे थे। उन्होंने हॉर्न बजाया। सोनू, जो बरामदे में कुर्सी पर बैठा सो रहा था, हड़बड़ा के उठा। जल्दी चलकर उसने फाटक खोला, फिर फाटक में ताला लगाकर गैराज की तरफ बढ़ने को हुआ। लेकिन उसने देखा, साहब ने कार अन्दर पहुँचाकर गैराज बन्द कर दिया है और बंगले की तरफ बढ़ रहे हैं। वह

भी उसी तरफ़ आ गया।

उसने देखा साहब ज्यादा नही पिये है। हाँ; उनकी उँगलियो मे सिगरेट थी, जो बहुत कम हुआ करती थी।

—पिक्चर देख आए ? सहाय साहब ने सोफे पर बैठे-बैठे पूछा।

—जी, सरकार ! मैं कपड़े ला रहा हूँ। सोनू अन्दर चला गया और साहब का धारीदार स्लीपिंग सूट ले आया।

सहाय एक-एक करके उसको कपडे उतारकर देते गए। उन्होने झुककर जूते के फीते खोलने चाहे तो एक मे गाँठ लग गई।

—मै खोल दूँ, जी ! सोनू झुका, उसने आँख गडा कर गाँठ खोली, जूते उतार दिये।

—पैंट भी खींच दो ! सहाय साहब ने दोनो पैरों को ऊपर उठाकर सामने फैला दिया। सोनू ने मोहरी पकड के पैंट खीच ली।

सहाय साहब ने खडे होकर पायजामा चढा लिया।

जाओ सोओ ! मैं सो लूंगा। वह अपने स्लीपिंग रूम मे आ गये। एक इच्छा हुई कि पलँग पर पड जायें, दूसरी इच्छा हुई थोडी देर बैठें, कोई किताब पढ लें। वह लेटे नही, ऊँचे टेबुल लैम्प के पास पडी आराम कुर्सी पर बैठ गये। पास की छोटी सेल्फ मे से अग्रेजी नॉवेल निकाला और पढने लगे।

मुश्किल से दस मिनट भी नही पढ़ पाए होगे कि दिमाग हट गया। सारस्वत की बातें घूमने लगी। सोचा वह इस वक्त किसी को अपने पास बैठाये, या अपनी बाँहो मे घेरे सुख ले रहा होगा, अपने को उसके जिस्म मे डुबाए हुए, या भटकाए हुए।

—यह सेन्टीमेन्टेलिटी है, फालतू की भावुकता। उन्हे सारस्वत के कहे शब्द ध्यान आए।

वह बैठे-बैठे मुस्करा दिये। जैसे कह रहे हो—हाँ, मेरी भावुकता सही, बेवकूफी सही; लेकिन तुम्हारी यह भूख, यह लालच क्या है ? जानते हुए भी कि जो इस वक्त तुम्हे तुम्हारी होने का वहम दे रही होगी, सुबह होते-न-होते कीमत वसूल करके चल देगी। यह तृप्ति का इन्द्रजाल है, या अखूट प्यास का कुआँ !

अटूट प्यार ! और जैसे इसके साथ सहाय की आँखों में सीमा उसी तरह से तैर आई, जिस तरह से होटल में तैर आई थी।

सहाय आँखों की उस सीमा को देखने लगे जो उनसे दूर, उन्हींके सामने खड़ी थी।

उन्हें महसूस हुआ जैसे अन्दर से किसी ने पुकारा—सीमा ! लेकिन पुकारने वाला कोई नहीं था, उन्हीं का वह रूप था, जो जवान था, जो युवा स्वप्नों से भरा था, जो सीमा को पाकर इतना हवा में था कि जैसे धरती अगर ऊपर भी उठती तो उन्हें छू नहीं पाती।

कश्मीर की एक हाउस बोट। उसमें वह और सीमा !

सीमा लाल सितारों जड़ी साड़ी पहने थी। उसके चेहरे पर हलका-सा चमकता हुआ मेकप था। बारीक होंठ कंधारी अनार के रस में डुबाये जाकर छोड़ दिये गये थे। जूड़े में सफेद फूलों का गजरा महक रहा था। वह सामने कुशन की कुर्सी पर बैठी थी—कोई मैगज़ीन पढ़ रही थी।

—सुनो ! उन्होंने कहा था।

—क्या ! सीमा की आँखों में वैसा-सा रंग था जैसा अनार के रस में भिगोकर छोड़े गये होंठ।

—क्या वास्तव में पढ़ रही हो ?

—तुम्हें क्या लगता है ?

—मुझे लगता है, मुझे देखने से कतरा रही हो।

—क्या करूँ ! एक ही तो देख सकता है। जब तुम नहीं रुकते तो मैं मैगजीन ही पढ़ सकती हूँ।

—सीमा हम से ज्यादा खुश है कोई ?

—यह दावा कैसे कर सकते हो !

— कर सकता हूँ। वह गर्व से बोले थे।

— तो करो, मना कौन करता है। उसने मुस्कराते हुए कहा था।

—शॉल उतार कर एक तरफ क्यों रखा है, ओढ़ लो ! उन्होंने मेज से शॉल उठाकर उसकी तरफ बढ़ाया था।

—तुमने स्वेटर क्यों नहीं पहन रखा है, ले आऊँ ! वह खड़ी हो गई थी।

—नही, नही, मुझे पहननें की कम आदत है। बैठी रहो !

– लो ! बैठ गई। अब ?

—अच्छा बात करें। उन्होने कहा।

—करो ! उसने आराम का पोज ले लिया।

—तुम्हारी जिन्दगी मे मेरे अलावा और कोई भी आया ?

—हर आदमी का पहला सवाल यही क्यों होता है ? मान लो मै कह दूँ नही।

—ऐसे कैसे हो सकता है !

—तुम बताओ, तुम्हारी जिन्दगी मे कोई लडकी आई ?

—हाँ, आई थी। लेकिन तब जब मैं बी. ए. मे था।

—फिर क्या हुआ। उसने चुहल करते हुए पूछा।

—हुआ क्या, उसकी शादी हो गई। ससुराल चली गई। उसके बाद तुम आई।

—मुझसे शादी हो गई। मै जाने के बजाय आ गई।

—अब तुम बताओ ? उन्होने पूछा।

—मै जब नौकरी कर रही थी, उस वक्त एक बहुत खूबसूरत लडका मेरे ऑफिस मे था। उसके पिता अफसर थे। उसने कहा वह मुझ से शादी करना चाहता है।

—तुमने क्या कहा ?

—मैंने कहा, मेरे डैडी से कहो। उसने कहा वह तो मेरे डैडी कहेगे। आप बताइये कि आप मुझे चाह सकती हैं। मेरी डैडी की बात पर उसने मुझे पुराने आइडियाज भी कहा।

—जब वह इतना अच्छा था तो तुमने शादी की हामी क्यो नही भरी ? उन्होंने उत्सुकता से पूछा।

—शायद इसलिए नही भरी क्योंकि चाह उसकी तरफ से थी, प्रस्ताव भी उसकी तरफ से था। उसका भी यही कहना था कि क्योंकि उसने दूसरो की तरह पीछा नही किया, दूसरो की तरह मोहब्बत नही जतलाई, मेरी खूबसूरती की तारीफ नही की, इसलिए मैंने उसे लिफ्ट नही दी। वह सही कह रहा था। उसके बाद फिर उसने मुझसे कभी बात नही की।

ऐसा हो गया जैसे उसने कभी मुझे जाना ही न हो।

—बस हम भी अब पीछे की बात कभी नहीं करेंगे।

—एक बात मैं पूछूं ? जवाब सही-सही दोगे ना ? उसने भोलेपन से पूछा।

—हाँ, दूंगा ! क्यों नहीं दूंगा ?

—मान लो मेरी-उसकी मोहब्बत हो जाती। मुहब्बत से ज्यादा कुछ हो जाता। इसके जानने के बाद भी क्या तुम दुनिया में सबसे ज्यादा खुश होने का दावा करते ? वह मुझे तीखी दृष्टि से देख उठी थी।

—हाँ, तब भी कहता। जो बीत गया वह तो एक तरह से अपना रहा ही नहीं। क्या हम अपने बीते हुए को गाड़ते हुए, आगे नहीं बढ़ते जाते हैं।

—नहीं, के. सी., हम अपने बीते हुए को अपने साथ लेकर चलते हैं। बार-बार, जब-तब हम अपने बीते हुए को सहलाते हैं, पुचकारते हैं, उसमें रमते हैं। चाहे उसमें जिन्दगी के मीठे अवसर हों या कड़वे हादसे।

—अब चुप रहो। हमें ज्यादा नहीं उधेड़ना चाहिए। हम-तुम दो जान, एक जान होकर जिन्दगी भर रह सकें, इन्हीं वायदों को लेने-देने तो आए हैं। इसीलिए हम यहाँ आए हैं कि इतनी निश्छलता और ईमानदारी से एक-दूसरे के लिए समर्पित हों कि यह सम्बन्ध आत्मिक हो जाए। हमारा-तुम्हारा अस्तित्व और व्यक्तित्व एक-दूसरे में मिल जाये। तुम, तुम न रहो, मैं, मैं न रहूँ।

—यह भावुकता है आई. ए. एस. साहब ! स्टेटमेंट फाल्स है। इसे यूँ कहिये—तुम, तुम रहो, मैं, मैं रहूँ। दोनों मिलकर समानान्तर चलें, इस पृथ्वी के साथ कि कभी अलग न हों, कभी फासले नहीं बढ़े, कभी अपनत्व न टूटे। लेकिन दोनों अपनी तरह उगते चलें। आई मीन, 'ग्रो' करते चलें।

—अच्छा लो मैं हारा। नाम सीमा है ना, अपनी हदें तो सुरक्षित रखोगी ही।

—तुम्हारी हदें भी नहीं तोड़ूंगी। न उनको लांघकर तुम्हारी स्वतंत्रताओं पर दावा करूँगी।

—अब !

—बोलो ?

—चलो सोने चलें।

—चलो !

वह खडी हो गई थी। मुझसे पहले कमरे मे पहुँच गई थी। मुझसे पहले उसी लाल साडी को पहने हुए, खुशबूदार फूलों की महक बसाए हुए, कँधारी अनार के रस मे डुबो कर निकाले गए बारीक होठो पर मुसकराहट ठहराए हुए वह पलँग पर लेट गई थी। उसकी आँखों में खुशी का रंग था।

मेरे अन्दर से निकला था—सीमा !

शायद उसके अन्दर से निकला था—कैलाश !

और मैं बेकाबू होकर उसके सिरहाने बैठ गया था। उसने मेरी गोदी मे सिर रख लिया था और पलकों को मूँदती हुई बोली थी—मै सोती हूँ, इसी तरह रात भर बैठे रहो।

मुझे नही पता था कि मेरी उँगली उसके होंठो पर फिर रही थी।

—क्या करते हो ? मेरे चैन को छेडो मत।

वह करवट बदलकर मेरी गोदी में समा गई।

सहाय को लगा वह एक बेहतरीन दृश्य देख रहे थे, जो झिलमिलाया और उन्हे रमा के चला गया।

सीमा और वह दोनो एक पार्टी मे लौट कर आ रहे है। सहाय कार ड्राइव कर रहे है, सीमा उनके बगल मे बैठी है। दोनो चुप हैं। सारा रास्ता पार हो जाता है, लेकिन एक दूसरे से नही बोलते है। बंगले मे आते है। सीमा अपने कमरे मे चली जाती है, सहाय अपने पढने के कमरे मे बैठे रहते हैं।

रसोई बनाने वाली महाराजिन सीमा से आकर पूछती है—बीबी जी, भोलू से खाना लगवाऊँ।

—साहब से पूछ लो—सीमा जवाब देती है।

महाराजिन सहाय साहब के कमरे मे जाती है—साहब, खाना लगवायें?

—मुझे भूख नहीं है, बीबी जी को खिला दो। सहाय साहब किताब पढ रहे हैं। महाराजिन समझ गई कि कोई बात जरूर हो गई। बीबी

भी चुप, साहब भी फूले हुए। वह लौट कर जाती है सीमा के पास—बीबी जी, साहब कह रहे है उन्हे भूख नहीं है, आप खा लीजिये।

—तुम रसोई सँभाल कर जाओ! कब तक चक्कर काटती रहोगी।

महाराजिन जाती है। तैयार किया हुआ खाना जालीदार अलमारी मे रखकर चली जाती है। भोलू रसोई धोने का और बर्तन माँजने का काम खत्म करके अपने क्वार्टर मे चला जाता है। सीमा अपने कमरे में बैठी-बैठी इन्तजार करती है कि वह आएँ। उसकी तबीयत नही लगती है तो अलमारी में टगी साडियो को मर्जी के रंग के हिसाब से आगे-पीछे करने लगती है। सहाय एक किताब को छोडते है, दूसरी को उठाते हैं, उसके पन्ने उलटते-पलटते है, फिर तीसरी उठा लेते है। उनका गुस्सा बढ़ता जा रहा है। वह अपने को फिर किताब में लगाये रखना चाहते है। उनसे रहा नहीं जाता। सीधे उस कमरे में जाते है। जिसमें सीमा है।

—सारी साड़ियाँ इसी वक्त ठीक कर लोगी। आवाज मे तेजी है।

सीमा बोलती नही है।

—मैं वहाँ बैठा हूँ अकेला, बुलाने नही आ सकती थी।

सीमा पलटती है, उतने ही कडे स्वर मे जवाब देती है—आप भी तो आ सकते थे।

—मुझसे क्यो चुप हुई। सहाय सीमा को तीखी दृष्टि से देखते है।

—आप चुप हुए या मैं ?

—तुम नाराज हुई थी, क्योकि मैं तुम्हे छोडकर खन्ना वगैरह के साथ बैठ गया था।

—और जब आ रहे थे और मैं कैप्टन नचौटी मे बात कर रही थी, तब लौट कर क्यों चले गए थे।

—मुझे अच्छा नही लगा था, कैप्टन अच्छे किस्म का आदमी नही है।

—मुझे अच्छा लगा था जब अकेली छोडकर दोस्तों मे ठट्ठे भरने लगे। कैप्टन आ गया और बैठ गया, बातें करने लगा तो मैं क्या करती ?

—तुमने उसकी औरत देखी—भैंस-सी है। इसलिए वह दूसरो की

औरतो को फँसाता है।

—और मैं फँस जाती, यही कहना चाहते हो।

—उसकी आँखो मे वहशीपना था। सहाय चिल्लाए थे।

—जिसे तुमने तुम्हारी तरफ पीठ होते हुए भी देख लिया था।

—तुम समझती क्यो नही, मैं किस तरफ इशारा करना चाहता हूँ। सहाय का स्वर नीचा हो गया था।

—आइन्दा मुझसे किसी पार्टी मे जाने के लिए मत कहना, मैं हर्गिज नही जाऊँगी। सहाय चुप हो गये। कमरे की चौडाई को दो बार नाप लिया गुस्से मे।

—अगर कोई बुलायेगा तो क्या मैं अकेला जाऊँगा। नही, तुम्हे जाना होगा। वरना मैं भी नही जाऊँगा।

—ले जाना, फिर इसी तरह से लडना। अपना खून जलाना, मेरा जलाना। सीमा को मन-ही-मन हँसी आ रही थी, और चिडचिडाहट भी।

—तुम मुझसे कार मे नही बोली। सहाय अब भी चौडाई नाप रहे थे।

—तुम तो जैसे बोलते ही रहे थे। पैरो को नाहक क्यो थका रहे हो। बैठकर बडबडा लो। सीमा को हँसी आ गई। उसने पीठ कर ली।

—मेरी समझ मे नही आता, अगर मैं लौट गया था, तो कार मे, यहाँ आकर, चुप रहने की क्या जरूरत थी।

—फिर शुरू से वही डाइलोग दोहराओगे, जिससे अभी शुरू हुए थे। चलो खाना खा लो।

—तुम खा लो। मैं कॉफी पीयूँगा।

—मैं भी कॉफी पी लूँगी। पहले कह देते तो महाराजिन न बना जाती। सीमा निकल गई रसोईघर मे।

कैसी दुविधा हो जाती थी ऐसे वक्त मे। मन करता था पीछे-पीछे चला जाऊँ। उसी वक्त सोचता, ऐसे कैसे जाऊँ।

बिना बात का झगडा होता था, और उसी वक्त सुलह हो जाती थी।

सहाय, कैलाशचन्द्र सहाय, के अन्दर से किसी ने कहा—इतना फ़ासला! सीमा, इतनी दूरी कि पता तक नही कहाँ हो?

सहाय की दशा ठीक उस शख्श की-सी हो गई जिसके हाथ में एक डिबिया पकड़ा दी गई हो और सम्मोहनकर्ता पूछता जा रहा हो—हाँ, अब देखना ! सीमा क्या कर रही है ? हाँ, अब बताना युवक कैलाशचन्द्र आई. ए. एस. के बगले मे क्या हो रहा है ?

तारीफ यह थी कि यहाँ सम्मोहनकर्ता और जिसको सम्मोहन का विषय बनाया गया था, दोनो एक थे। इस वक्त के सहाय और वह सहाय जो बीस साल से अपने आन्तरिक केन्द्र से विचलित घूमे जा रहे थे वक्त के चाक पर। जिन्दगी के कौन-कौन से सम्मोहन कैसे-कैसे सहारे बन जाते है।

हाँ, तो डैडी का खत आया था, उन्होंने सीमा को बुलाया था। माँ की तबीयत खराब चल रही थी।

—मै हो आऊँ, साल भर हो गये गये हुए ? सीमा ने पूछा था।

—चली जाना, कल ही तो खत आया है। जवाब देकर पूछ लो हाल-चाल।

—वह बुला रहे है, मै हाल-चाल पूछूँ। ऐसा क्या ठीक होगा !

—साधारण तबीयत खराब लगती है, मैं छुट्टी के लिए अप्लाई कर देता हूँ, मै भी इस बहाने घूम आऊँगा। उन्होंने सुझाव दिया था।

—माफ करिये! आपको ज्यादा-से-ज्यादा एक हफ्ते की छुट्टी मिलेगी। उसमे दो दिन सफर मे खर्च हो जाएँगे, फिर आप कहिएगा मेरे साथ चलो। मैं कम-से-कम महीने भर रहकर आऊँगी।—सीमा सहज रूप से बोल रही थी।

—महीने भर रह लोगी ? उन्होंने हँसते हुए पूछा।

—रह नही लूँगी तो क्या ! आप समझते क्या है मुझे !

—कुछ नही, मैं सोच रहा था शायद मेरी याद आए और इतने दिन न रह सको। लेकिन सहाय का चेहरा उदास हो गया था जिसे सीमा नही पहचान पाई थी।

—मैं रह लूँगी ! आखिर डैडी और मम्मी भी तो प्यार करते है। याद आएगी तो खत लिख दूँगी—आप जवाब दे दीजिएगा।

—मैं तो नही दूँगा। कोई डैडी-मम्मी के प्यार को पा रहा हो उसमे

मैं क्यों टाँग अड़ाऊँ।

सीमा अब समझ पाई थी कि वह क्या कहना चाह रहे हैं। वह समझी ही थी कि सहाय का परिचित रवैया सामने आ गया—हाँ जी, तुम रह सकती हो महीने भर, हम ही कमजोर है जो चार दिन भी देखे बगैर नही रह सकते।

सीमा शिकायत भरे व्यंग्य से तिलमिला गई, बोल पडी—आपकी तो आदत है मेरे प्यार को कम बता कर यह जतलाना कि खुद पता नहीं कितना प्यार करते हैं। जब आप सात-सात, आठ-आठ दिन के लिए टूर पर जाते है, फिर उसी के साथ अपने घर के चक्कर को भी शामिल कर लेते हैं, तब नही सोचते मैं कैसे अकेली रहती हूँ। यही ना कि मान लेती हूँ, आपकी मजबूरी है।

—बस तुम्हें तो जवाब पर जवाब देने को कह दो। जाती हो तो जाओ! महीने भर के लिए क्यों दो महीने के लिए जाओ। अगर तुम्हे मेरी परवाह नही है, तो मुझे क्यो हो?

—हाँ, चली जाऊँगी। अगर कहिएगा तो दो महीने भी रह आऊँगी। सीमा का चेहरा लाल हो गया था।

—मै कहूँगा? मैं ही तो एक महीने के लिए कह रहा हूँ। करनी अपनी मर्जी, थोपना मेरे ऊपर। चली जाओ जब चाहो, जब वहाँ जी भर जाए तो आ जाना। सहाय साहब खड़े हो गए थे तमतमा कर।

—ठीक है, मै कल जा रही हूँ। अब तभी आऊँगी जब बुलाओगे। समझते है जितना प्यार है सब इन्ही की तरफ से।

यूँ उस रात, हालांकि दोनो एक कमरे मे रहे, लेकिन वह अपने पलँग पर करवट बदलते रहे, सीमा अपने पलँग पर। सुबह दफ्तर जाते वक्त सहाय ने पूछा था—तो क्या आज जा रही हो?

—हाँ! सीमा ने जवाब दिया था।

—ठीक है। शाम को गाडी जाती है, मैं स्टेशन आ जाऊँगा।

—क्यों? यहाँ नही? सीमा की भौहे चढ गई थी।

—सी-ऑफ ही तो करना है। स्टेशन से कर दूँगा। वह ड्राइंगरूम को पार करके निकल गये थे। सीमा सन्न-सी रह गई थी। दफ्तर जाते

वक्त की आदत भी भूल गये। उसके बाएँ हाथ की उँगलियाँ मुँह और होठ दोनो पर फिर रही थी। उसकी आँखें भर आई। लेकिन उसको गुस्सा आ रहा था। उसने अपने सूटकेस मे पूरे दो महीने के लिए कपड़े रख लिए। दिन भर घर की चीजें सँभालती रही। सहाय साहब जिन पोशाको को ज्यादा पसन्द करते थे उन्हें उसने एक दूसरे सूटकेस में लगाकर उनके कमरे मे रख दिया। नौकरो और चपरासियो को समझा दिया कि वह साहब का खयाल रखे। किन्ही जरूरी चीजो को बाजार से मँगवाना हो तो वह मँगा ले, इसलिए उन्होने चपरासी को बगले पर भेज दिया था। सीमा ने बिस्कुट के पैकेट और एक दर्जन अण्डे मँगवा लिए थे कि सुबह के नाश्ते मे उनको जरूर दे दिए जाएँ। थोड़ा-सा सामान उसने अपने साथ ले जाने के लिए मँगवा लिया था।

उसने चलने से पहले सहाय साहब के पढने वाले कमरे मे बैठ कर उनके पैड पर लिखा था -

डार्लिंग के सी.,

इतना गुस्सा भी किस काम का कि आदमी यह भी भूल जाये कि दफ्तर कैसे जाता है। मैं इन्तजार करती रही कि तुम . खैर, तुम्हारी मर्जी। बगले न आकर स्टेशन पर ही विदा दो, तो मेरा क्या बस। सताने मे सतोष मिलता है तो सताओ। तुम्हें ज्यादा प्यार है न मुझसे। मुझे तो तुमसे ज्यादा अपने डैडी-मम्मी से प्यार है। तभी तो शादी के साल भर बाद आ रही हूँ। अगर जरूरत समझो तो खत लिख देना। वैसे मैं जानती हूँ न खुद चैन मे रहोगे, न मुझे रहने दोगे।

अब तभी आऊँगी जब बुलाओगे। नही तो मुझे याद करना, घुलना, घुटना आता है। हाँ, खाने-पीने का ध्यान रखना। पागलपन मत करना।

तुम्हारी
सीमा

उसने इस छोटी-सी चिट्ठी को लिफाफे मे बन्द करके, उनका नाम लिखकर पैड मे लगा दी थी। कागज पर फैली हुई स्याही ने सहाय को उसके रोने का सबूत दे दिया था।

वह तो उन्होंने सीमा के आँखो मे तब भी देख लिये थे जब वह स्टेशन

पर पहुँचे थे। उन आँसुओं को उसने गिरने नहीं दिया था।

सहाय ने कहा था—ठीक से रहना !

सीमा ने कहा था—अपने खाने का खयाल रखना।

गाडी चल दी थी। सहाय का धीरे से सीधा हाथ ऊपर को उठा था, जिसमे रुमाल था। और जब वह जान-निकले-से बगले मे आए थे तब सूना बगला उनको दवाए डाल रहा था। अपने पढने के कमरे मे जब रात को बैठे थे तब उन्हे वह बद लिफाफा दिखाई दिया था। उन्होने खोला था। पढा था। और अब उनकी खुद की आँखे बह पडी थी। क्या हो गया था उन्हे ? सीमा को उन्होने ऐसे ही भेज दिया। उन्होने उसे सताया। लेकिन क्या सीमा ने उनके साथ कसर रखी ? इस वक्त क्या वह नहीं सताये जा रहे है, जबकि वह इतने बडे बगले मे अकेले है। वह तो गई। उनका बस चले तो वह गाडी को ही लौटा लें। अभी क्या है। अभी तो सिर्फ पहुँचा के आए है। कितने दिन. कितने दिन !

बैठे हुए सहाय के हाथ से किताब छूट गई। जैसे वह डिबिया छूट गई हो जो उन्हे अब तक कितनी उम्र पीछे ले गई थी। सहाय साहब ने जानना चाहा वह कौन से है ? वह जो सीमा की चिट्ठी सामने फैलाये हुए बैठा है, या वह जो बुत-सी कुर्सी में बैठा है। उनके बाद सीमा कब आई लौटकर, फिर उसके या उनके बीच मे क्या उगता गया कि दूरी और असतोष बढता गया। फिर ऐसा क्या हुआ कि समझौते के बाद दावे टूटते गये। सहाय इधर, सीमा उधर !..

सारस्वत; शायद तुमने किसी उम्र मे वह नही पायी जो जिन्दगी के लिये अक्षय खजाना बन जाता है। तभी तो तुम भटक रहे हो, जिस्मो मे। और मैं उनकी निरर्थकता को महसूस करने के बाद अपने मे सिमट गया। तुम क्या जानो जो 'न हो' उसके 'होने को' बनाये रखकर किस तृप्ति के साथ जिया जा सकता है। आदमी एक बार अपनी सम्पूर्णता को पा लेता है, उसके बाद अगर वह आधा या खण्डित भी रह जाये तो उस सम्पूर्णता को बार-बार जीवित करके वह जिन्दगी काट सकता है।

तुम कह सकते हो यह पागलपन है; भ्रम है, दिवास्वप्न है। इस सत्य की भी तो जाँच की जाये कि कौन किसी भी तरह के

किसी भी तरह के भ्रम या किसी भी तरह के दिवास्वप्न से अछूता है, या मुक्त है।

कहीं-न-कहीं, अपने किसी-न-किसी हिस्से में हर एक पागल ही तो है। और ताज्जुब, कि वही पागलपन हर एक के बाकी हिस्से को संयुक्त करता है।

लेकिन सहाय को साथ-साथ यह भी लग रहा था कि ऐसा कौन-सा अंश अन्दर है, जो इधर से, उधर से उठकर किसी भी क्षण को हर सही अहसास को गलत कहता है। जैसे उस अंश का काम ही विरोध करना हो—मसलन, अपूर्णता की बात, तृप्ति की बात, न भटकने की बात।

सहाय ने इस सारे उलझाव को ढकेलने के लिये कुछ और सोचना चाहा—रेड की बात, किसी केस की बात। कैसी भी ऐसी बात जो लगभग बाहरी हो, कैजुअल हो।

के सी सहाय के आने से पहले उनके कमरे के सामने पड़ी बेंच पर आठ-दस आदमी बैठे थे। एक न एक व्यक्ति खड़ा होकर चपरासी से पूछता—साहब के आने में कितनी देर है?

चपरासी तंग होकर कहता, तख्ती पर पढ़ लो। उसपर टैम लिखा है।

पूछने वाला अपना-सा मुँह लेकर अपनी जगह पर बैठ जाता। दूसरे कमरों में काम शुरू हो गया था। जिनको बुलाया गया था वे या जिनको आमदनी का लेखा-जोखा देना था वे, अपने हलके के इन्सपैक्टर के कमरे में पहुँच कर हिसाब दे रहे थे। जिनका केस उलझा हुआ था, वह अपने साथ वकील लाये थे। सामने वाले बरगद के पेड़ के नीचे पान-सिगरेट, चाय, चाट और दूसरी दुकानें घेरे में लगी थीं। वकील अपने मुवक्किल सेठों से बेंच पर बैठे बातें कर रहे थे, साथ में दुकान को ऑर्डर देते जा रहे हैं। उनका दिमाग दुकानों में दूर ठीक से काम नहीं कर पाता।

सहाय साहब की कार आई। थोड़ा-बहुत ढीलापन जो उनकी अनुपस्थिति में रहता है, वह उनके आते ही कस जाता है। बाबुओं से लेकर सहायकों, इन्सपैक्टरों, सब में चौक और सतर्कता आ जाती है। यह सिर्फ उनके पद का आतंक है, वरना दफ्तर का हर व्यक्ति कहते सुना जा सकता

है—सहाय साहब, अफसर है, मस्त अफसर। सीधे, काम-से-काम।

चपरासी उनकी कार के रुकते ही खडा हो गया। जब तक ड्राइवर इधर से उधर आए सहाय साहब दरवाजा खोलकर बाहर निकल आए, सीढियों से चढते हुए अपने कमरे की तरफ बढे। चपरासी ने चिक हटाई, वह अन्दर पहुँच कर सीट पर बैठ गये। बैंच पर बैठे लोगों में से कुछ खडे हो गये थे, वापस बैठ गये।

फिर से घंटी बजी।

—जी साब ! चपरासी ने पूछा।

— ज़रा इन्सपैक्टर साहब सादानी को बुलाओ।

—बुलाता हूँ जी। चपरासी चला गया।

सहाय ने सामने के तारीखों वाले टेबिल कलैंडर को खिसकाया। कागज पलटकर आज के काम को देखने लगे। उन्होंने ड्रायर में चाभी लगाकर उसे खोला, खींचा, फिर उसमें से डायरी निकालकर खास पन्ना देखा—थोडी देर तक उसे पढते रहे। कलमदान में से लाल पेन निकालकर उन्होंने उसमें कुछ लिखा।

—आपने बुलाया ? सादानी सामने खडा था।

—हाँ, बैठिये।

सादानी बैठ गया।

वह थोडी देर तक डायरी के पन्ने पलटते रहे।

—हाँ, उन्होंने सादानी से आँख मिलाई—एक शिकायत मेरे पास आई है आपकी। उसके बारे में पूछना था।

—मेरी शिकायत ? सादानी के चेहरे पर आश्चर्य था।

—गांधी रोड पर मुकन्दी लाल-साँवल दास एलेक्ट्रिकल डीलर्स है, उनकी शिकायत है कि आपने किसी के जरिये उनके पास ढाई हजार की रकम के लिये कहलवाया है। उन्होंने रिटेन कम्पलेंट की है।

—की होगी जी ! एक मिनट, मैं अभी आया। इतना कहकर सादानी खडा हो गया और कमरे से बाहर चला गया। सहाय समझ गये कि वह किन्हीं कागजातों को लेने गया है।

सादानी एक फाइल और डायरी लेकर आया। उसने खडे-खडे फाइल

को खोलकर सहाय साहब के सामने पसारा।

—सर, इस फर्म की यह रिपोर्ट है। सादानी अपनी डायरी को पलटने लगा। सहाय साहब रिपोर्ट पढ़ रहे थे।

—आपके लिहाज से तो यह चीट है। सहाय ने सिर उठाया।

—सर, मैंने कुछ सूचना अरोड़ा एलेक्ट्रिकल्स से इनके बारे में ली थी। इन दोनों की आपस में दुश्मनी है। अरोड़ा की इन्फरमेशन को मैंने जांचना चाहा। पहले तो मुकन्दीलाल-सांवलदास का मैनेजर आपका हवाला देता रहा। मैं जब नहीं माना तो उसने सांवलदास के चैम्बर में भेज दिया। सांवलदास ने पहले मुझे एक हज़ार ऑफर करना चाहा, मैंने मना किया और जांच करने की जिद की तो धमकी दी। उस पर भी नहीं माना तो उसने अकड़कर कहा—अगर तुम्हें न फँसवाया तो मेरा नाम भी सांवलदास है। चाहे कितना रुपया खर्च हो जाये तुम्हें सस्पेन्ड कराके चैन लूँगा। यह देखिये पिछले हफ्ते मैं इनकी फर्म में गया था। सादानी ने डायरी खोलकर सहाय के सामने रख दी।

सहाय ने डायरी देखी, फिर ड्रायर में से शिकायती पत्र निकाल कर उसकी तारीख देखी। —मुश्किल यह है कि सांवलदास से मेरे दोस्ती के ताल्लुक हैं। बैठो!

चपरासी ने एक पर्ची लाकर दी। सहाय ने पर्ची रख ली। चपरासी से कहा—उनको बाहर ही रोको। किसी को अन्दर मत भेजना।

चपरासी चला गया। सहाय ने टेलीफोन उठाया। पुट मी लाइन डबल थ्री वन।—यस, मैनेजर! सांवलदास जी हैं। उनको कॉन्टेक्ट करवाइये। हलो! सांवलदास जी! यार क्या लिख के भेजा है। क्या? सादानी ने बदतमीजी की। अरे यार बदतमीजी की तो क्या फँसाने के लिये यह हथकंडा अपना लिया। क्या? तुम प्रूफ जुटा दोगे। देखो यार, माना कि तुम प्रूफ जुटा दोगे, रुपये खर्च करके मुकदमा खड़ा कर दोगे, पर वह क्या करेगा? हमें भी सरकारी नौकरी करने का हक दे दो। वह बेचारा सस्पेंड-वस्पेंड हो गया तो तुम्हें क्या मिल जायेगा। मैंने उसे कल बुलाकर पूछा था—वह दूसरी स्टोरी कह रहा है। कहीं वह तो सच नहीं है? यार दोस्ती को यहाँ मत लाओ, मैं क्या तुम्हारे बिजनेस में अपने को लाता हूँ।

मैं इन्क्वायरी बैठा दूँ उसके अगेन्स्ट ! आल राइट, आज ही बैठा देता हूँ। वह अभी तक आया नहीं है, आ जाने दो।

महाय साहब बोल रहे थे और सादानी उनका मुँह देख रहा था। उन्होंने रिसीवर रख दिया।

—यह साले व्यापारी सीधी तरह मान नहीं सकते।

—सर, मेरे अगेन्स्ट इन्क्वायरी बैठाइयेगा ? सादानी चिन्तित हो गया था।

—हाँ, ताकि मैं करेक्ट हो सकूँ। तुम एक काम करो। अस्थाना साहब, और तुम जरूरत के आदमियों को लेकर इसके फर्म पर रेड कर दो। मैं कहूँगा यह लोग पहले चले गए थे। यू जस्ट गो। लेकिन मात खाकर मत आना, चाहे घर तक पहुँचना पड़े। पुलिस की जरूरत हो तो काल कर लेना। बाकी मैं देख लूँगा।

—ठीक है सर ! हम अभी पहुँच रहे हैं। सादानी का चेहरा उत्साह से भर गया। उसने फ़ाइल उठाई और चला गया।

महाय ने अपनी डायरी और शिकायती एप्लीकेशन को ड्रायर में रखा, उसे उसी वक्त ताली लगाकर बन्द कर दिया।

थोड़ा-सा ठीक होकर बैठे। घंटी बजाई।

—भेजो ! उन्होंने चपरासी से कहा।

एक वकील साहब फाइल लेकर आए।

—नमस्ते हुजूर ! उन्होंने कहा और सामने की कुर्सी पर बैठ गये।

—वकील साहब आपके क्लाइन्ट का ऐसेसमेन्ट तो किया जा चुका।

—हुजूर, इस साल छ. महीने फैक्टरी में काम नोमीनल चला है, लेकिन ऐसेसमेन्ट में उसका ध्यान नहीं रखा गया है।

—वकील साहब, काम नोमिनल नहीं चला है रिकार्डस में प्रडोक्शन को छिपाया गया है।

—मैं कह रहा हूँ हुजूर रिकार्ड में सही-सही दर्ज है। आप स्टेटमेन्ट देखिये। वकील ने फ़ाइल में तीन-चार पूरे टाइप्ड कागज़ निकाल कर रखे।

—इसको तो कम्पन्डेंड इन्सपैक्टर ने देख लिया। मैं उनके ऐसेसमेन्ट

को गलत मान लूं।

—लेकिन आप जस्टिस तो करेंगे। आप कहिये तो एक्ट कोट करके दोबारा एमेसमेन्ट करवाने की एप्लीकेशन दे दूं।

—दे दीजिये। यह तो आपके हाथ में है लेकिन एक चीज समझा दीजिये! आप अपनी फैक्टरी में ज्यादा मजदूरों को रखे रहेंगे, चाहे काम न हो?

—हुजूर मजदूर का खयाल करके ऐसा किया भी जा सकता है। लेकिन मेरे क्लाइंट का इस सबमें क्या मतलब?

—यह तो मैंने वैसे ही पूछा था। वैसे वकील साहब व्यापारी कभी ऐसी हमदर्दी नहीं रखता। आप जानते हैं कि वह कम-से-कम मजदूर रखता है। लेकिन आपके क्लाइंट की फैक्टरी में माल का कम बनना तो दिखाया है, काम करने वाले वहां उतने ही आते रहे हैं। यह उनका रिकार्ड है। आप कर दीजिये अपील, लेकिन ऐसेसमेन्ट में जितना टैक्स आया है उसे भरवा दें तो बेहतर है। नहीं तो हमें और खोज-बीन करनी होगी।

—हुजूर, टैक्स की रकम बहुत ज्यादा लगाई गई है। आप अगर चाहें तो..

—चलिये मान लिया। लेकिन अब की यही सही। पिछले सालों में कम लिखाते रहे, इस बार ज्यादा सही। यह सारी तो फोर्मल बातें हैं, आगे आप चाहें जैसे मूव करें। थैंक्यू।

वकील साहब ने गुंजाइश नहीं पाई तो नमस्ते करके बाहर चले गये। उनके जाने के बाद एक नेता टाइप के व्यक्ति आए। लम्बे, चेहरे की हड्डियां उभरी हुई, गाल अन्दर घुसे हुए।

—मैं नन्दलाल वशिष्ठ हूं।

—बैठिये।

—मैं कट्रेक्टर हूं।

—जी।

—देखिये जरा! उन्होंने एक कागज सामने रखा।

—जी, नोटिस है; आपको पैमेंट कर देना चाहिए।

—मेरे यहां कभी नोटिस नहीं पहुंचा। हमेशा पैमेंट करता रहा, इस

बार नोटिस भी दिया गया और टैक्स भी बढा दिया गया।

—आपने न तो अपने मकानो के किराये की आमदनी घोषित की, न उन ट्रकों की जो किराये पर चलाते है।

—मै नन्दलाल वशिष्ठ हूँ, विधायक का बड़ा भाई। उसका नाम कुन्दन लाल वशिष्ठ है।

तब तो आपको उनकी इज्जत का खयाल करके पहले ही सही आमदनी देनी चाहिए थी।

—अरे साहब सब होता है। अगर हम भी देने लगे तो बाकी कौन रहेगा। नोटिस आपने दे दिया, खैर। लेकिन मेरा ध्यान रखियेगा।

—आप टैक्स जमा करा दीजियेगा, वरना ऑफिस अगली कार्यवाही करेगा और आप फिर शिकायत लेकर आएँगे।

—आप लोग खुद जो रिश्वत खाते है वह ? आपके यहाँ का एक-एक बाबू, एक-एक इन्सपैक्टर, सब रिश्वत खाते है, मैं दावे से कह सकता हूँ। वशिष्ठ तमतमा रहे थे।

सहाय धैर्य नही रख सके—आप मेरे दफ्तर मे बैठे है, ध्यान रखिए। जो मुँह मे आता है, बके जा रहे है।

—मै सच्चाई कह रहा हूँ, छाती ठोक कर कह सकता हूँ। अगर आप नोटिस भेज कर मेरी बेइज्जती कर सकते है, तो मै क्यो नही कर सकता। यू आर पब्लिक ऑफ सर्वेन्ट। आइ एम ओल्डर ब्रादर ऑफ एम एल. ए.।

सहाय साहब ने घंटी बजा दी।

—इन्हें बाहर ले जाओ। उन्होने गुस्से मे कहा।

—आई विल देख लूँगा। आई विल यू ट्रॉसफर। क्या समझते हो।

—चलिये जी, साहब को काम करने दीजिये। चपरासी ने बाँह पकड़ कर जाने का इशारा किया। आदमी जो कमजोरी की वजह से तपेदिक का बीमार-सा दीख रहा था चपरासी को ठेलता हुआ कमरे से बाहर निकल गया। सहाय सहाब ने सुना वह बाहर भी बडबडा रहा है।

उसका नोटिस सहाय साहब की मेज पर छूट गया।

उन्होने फिर घन्टी बजाई।

—यह नोटिस उसे दे आओ।...और सुनो, अब किसी को मत भेजना। रुको ! ज़रा मिस्टर सरखेल को बुलाना।

चपरासी कागज लेकर चला गया। सहाय का गुस्सा अभी हटा नही था। वह परेशान हो उठे थे। सरखेल चिक उठाकर अन्दर आए। वह बैठ भी नही पाये कि सहाय ने पूछा—आप नन्दलाल वशिष्ठ को जानते हैं ? उन्हे खयाल आया, बोले—बैठिये।

—हाँ। यह कुन्दनलाल वशिष्ठ के बड़े भाई हैं।

—अभी बक-बक करता हुआ गया है।

—वह फ्रेक है जी, पहले मुझसे सिर मारकर गया, फिर आपके पास आ गया। इसका पिछला टैक्स भी बाकी था, इसलिए नोटिस देना पड़ा।

—वह तो ठीक किया, लेकिन मैं तो एक्शन लेने की सोच रहा हूँ। अगर यही हाल है तो हो गुड बी विहाग्ड द बार्स।

—यह सनकी है सर ! भाई का हवाला देता है, उसी को चोर-बदमाश कहता है। रहता भी अलग है। अपने घर भी नही रहता, एक फ्लैट ले रखा है उसी मे रहता है। तन्त्र-मन्त्र मे पड़ा हुआ है। दफ्तर मे एक अलमारी ऐसी किताबो से भरी है।

—स्ट्रेंज ! फिर यह बिजनेस कैसे करता है ?

—वह सब करता है। बल्कि वहाँ पूरी तरह से चालाक है। कभी-कभी गुस्से का फिट आता है। हम लोग जब इन्क्वायरी के लिये गये तो पहले तो आवभगत की; उस के बाद बदतमीजी पर आ गया। मैने टैलीफोन उठाकर पुलिस का डर दिया, तब रास्ते पर आया। बाद मे मैंने और पता लगाया इसके बारे मे।

—आप ने मुझे तो नही बताया ?

—आपको क्या बताता सर ! सरखेल ने रूमाल से मुंह पोंछते हुए कहा—तरह-तरह के आदमियो से पाला पड़ता है फील्ड मे। पता चला कि यह मिलने वालों से कहता है, इसकी औरत ने इस पर जादू-टोना किया है। यह उसको, अपनी सगी बेटी को बदचलन कहता है। तन्त्र-मंत्र के पीछे इसलिये पड़ा है कि उस टोने को तोड़ना चाहता है। उन लोगो के साथ इसीलिये नही रहता। हालांकि खर्चा-वर्चा देता है। बेटी को चाहता

भी बहुत है।

—*आपने तो पूरी हिस्ट्री गैदर कर ली।* सहाय साहब हँसे। उनका गुस्सा और तनाव काफ़ूर हो गया।

—ए वैरी फ़नी थिंग सर अबाउट हिम। आप माइन्ड नहीं करें मुझे अपने इन्सपैक्टर बँजल ने बताया, यह सब इसलिये है, क्योंकि यह इम्पोर्टेंट है।

—अरे नहीं-नहीं ! ऐसा तो लोग वैसे ही उड़ा देते है; बीमारी-बीमारी होगी नामर्दी को अपनी तरफ़ से जोड़ दिया शुभचिन्तकों ने। अब क्या एक्शन लूँगा, तुमने तो उसकी सारी डींगो का बंटाधार कर दिया।

—बिलीव मी सर, नामर्दी की बात भी बँजल को इसके डॉक्टर ने बताई। वह बँजल का दोस्त है। कहने लगा यार, नाक में दम कर दिया इस आदमी ने। यही कहता है कि मेरा इलाज करो। रुपये की परवाह मत करो। बिल चुकाने में देर नहीं करता लेकिन दो महीने से ज्यादा किसी डॉक्टर के पास ठहरता नहीं। दो-तीन डॉक्टरों को बदल कर फिर मेरे पास इलाज करवाने आ जाता है।

—तब तो तुम्हारे बस का है। कृपा करके आप मेरे पास मत भेजना। मेरा तो सारा माइन्ड ख़राब कर गया। छाती ठोककर कह रहा था बाबू से लेकर अफसर तक सब रिश्वतख़ोर है, वह साबित कर सकता है। इन्टेलीजेन्स वाले इसे ले लें तो कमाल कर दिखाये ! है ना ? और सहाय खुलकर हँसे। सरखेल भी हँसे।

—फ़ैश हो गया ! लेकिन अपने आसामी को अपने पास रखना। सहाय ने घंटी बजाई।

—दो कॉफी लाओ।

चपरासी चला गया।

—*किस-किस तरह के फ़स्ट्रे शन में आदमी जीता है।* सहाय बोले।

—वास्तव में तो सर वक्त ही ऐसा है। साधारण-से-साधारण आदमी भी दिमागी फ़ितूर लिये हुए है। फिर भी ठीक है।

—छोड़ो जी ! अच्छा यह वशिष्ठ आया। काम करने का मूड बिगड़ गया। सहाय ने विषय बदला। मैं यह सोच रहा हूँ कि अगले पन्द्रह दिन में

काम को तेज करें। तुम लोग अपने-अपने हलके के हैबिचुअल कर-चोरों की लिस्ट बनाओ। और एक साथ रेड करनी शुरू करो। छुट-पुट रेड में दूसरे हलके के लोग सतर्क हो जाते हैं।

—आइडिया तो अच्छा है सर, लेकिन लिस्ट सावधानी से बनाई जाये।

—तुम तो सावधानी की कह रहे हो, मैं चाहता हूँ कि अपने इन्स-पैक्टर्स को भी तभी पता लगे जब पूरे शहर में रेड शुरू करें।

चपरासी कॉफी ले आया।

—किसी को आने मत देना। सहाय ने कहा।

—जी साब ! चपरासी चला गया।

—यह मतलब नहीं है कि इन्सपेक्टर्स पर विश्वास नहीं है। लेकिन देखो कांटेक्टस तो होते ही हैं। फिर यह भी आ जाता है कि अपना आदमी है क्यों मरे। इसलिये मैं चाह रहा था। प्लान जितने कम आदमियों के बीच में बने उतना ही ठीक रहता है। सहाय ने प्याला उठा लिया। अब वह गम्भीर हो गये थे।

—यह तो आप ठीक कह रहे हैं सर ! सरखेल ने समर्थन किया। उसने भी प्याला ले लिया।

—दूसरी बात यह कि हालांकि ऊपर से स्ट्रिक्ट ऑर्डर्स तो हैं ही फिर भी मैंने काफी ताकीद कर दी है। आप लोग दफ्तर को टाइट रखियें। जब हम बाहर खड़े होंगे तो हमें अन्दर अपने में भी होना पड़ेगा। हमारी ज़रा-सी गलती पूरे ऑफिस को बदनाम कर देगी।

—आप सही कह रहे हैं, सर।

—अगर किसी ने सच्ची शिकायत कर दी तो मैं खुद मजबूर हो जाऊँगा। जानते तो हैं कि शिकायत करने वाला ऊपर तक शिकायत पहुँचाता है।

—जितना हम कड़े होंगे उतना खतरा तो बढ़ेगा ही। सरखेल ने घूंट भर ली।

—बस यह जरूरी है। और बहुत जरूरी है। लेकिन हम लोगों को पब्लिक से रिलेशन्स भी बनाने पड़ेंगे। बहुत से फैक्टस तो वहीं से मिलेंगे। मैं अलग-अलग कह तो दूंगा, लेकिन सारी चीज़ वातावरण पर डिपेन्ड

करती है। ऑफिस का माहौल ऐसा रहे कि जो करते है, उनकी हिम्मत भी नही पड़े।

—सरखेल ने प्याला खत्म कर दिया। अब चलूँ?

—हाँ ध्यान रखना। अपने उस नन्दलाल वशिष्ठ का भी खयाल रखना। सहाय हँसे। सरखेल सिर्फ मुसकरा कर चला गया।

सहाय आराम से बैठ गये। वह जानते थे कि सरखेल से ही इतनी सारी सतर्कता की बातें क्यो कर रहे थे। कभी-कभी कितना नाटकीय होना पडता है। उन्हे पता था कि सरखेल बावजूद इतनी हिदायतों के सँभल नही रहा है। उनके पास सूचनाएँ थी कि अब भी रिश्वत लेने से बाज नही आ रहा है लेकिन वह एक्शन नही लेना चाहते थे। कोई ठोस सबूत भी हाथ मे नही था।

सहाय ने घडी देखी। लच का वक्त हो गया था। वह बाहर आए। चपरासी से कहा कि वह ड्राइवर को बुला लाए, बगले जाएँगे। ड्राइवर कार ले आया। बैठकर बगले चले गये।

उस दिन के बाद महाय न तो होटल गये, न उन्होने सारस्वत, यानी विश्वास धवन से सम्पर्क किया। पहली बात तो यह थी कि वह सारस्वत को उन्ही के प्लान के मुताबिक चलने देना चाहते थे, दूसरी कि सारस्वत उन्हें अच्छे नही लगे अपनी उन्मुक्तता के कारण।

हालाँकि उन्होंने उस दिन यह कहकर कि हर शख्श अपनी तरह से अपनी जिन्दगी जीता है, बहस को खूबसूरत समाप्ति दी थी, लेकिन वह एक तथ्य कहना भूल गये कि अपनी तरह मे जीना आदमी को पूर्वाग्रही बनाकर परखने के अलग-अलग पैमाने भी देता है।

सोचा जा सकता है कि उनके दिमाग मे सारस्वत के विरुद्ध अस्वीकृति तथा हटाव का भाव क्यो आया? और कम-से-कम बुद्धिजीवी क्लास, जिसे हम इन्टेलेक्चुअल कहते हैं,वह तो अपनी ओछी-से-ओछी और अच्छी-से-अच्छी दोनों तरह की मान्यताओ के लिए बचाव के तर्क इकट्ठे कर लेता है। तार्किकता ऐसी कोई विशपता नही है जो किताबो को पढकर ही हासिल की जाती—यह तो बच्चे में भी होती है। अपना बचाव हर एक

करता है। चाहे वह बचाव शरीर का हो या विचारों का।

सारस्वत ने एक अपराध जरूर किया उस दिन कि सहाय साहब में जो सीमा दबी पड़ी थी उसे बड़े ताकतवर ढग से जगा दिया। वह हटाना चाहते हैं, हटती नहीं, उसकी याद से छुटकारा पाना चाहते हैं, छुटकारा मिलता नहीं। यह नहीं कहा जा सकता कि पहले उनको याद ही नहीं आती थी। लेकिन जब-तब। उन्हें लगता रहा है जैसे इसका भी कोई चक्कर है जो मियाद पर रह-रहकर उभरता रहा है। इस लिहाज से सारस्वत को अपराधी ठहराना; उसपर जबरदस्ती दोष मढना है। लेकिन तर्क के आधार पर दोष मढ़ा जा सकता है, सारस्वत को अस्वीकृत भी किया जा सकता है। लेकिन वास्तव में यह सारे हथियार होंगे अपनी विवशता को सामने न आने देने के लिए।

शाम का समय है, तकरीबन साढे सात का। सहाय बगले के आगे फैले हुए लॉन में घूम रहे है। उन्हे लग रहा है सीमा उनके साथ टहल रही है। वह कह रही है—मैं तो समानान्तर चलने को मानती थी, तुमने अपने-मेरे रुख ही बदल लिए।

सहाय कहना चाहते हैं—तुमने चलना नहीं चाहा।

वह पूछती है—क्या तुम चलने को तैयार थे? और जैसे वह साबित करने में लग गई कि सारी गलती उनकी है।

उसने चाहा था कि वह भी आई. ए. एस. या फॉरेन सर्विस की प्रतियोगिताओं में बैठे। उन्होंने कहा—क्या करोगी? वैसे भी कौन-सी तुम्हें सर्विस करनी है।

उसने कहा था—अगर कर लूंगी तो क्या होगा?

सहाय बोले थे—तुम कही होओगी, मैं कही। अभी तो हम एक दूसरे से उकताए नहीं है, जिस दिन उकता जाएँगे, उस दिन कर लेना सर्विस।

सीमा ने पूछा था—ऐसी भी कल्पना है?

—नहीं, पर क्या पता कभी यह नौबत आ जाए।

मतलब यह कि न तो वह किसी प्रतियोगिता मे बैठी, न उसके नौकरी करने का सवाल उठा। वह बच्ची थोड़ी थी कि सहाय साहब के अभिप्राय को नहीं समझती। उसने सोच लिया, नहीं, तो नहीं सही। लेकिन फांस

तो रह ही गई।

सहाय साहब की इच्छा हुई लॉन मे दौड़ लगायें। दौडकर सामने की दीवार को छूएँ और लौट आएँ।

उन्हे अपनी इच्छा पर ताज्जुब हुआ। यह उम्र क्या दौडने की है। वह कमर के पीछे हाथ किये खरामा-खरामा घूमते रहे।

फिर उन्हे अपने और सीमा के बीच मे सबसे बडा फ़र्क डालनेवाली घटना का ध्यान आया। हालाँकि न उनका दोष था, न सीमा का, लेकिन दोनो ने एक दूसरे पर दोष उलट दिया। वह अब सोचते है कि अगर 'वैसा' हो जाता तो शायद जिन्दगी मे वह हादसा घटित नहीं होता जिसने जिन्दगी को बिखरा दिया।

सीमा का मन चाहने लगा था कि कोई तीसरा आ जाए जो उसकी ममता को तृप्त करे। उसे जैसे शौक चढ आया था।

सहाय कहते—अभी साल ही कितने हुए है, क्यो जजाल मे पडती हो।

सीमा रूठ जाती—आपको मेरी हर इच्छा जजाल लगती है।

—तुम्ही परेशान होगी, मेरा क्या है।

—आप मर्द है, आपको क्या पता औरत इसके बगैर अधूरी रहती है।

सीमा का यह शौक सपने देखने लगा था। एक तो वह वैसे ही भावुक किस्म की थी, तब और कल्पना मे उडने लगी।

उसकी आराध्य देवी ने उसकी सुन ली। सीमा कितनी-कितनी खुश रहती थी। कैसे उसे देखती रहती थी। उसकी देह तरगो पर उछलती थी और आँखें हर समय अनुराग से छलकती रहती थी।

वह जब उनको मोहित-सी एकटक देखती रहती तब सहाय पूछते—क्या देख रही हो।

—आपको।

—क्यो? मुझ मे अब क्या खास बात हो गई?

—आप तो कुछ भी नही समझते। कहते है ऐसे वक्त मे जिसको देखो, उसी की छाया बच्चा लेता है।

सहाय साहब उस वक्त सोचते कोई कहेगा कि यह एम. एस. सी. पास, मॉडर्न लडकी है। वह दिन-पर-दिन पीछे हट रही थी—यानी पूजा

करने लगी थी। सादगी और स्वच्छता से रहने लगी थी। अंग्रेजी उपन्यासों को न पढ़कर गीता-रामायण पढ़ने लगी थी।

एक दिन उन्होंने कहा था—वह जो तुम्हें चाहने वाला तुम्हारा पहला और आखिरी प्रेमी था ना, जिसने तुम्हें 'पुरानी' कहा था, उसने सही पहचाना था।

—तुमने तो नहीं पहचाना। सीमा ने जवाब दे दिया था, लेकिन वह सुस्त हो गई थी।

सहाय ने जान लिया था कि उनका मज़ाक, उसे बुरा लग गया। उन्होंने सफाई भी दी थी—मैंने तो वैसे ही कह दिया था, अच्छा माफी माँगता हूँ। लेकिन बात बन नहीं पाई थी।

उस दिन से सीमा उनसे उचटी-उचटी रहने लगी। वह अकेले में पता नहीं क्या सोचती थी और क्या देखती थी। उसने पहली-सी टकटकी में उन्हें देखना भी बन्द कर दिया था।

तभी एक कुदरती गज़ब हुआ। तीन महीने भी नहीं हुए थे कि सीमा खाली हो गई। उसका बच्चा सिर्फ उसकी कल्पना में रह गया।

ऐसा कैसे हो गया पता नहीं चला। सीमा बीमार भी हुई उसके बाद। वह कभी-कभी ताना देकर कहती—तुम नहीं चाहते थे ना, तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई।

मैं कहता—तुम्हें कैसे पता कि मैं नहीं चाहता था। तुम्हारी ख़ुशी को देखकर मैं खुद तुम्हारी तरह सपने देखने लगा था।

मेरी तरफ से यह बात सच थी, लेकिन सीमा ने इस पर विश्वास नहीं किया। उसने गुस्से में आकर पूजा-पाठ सब छोड़ दिया।

सहाय पूछते—तुम्हारे बदलाव का ही पता नहीं लगता।

—अब तो मॉडर्न हो गई।

सीमा पहले नाराज होती थी, तब इतना गुस्सा नहीं आता था, लेकिन अब उसकी भाषा ने तानों की शक्ल ले ली थी, जो बर्दाश्त नहीं होती थी।

पहले तो सहाय सहानुभूति दिखाते रहे, लेकिन जब सीमा के ताने कम नहीं हुए तब वह भी जवाब देने लगे।

लॉन में घूमते-घूमते सहाय साहब बुझ गये। कहाँ अभी कुछ देर पहले इच्छा हो रही थी कि तेजी से दौड़ें, अब ऐसा लग रहा था कि मिट्टी खोदें, पिंडलियों तक का गहरा गड्ढा बनाएँ और अपने दोनों पैर उसमें डालकर गड्ढे को पाट दें। बस बुत से खड़े हो जाएँ। दिमाग काठ की तरह ठस हो जाये।

क्या बात हुई ? यह भी कोई इच्छा है ?

उन्हें उस नन्दलाल वशिष्ठ का ध्यान हो आया, जिसके बारे में सरखेल ने बताया था।

घूमते हुए सहाय के सामने सवाल उठा—क्या वह उस नन्दलाल वशिष्ठ से कम सनकी है ?

सरखेल ने कहा था—सामान्य से सामान्य आदमी भी किसी दिमागी खलल को लिये रहता है।

अगर सीमा के साथ वह हादसा हुआ तो उसमें वह कहाँ दोषी थे ?

लेकिन सीमा भी क्यों दोषी थी ?

कोई भी दोषी नहीं था, लेकिन दूर तो होते जा रहे थे दोनों। कितनी छोटी-छोटी फाँसें पता नहीं कब-कब इकट्ठी होकर अन्दर ढेर बनती गई। तारीफ की बात यह कि बाहर निकालने की जितनी कोशिशें की गई उतनी वे अन्दर-अन्दर बिखरती गई।

अब तक सहाय साहब ऊब गए थे। दिमाग की यह कैसी आदत होती है कि खुद ही तो किन्हीं यादों को उभारता है और जब वे अपनी लीक पकड़ती हुई आती हैं तो, उनसे पीछा छुड़ाने के लिए बेचैन हो उठता है।

सहाय साहब ने घूमना बन्द कर दिया, वह लॉन से निकलकर बरामदे में पड़ी कुर्सी पर बैठ गये। उन्होंने सोनू को आवाज दी—सोनू !

—जी साब ! उसने अन्दर से जवाब दिया; फौरन आ गया।

—ड्राइंगरूम में अखबार और मैगजीन ला दे। यह लाइट भी जला दे।

सोनू ने पहले लाइट जलाई, फिर अखबार और मैगजीन ले आया। वह अखबार पढ़ने लगे। पता नहीं कितनी देर तक पढ़ते रहे। तभी उन्हें एक आदमी फाटक खोलकर अन्दर आता दिखाई दिया। उन्होंने जानना

चाहा कि वह ड्राइवर के क्वार्टर की तरफ जा रहा है या इधर आ रहा है। वह आदमी उन्हीकी तरफ आ रहा था।

—सहाय साहब आप ही है।

—हाँ।

उसने एक बन्द लिफ़ाफ़ा उनकी तरफ बढा दिया। बीच में उनका नाम लिखा था, कोने मे एक तरफ विश्वास धवन।

लिफ़ाफ़ा खोलने पर एक छोटी-सी चिट निकली, लिखा था—खाने पर इन्तजार करूँगा—जरूर आइये।

—ठीक है, तुम होटल लौटोगे?

—जी नही, अभी तो बाजार जाना है, उसके बाद पहुँचूँगा। आदमी ने उत्तर दिया।

—अच्छा मैं पहुँच जाऊँगा।

—जी, तो मैं जाऊँ।

—जाओ।

वह चला गया। सहाय साहब खत लिये-लिये अन्दर आ गये।

—सोनू, मेरा खाना मत बनाना, मुझे कही जाना है। ड्राइवर से कह दो कार पोर्टिको तक पहुँचा दे।

वह बाथरूम मे चले गये। कपडे पहिनकर जब तक तैयार हुए, ड्राइवर ने कार खडी कर दी। वह स्टार्ट करके सीधे होटल पहुँचे। इक्कीस नम्बर कमरे की घंटी बजाने पर एक व्यक्ति ने दरवाजा खोला। उन्होंने चार आदमी और एक औरत को गोल मेज़ के चारो तरफ बैठे पाया जिनमें वह हरबिन्दर और सारस्वत यानी विश्वास धवन को पहचान सके। सारस्वत ने चौड़ी मूंछे और खस-खसी दाढी रख रखी थी।

—आइये सहाय साहब, आपका ही इन्तज़ार हो रहा था। विश्वास बोले।

—हमे कैसे याद किया धवन जी! सहाय ने खाली कुर्सी पर बैठते हुए पूछा।

वह हरबिन्दर को देखते ही काफी कुछ समझ गये थे।

—अरे भाई, पानी मे रहना है तो मगरमच्छ को तो अपना बनाना

होगा। इस वक्त सहाय साहब ही होकर आए हो ना ! इन्कमटेक्स ऑफ़िसर को तो जेब में रखकर नहीं लाये। विश्वास हँसे।

—वह ऑफिस में खूटी पर टँगा है।

सहाय ने मेज पर रखे पैकेट में से सिगरेट खीचकर जला ली। वह पूरे नाटक पर आ गये थे।

हरविन्दर जो कि अब तक चुप था बोला—सहाय साहब मस्त आदमी हैं। बस दफ्तर में अफ़सर रहते हैं।

—उतनी देर की अफसरी ही काफी सिरदर्द है। इसलिये अपने तो साढे दस से पाँच तक अफ़सर हैं। इससे ज्यादा अपनी ताब नहीं।

—मैं कह रहा था ना सेठ हरविन्दर कि सहाय साहब अपनी लाइन के न होते हुए भी अपने में से हैं। लो, इसी बात पर। और विश्वास धवन ने एक प्याले में रम उलट कर उनकी तरफ बढ़ा दिया। खाली बोतल फर्श पर रख दी। फिर दूसरे व्यक्तियों का परिचय कराते हुए बोले—सहाय साहब, यह लिखमीचन्द है, दीखने में बिलकुल साधारण, लेकिन कमाल के। बाजार के चढ़ने-उतरने का रुख जानने में माहिर। आप हरदोई लाल, बहुत अच्छी पार्टी हैं। और आप मिस सैफाली मेरी सेक्रेटरी और फ्रेंड। औपचारिक तौर पर परिचय के साथ सब ने हाथ मिलाया। सहाय साहब ने प्याले से दो सिप खींचे, और सामने रखी प्लेटों में से नमकीन मुंह में डाल लिया।

लिखमी चन्द ने व्यापार की बात छेड़ी—हरविन्दर सेठ, तुम्हारा माल कब आ रहा है ? अब की जल्दी भेजो तो काम चले।

हरविन्दर को इस वक्त माल का जिक्र अच्छा नहीं लगा। जवाब देना था, इसलिये मुँह चढ़ाता हुआ बोला—माल हो, तब तो सप्लाई किया जाये। हम तो खुद घाटे में जा रहे हैं।

—अपने को सिर्फ कपड़ा चाहिये। हरदोई लाल बोले।

—ऐसा नहीं! सहाय साहब ने टोका, बिज़नेस-बिज़नेस दिन के लिये। इस वक्त मस्ती के अलावा कोई सीरियस बात नहीं होनी चाहिए। क्या ख़याल है मिस्टर विश्वास ?

—अपने ने कोई ऐसी बात की ? विश्वास धवन बोले—अपना तो

प्रिंसिपल है, जब सामने यह हो—उन्होंने दूसरी बोतल खोली—तब इसी का हो जाना चाहिए। क्यों सेठ हरविन्दर?

—सही है। हरविन्दर ने समर्थन किया। और अपना प्याला बढ़ा दिया।

लिछमीचन्द और हरदोई लाल झेंप गये। लेकिन उनके यह समझ में नही आया कि वे दूसरी कैसी बात कर सकते है? उन्हें बैठने में दिक्कत महसूस हो रही थी।

विश्वास धवन ने बात को दूसरा मोड़ दिया। लिछमीचन्द जी, मान लीजिये आज आप को घाटा लग जाये या आपका सारा रुपया सरकार जब्त कर ले, तब क्या करेंगे?

हरदोई लाल बीच मे बोले—धवन जी, क्यों अपशकुन बोलते हैं, आदमी की जबान कभी ऐसी लगती है कि सब चौपट हो जाता है।

—अरे मैं तो कल्पना करने को कह रहा हूँ, मेरा मतलब यह थोड़े ही है कि वास्तव में घाटा लग जाये।

—मुझसे तो मत कहना, मेरा दिल कमज़ोर है। और सच में हरदोई लाल का हाथ उनकी छाती पर चला गया जैसे उनका दिल बैठने को हो।

सैफाली जो अब तक बिल्कुल खामोश बैठी थी, हरदोई लाल की डरी हुई हालत देखकर हँस पड़ी। उसने छेड़ने के लिहाज से कहा—सर, मान लीजिये किसी को यह पता लग जाये कि उसे छः दिन बाद मरना होगा, तब वह क्या करेगा।

हरविन्दर चमक कर बोला—फाँसी पाने वाले को मालूम होता है, कि उन्हें कब मरना है, तब वह क्या करते हैं?

—क्या मामला है? आज मसालेदार बातों का स्टाक खत्म हो गया, जो ऊट-पटाँग सवाल और ऊट-पटाँग कल्पनाएँ करने को कहा जा रहा है। सहाय चिढ़कर बोले।

—असल बात यह है कि हम लोग बहुत देर से बैठे हैं। काम की बात हो चुकी अब वक्त टाल रहे हैं। लिछमीचन्द बोले।

—अपने तो चले धवन जी। हरदोई लाल खड़े हो गये।

—यह क्या हुआ? मैंने तो वैसे ही कह दिया। बैठो यार! सोचने से कोई घाटा थोड़े ही लगता है। न आदमी मरता है। बैठो-बैठो! विश्वास ने आगे

हाथ बढ़ाकर उनको बैठाना चाहा।

सैफाली ने छेड़ने के लिए कहा—अच्छा हरदोई लाल जी, मान लीजिए आपको कहा एक लाख का फायदा हो जाता है, तब ? अब तो बैठ जाइये।

सब एक साथ जोरों से हँस दिए।

लेकिन हरदोई लाल जैसे कांप रहे थे।

लिखमीचन्द खड़े हो गए—अब इनको सँभालकर ले जाना पड़ेगा। नहीं तो कल यह बीमार दीखेंगे।

—मुझसे गलती हुई, मुझे क्या पता था' विश्वास ने सँभालना चाहा।

हरदोई लाल बीच में ही बोल पड़े—बस ! बस विश्वास जी, अब कल्पना-बल्पना नहीं होगी। माफ करिए। लिखमी चन्द चलो ! मुझे मेरे होटल पहुँचा देना।

लिखमीचन्द ने सबसे माफी माँगी और हरदोई लाल के साथ कमरे से निकल गये। सीढ़ियों से उतरते वक्त हरदोई लाल ने लिखमीचन्द को बताया कि यह तो नाटक था। मैं तो मौका ढूंढ रहा था उठने का।

—यह विश्वास धवन गड़बड़ आदमी लगता है। लिखमीचन्द ने कहा।

—है बिल्कुल गड़बड़ है। अपने दोनों को कल शहर छोड़ देना चाहिए।

—छोड़ देंगे जी! यह साला धवन सोचता है सारी अक्ल इसी के पास है।

दोनों होटल के बाहर आ गये थे। उन्होंने देखा इतनी-सी देर में हरविन्दर भी पीछे-पीछे आ गया था।

—नाटक पर नाटक मार दिया ! हरिवन्दर ने दोनों के पीछे खड़े होकर कहा।

—आ गये, तुम भी ! लिखमीचन्द बोले।

बच गये यह कहो। हरदोई लाल के चेहरे पर चालाकी चमक आई थी। क्या जरूरत थी यहाँ आने की ? उसने हरविन्दर की तरफ़ मुड़कर कहा।

—जाल का बिछाव देखने के लिये। साला समझता है हम बेवकूफ है। हरविन्दर ने विकृत-सा मुंह बनाया। एक जाती हुई टैक्सी को रोककर तीनों बैठ गये। हरविन्दर ने अपनी कोठी का पता ड्राइवर को बताया,

उसने टैक्सी चला दी।

इधर सारस्वत सहाय से कह रहे थे—साले, बड़े चालाक हैं। तुम्हारे आते ही कैसा भागे!

—आपने बुलाया क्यों मुझे? नहीं बुलाते तो उनको शक नहीं होता। सहाय बोले।

—शक तो उन्हें पहले से था, सैफाली बोली। मैंने हरविन्दर और हरदोई लाल को आँखों मे इशारा करते पकड़ लिया था। मुझे लगता है अगर आज रात छापा नहीं मारा गया तो हरविन्दर हाथ नहीं आएगा।

—तीनों में से कोई पकड़ में नहीं आएगा। सारस्वत सैफाली के अन्दाज़े का समर्थन किया।

—तो फिर अपने को तैयारी करनी चाहिये। मैं अपने इन्सपेक्टरों को बुलवाऊँ। सहाय की आवाज़ में तेज़ी आ गई थी।

पकड़ने का आधा बन्दोबस्त कर चुका हूँ। मेरे दो आदमी हरबिन्दर की कोठी को घेरे हैं—उसका मूवमेन्ट बतलाने के लिये। पुलिस की ज़रूरत पड़ेगी। सारस्वत ने प्लान खोला।

—मैं इन्तजाम करता हूँ। वक्त बताइये कितने बजे रेड करना होगा? सहाय खड़े हो गये।

—सिर्फ हरविन्दर को नहीं, लिखमीचन्द और हरदोई लाल के उनके होटल में पकड़ना होगा। वरना वह निकल भागेंगे। मेरा ख़याल है अपने पास सिर्फ तीन-चार घंटे हैं। हमें एक बजे छापा मारना चाहिये।

—ओके! सहाय चलने को हुए।

—सावधानी से! किसी को हवा तक नहीं लगे। इन्सपैक्टर्स भी तब जानें, जब हम लोगों के पास आ जाए। सारस्वत बोले। पहले हम सैफाली को अकेली हरबिन्दर की कोठी में पहुँचायेंगे। यह वहाँ हरविन्दर को उलझाएगी।

—मैं चलूं! यहीं मिलना होगा ना? सहाय ने पूछा।

—यस! सारस्वत खुद खड़े हो गये। विश यू गुड लक! उन्होंने हाथ ऊपर करके कहा। सहाय जवाब देते हुए कमरे से बाहर हो गये। सारस्वत ने दरवाजा बन्द कर लिया अन्दर से।

सारस्वत बजाये सोफे तक जाने के पलँग पर पहुँचे।

—मिस सैफाली! उन्होंने इशारा किया।

—जस्ट ए मिनट! सैफाली उठी बाथरूम में गई, वहाँ से निकली तो ड्रेसिंग टेबिल के सामने खड़ी होकर शीशे में देखा, बालों को बिना जरूरत सँवारा और पलँग तक आ गई।

—तुमने अगर हेल्प नहीं की होती तो यह काम इतनी जल्दी नहीं हो पाता।

—बिना बात की तारीफ मत करिये। सैफाली ने पलँग पर बैठते हुए कहा।

—तुम्हें चुनने में मेरे चार दिन बरबाद हो गये। सारस्वत पर नशा सवार हो चुका था।

—बरबाद कहाँ हुए, आपकी हर रात।

सारस्वत ने सैफाली के होंठों पर हाथ रख दिया।

—क्या बोलूँ नहीं? सैफाली ने शोखी से कहा।

—कतई नहीं। सारस्वत का हाथ होंठ से हटकर सैफाली की गोदी में आ गया।

—तो? सैफाली ने पूछा, फिर सारस्वत का हाथ अपने हाथ में लेती हुई बोली—आराम में मत आइये, हमको छापे में चलना है।

—ड्यूटी, सहाय के आने पर शुरू होगी। इससे पहले यह मेरा अपना वक्त है, मेरी निजी जिन्दगी का।

—हाँ, और मैं ड्यूटी पर हूँ। रोशनी तेज है, कम कर दूँ। पलँग से उतरते हुए उसने बैड के पास नीला बल्ब जला दिया। बाकी बल्ब बुझा दिये। वह पलँग की तरफ लौट रही थी। सैफाली; जो अब तक खुश और चचल दीख रही थी, यकायक उदास हो गई थी। वह ताजगी और स्वाभाविकता जो अभी थोड़ी देर पहले उसके चेहरे और हाव-भाव में थी, इस वक्त गुम हो गई थी। पेशे को भूलना और उसके लिये तैयार हो जाने में इतना-सा फर्क था। उसने पलँग पर लेटकर दूसरे दिनों की तरह अपनी देह को सारस्वत के हवाले कर दिया—वह जैसा चाहे उसका इस्तमाल करें—उसको कीमत से मतलब है।

सैफाली को अपनी जिन्दगी तीन हिस्सों में बँटी लगती है। दिन भर का खरीदी हुई सुविधाओं को भोगने का हिस्सा, रात को बिकने और भोगे जाने का हिस्सा; और तीसरा भोगे जाने के बाद का हिस्सा, जिसमें वह जिस्म नहीं रहती है, संस्कार और दिमाग होती है। उसे यह आज तक पता नहीं चल पाया कि वास्तव में वह इन तीनों हिस्सों में से किसमें है। है भी, या सिर्फ़ बिक्री और खरीद-फरोख्त है।

नोट यह सवाल चाहे सैफाली अपनी जिन्दगी के साथ लगा हुआ पाती हो, लेकिन ऐसा लगता है, सहाय, सारस्वत, सीमा, पार्वती, मिस्टर घोष, मिस्टर मिश्रा, राजेश, हरदोई लाल, लिखमीचन्द, हरविन्दर, मिसेज नागपाल, मिसेज कीर्ति सबके पीछे ऐसा ही सवाल उनकी असली परछाईं की तरह उनके पीछे रहता है, पर किसी को छेड़ता नहीं। कभी-कभी पल्ला जरूर पकड़ता है। सवाल नहीं हुआ दो जुड़वाँ बच्चे हो गये जिनको जोड़ने वाली नाल अलग नहीं की गई हो।

आदमी किस-किस तरह से अपना अधिकार रखना चाहता है। वह जानते हुए भी कि अपने हिसाब से बिल्कुल किसी और जगह का है, यूँ ही अपने को भटकाता है, स्वतंत्र होने की छटपटाहट में अपने को बाँधता चला जाता है। क्या वह कुछ तलाश करता है? करता ही होगा, वरना हटने-जुड़ने, छोड़ने या उसी के घेरे में बार-बार आने का खेल क्यों करता?

कुछ तो है जो उसको चैन नहीं लेने देता? सीमा इस कुछ को जानना चाहती है, लेकिन अभी तक नहीं जान सकी है। मिश्रा उस दिन की लताड़ खाकर बहुत पक्के इरादे के साथ सीमा के फ्लैट से गए थे, लेकिन वह इरादा महीना भर भी नहीं चल सका कि एक दिन उनकी कार सीमा के क्वार्टर के सामने फिर आकर रुकी।

सीमा ड्राइंगरूम में बैठी है। आज छुट्टी का दिन है इसलिए वह इसी मूड में है। छुट्टी के दिन सारे काम उलट-पुलट हो जाते हैं। एक सुस्ती उस जल्दबाजी को दबा देती है, जो रोज़ के रोजनामचे में बिना लिखे दीर्घा गई होती है।

सीमा का मन हुआ पार्वती से बात करे। उससे पूछे कि वह अपने उस आदमी के साथ कैसे दिन गुजार रही है, जो वास्तव में उसका आदमी नहीं है।

मेरे मन में क्यों आया ऐसा? मुझे क्या मतलब कि वह कैसे दिन गुजार रही है? क्या होगा अगर जान भी लिया? कभी-कभी दूसरों की खुशी सुनकर मन को खुशी होती है जैसे अपनी खुशी बताकर। मन के दु:ख-दर्द, सुख-दु:ख की तरफ शायद इसलिए ही बढ़ना चाहता

उसको वही दु ख मिल जाए जिसे वह चाहता है।

—पार्वती ! मैं पुकारती हूँ।

—जी, आई ! पार्वती शायद नाश्ते की तैयारी कर रही है, जबकि मैं अभी नहाने तक भी नहीं गई। हो सकता है कि मिश्रा साहब आ जायें? हो सकता है कि राजेश आ जाये ? नहीं आए तो कोई भी नहीं आए। मुझे ताज्जुब हो रहा है कि छुट्टी का दिन होते हुए भी कल मैंने यह नहीं सोचा कि मैं क्या-क्या करूँगी ? करने को तो क्या है ? यह नहीं तय किया कि मैं किसके यहाँ जाऊँगी, या किसके साथ पिक्चर देखूँगी। यानी वक्त को किस-किस तरह से भरूँगी।

आजकल ऐसा भी मन करता है कि बिल्कुल वास्तविक रहकर आराम से घर में वक्त गुजारा जाये। यह क्या कि जौन-सी सुबह कम लो और शाम तक तने-तने चलते रहो।

— आपने बुलाया था ? पार्वती ने पूछा।

—क्या कर रही थो ? मैं पार्वती को देखती हूँ।

—आप तो नहाई भी नहीं, मैं नाश्ता तैयार कर रही थी।

— यह अखबार वाला छुट्टी के दिन देर क्यों करता है ?

— आराम से मटर-मटर करता आता है। कई बार तो चौराहे के पास चाय की दुकान पर गप्पें लड़ाता रहता है — मैंने देखा है।

—आज अपना भी गप्पें लड़ाने का मन कर रहा है। तू तैयार है ? मैं उसकी तरफ देखकर मुस्कराती हूँ।

'—वाह बीबी जी, मैं ही मिली मजाक करने के लिए ! चलिए नहाइये ! मैं आप की कॉफी तैयार करूँ। पार्वती भी हँसती है।

—तुझे जल्दी जाना है ? हाँ, जाना होगा शायद। तेरे उसकी भी तो छुट्टी होगी।

—मैं तो आपके लिए कह रही थी कि नौ बज गए, अभी तक भूखी बैठी हैं। मुझे काहे की जल्दी।

पार्वती थोड़ी लजा जाती है।

—अच्छा तो जा नाश्ता यहीं ले आ। कॉफी भी ले आ। बाद में नहा लूँगी। मैं और भी आराम से आगे की तरफ टाँगे बढ़ाकर सोफे की पुश्त

से ठहर जाती हूँ।

पार्वती पहले तो मुझे अनबूझी-सी देखती है, फिर मुस्कराती हुई चली जाती है। पार्वती चाहे साँवली हो पर नाक-नक्श से अच्छी लगती है। सफाई से रहती है, साज-शृंगार का ध्यान रखती है इसलिए और भी ज्यादा आकर्षक लगती है। वैसे हमेशा तो ध्यान नहीं जाता, लेकिन जब-तब इसकी भरी हुई चौडी माँगऔरबडी-सीलाल बिन्दी मेरे मन को बहुत भाती है। यहाँ तक कि मैं देखती रह जाती हूँ, फिर इस खयाल के आते ही कही उसके द्वारा पकडी न जाऊँ, फौरन गर्दन का रुख बदल लेती हूँ।

मैंने कभी नही सोचा, लेकिन इस वक्त एक सवाल दिमाग मे आ रहा है—जब पार्वती किसी दूसरे आदमी के पास है, जो उसका पति नही, फिर यह माँग क्यो भरती है? और ध्यान आ रहा है कि बिछुवे भी पहनती है। अब और ध्यान आ रहा है कि कभी यह पीली, कभी गुलाबी, कभी चमकीली रेशमी धोती-साडी भी पहनती है।

यह पति के लिए पहनती है या उस आदमी के लिए जिसके साथ रह रही है?

मैंने तो सब छोड दिया, सिर्फ मिसेज रखा अपने नाम के साथ। कब छूट गया माँग भरना, कब किस गुस्से मे बिछुवो को उतार दिया अब तो यह भी याद नही पडता।

मेरी आँखो के सामने मिसेज कीर्ति का वह गोल-गोल-सा मासूम चेहरा खडा हो जाता है जो मुझे उस दिन कितना भला लगा था जिस दिन मिसेज नागपाल के साथ वह रेस्त्राँ मे चली थी।

ताज्जुब होता है कि उस दिन के बाद वह मुझे मिली नही और मैं भी ऐसे भूल गई जैसे कभी मिलना हुआ ही न हो। हुडक-सी उठती है उनसे मिलने की।

मैं कल ही उनसे मिलूँगी।

आज क्यों नही?

पहले पूछना तो होगा—क्या पता उनके यहाँ जाऊँ और वह न मिलें घर।

अखबार वाला नीचे से अखबार फेंकता है, जो खिडकी के रास्ते

अन्दर आ जाता है।

कोई नया मालूम पड़ता है। पहले वाला तो जीने से ऊपर आकर दरवाज़े की संध में से खिसकाता था।

मैं खड़ी होती हूँ, उसे देखने की कोशिश करती हूँ, कह दूँ कि बालकनी नही है, मेरा ड्राइंग रूम है, जो नीचे से ही उछाल दिया। किसी दिन किसी के मुँह पर मार देगा। लेकिन वह तो दूसरे सिरे तक पहुँच गया। दुनिया की खबरें लिए है क्या इसलिए।

मैं अखबार उठा लेती हूँ और उस पर चढ़े रबर-बैण्ड को हटा कर पढने बैठ जाती हूँ। पहले पेज की हेड लाइन्स सरसरी निगाह से पढती हूँ, जैसे एक बार में दुनिया और देश की खबर जान लेना चाहती हूँ—पहले झलक के तौर पर फिर ब्यौरे सहित।

पार्वती ट्रे में नाश्ता लाती है, मेज पर तश्तरी रख देती है। वह फिर लौट जाती है, कॉफ़ी लाने।

मैं अब सुर्खियों से हटकर पूरी खबर पढ़ने लगी। किसी देश में सैनिक क्रांति। अफ्रीका के काले विद्रोहियों पर गोरी सरकार का अत्याचार। स्वेडन की एक औरत के चार बच्चे।

पार्वती कॉफी भी ले आई। पहले खा लीजिये बीबी जी, वरना हलवा ठंडा हो जायेगा। वह कहती है।

मैं देखती हूँ उसने टोस्ट के दो पीस, और चिप्स तल कर रखे है, साथ मे हलवा।

—कॉफी के साथ हलवा? मैंने उसकी तरफ देखा।

—मैं तो दूध ला रही थी, आपने कॉफी को कह दिया। आज छुट्टी थी ना, मैंने सोचा...

—पेट भर दूँ। मैं हँसती हूँ। मुझे ख्याल आता है, मेरा तो गप्प मारने का प्रोग्राम था। मैं कहती हूँ अपनी कॉफी ले आओ, खाली प्लेट भी, मैं इतना थोड़े ही खाऊँगी।

—मेरा हिस्सा है, आप खाइए! वह कहती है।

—फिर वह गप्प मारने का प्रोग्राम? मैं हँसती हूँ और अखबार को एक तरफ रख देती हूँ जिसने उस मूड मे रुकावट डाल दी थी।

—बीबी जी आप भी..

—जा, जल्दी लेकर आ ! मैं कहती हूँ और पोट से प्याले में कॉफ़ी उडेलती हूँ। पार्वती जाती है, वह जाते-जाते सोचती है कि बीबी जी आज मस्ती के मूड में है—उसके कहने के ढग से ऐसा ही लगता है।

मैं महसूस कर रही हूँ कि जैसे पल भर खुश होती हूँ, पल भर में अपने से ही छिटक जाती हूँ। पार्वती मेरे पास फर्श पर बैठ जाती है, मैं उसकी खाली प्लेट में आधा हलवा और चिप्स रख देती हूँ।

पार्वती खुश है। और मेरी नजर उसकी चौडी भरी हुई माँग और बडी-सी लाल-लाल बिन्दी पर जाती है। मैं लहर-सी महसूस करती हूँ जो मेरी नसों में तीव्रता से दौड जाती है। मैं अपने को सँभाल कर मज़-बूती से प्याला उठा लेती हूँ।

पार्वती पीली धोती पहने हुए है। वह सिर झुकाकर कॉफ़ी का घूँट भर रही है। उसका चेहरा ताज़ा है—मैं उसे देख रही हूँ।

—पार्वती एक बात बताएगी ? मैं जैसे अपने विषय के लिए भूमिका तैयार कर रही हूँ।

—पूछिए बीबी जी। वह मुझे देखती है। उसकी आँखों की चमक मुझे छेडती-सी लगती है।

—तू कितनी बडी थी, जब तेरी शादी हुई थी ?

पार्वती शर्मा जाती है जवाब नही देती।

—याद नही है ? फिर हम गप-शप कैसे करेंगे।

—आप तो, बीबी जी ! वह समझ जाती है।

—तू झिझक मत। मेरा मन हुआ कि मैं आज तुझ से पूछूँ, तभी तो तुझे बुलाया।

—बता तू कितनी बडी थी, जब तेरी शादी हुई? मैं एक घूँट कॉफ़ी अन्दर उतार लेती हूँ।

पार्वती जवाब देती है—बीबी जी, ठीक से तो क्या पता, पर बडी थी। सत्तरह-अट्ठारह की।

—तेरे आदमी को तेरे बाप जानते नही थे, जो तुझे...

—बीबी जी, ऐसी बात नही थी। मेरी माँ ने खूब देख-भाल कर शादी

की थी। हमारी जात में तो बेटी को अच्छा मानते है। जो शादी करता है, वह रुपये देता है लडकी के बाप को। मेरे लिए मेरे बापू को हजार रुपये तक मिल रहे थे--लेकिन मेरी माँ ने ऐसे-वैसे को देने के लिए मना कर दिया। दो-तीन लोगों को तो चिट्टा उत्तर दे दिया। बापू माँ को मानते थे, सो अपनी मर्जी को नही लाये। मेरा आदमी उस समय मील में काम करता था। अच्छी कमाई करता था,आदत का भला था। मैंने हाँ भर दी।

—तो फिर क्या हो गया उसे। इतना बुरा कैसे हो गया। मैं पूछती हूँ। मैंने प्याला रख दिया है। चिप्स टूंग रही हूँ।

पार्वती भी प्याला फर्श पर रख देती है। वह बड़ी सहजता से कहती है—बीबी जी,भाग बुरे हो तो सोना भी पीतल बन जाता है। मेरा आदमी कपडे की मील मे काम करता था। दो-तीन साल तक हम खूब मजे में रहे। लेकिन उसके बाद मेरे भाग को राहू लग गया। बड़ा सेठ मरा तो उसके बेटों में हिस्से-बांट के लिए लड़ाई होने लगी। मील बंद हो गई। मजदूर बेकार हो गए। मेरे आदमी का काम भी छूट गया—आदमी की जिद यह कि ओछा काम करूँ नही। बस यह जिद खा गई। साल भर बेकार बैठ गया। मैंने दो-तीन घर देख लिए, जित्ता मिलता था, उसमे गुजारा कर लेते थे। हरम्मापन छा गया उस पर। मैं अपने मालिको की दूकान या घर पर काम लगाने की बात करूँ तो साफ मना कर दे। जितनी जोर-जबर्दस्ती कर सकती थी की, लेकिन उसके असर नहीं होता था। मैं तंग आ गई।

—तू तंग आ गई लेकिन वह तो तंग नही आया था। तुझे तो खूब प्यार करता था। मैं जान कर यह सवाल करती हूँ, पार्वती को दोषी ठहराती हूँ ताकि वह तिल-मिलाकर अन्दर-से-अन्दर की बातें उगल दे। ऐसा मैं क्यों करती हूँ?

पार्वती बोली—बीबी जी, प्यार तो भाड़ में गिर कर जल गया। वह तो इतना स्वार्थी और चिड़चिड़ा हो गया कि बात-बात में लड़ने लगा। मुझ से कहने लगा तू मुझ से रुपया चुराती है। तू बदजात हो गई है। सही बात यह है बीबी जी कि मेरे बापू ने कभी मुझ से तू-तड़ाक नहीं बोला। मेरी माँ ने मुझे ऐसे प्यार से रखा था कि मुझे किसी की गुलामी बर्दाश्त

नही थी—वेजा ठस्मा मैं मह नही सकती थी। मै कमाऊँ भी और वदजात भी कहलाऊँ! वह अपने यार-दोस्तो मे मुझे वदनाम करने लगा। एक दिन मैने कह दिया—तू रास्ते पर आ जा तो आ जा, वरना छोड दे मुझे। कर ले किसी दूसरी को जो भाए। उसे इतना गुस्सा आया कि मुझे खूब पीटा। उस दिन मे मेरे ऐसी घृणा वैठी कि, इसको देखूँ और मेरा कलेजा जले। वह मुझ से वदला लेने लगा था। इसी मे उसको जिद लगी कि वह कमाएगा और मील मे ही रहकर कमाएगा। उसने दूसरी मीलो के चक्कर लगाने शुरू किया। तब उसकी दोस्ती एक मील के मास्टर से हुई। उसने उसे नौकरी दिलवाई। लेकिन मास्टर ने उसे दारू और जुआ खेलने की लत लगा दी। वह चालीस-पैंतालिस सालका आदमी था। वडा खराव। उसकी नजर मुझ पर थी, लेकिन मैंने एक दिन इतनी जोर से डाँटा कि उस मास्टर की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई।

बीबी जी, 'उस मास्टर' ने वदला लेने के लिए मेरे आदमी को खूब चढाया। मैं सच बताऊँ, मेरा मेल उन्ही दिनों मे इससे हुआ था जिसके पास मैं हूँ। साफ बात है बीबी जी, उस वदमाश 'मास्टर' से खराव होने के बजाये मैं इसकी हो गई। मैंने सोच लिया था इसके पास बैठ जाऊँगी—कर ले कुछ अगर कर सके।

मैंने देखा कि कहते-कहते पार्वती के चेहरे पर गुस्सा भर आया। बोली, उस मास्टर के वच्चे ने एक रात मेरे आदमी को खूब शराब पिलाई खुद पीकर आया। एक वजे मुझे सोते ने जगाया। फिर मेरे आदमी ने मुझ से कहा ..पार्वती रुक गई।

मैं समझ रही थी कि वह आगे नही वता सकती। मैंने पूछा—तुम बची कैसे ?

—मैं नहीं वच सकी वीवी जी। दो मर्द हो और अकेली औरत। मेरे आदमी ने मेरे मुँह मे कपडा ठूँस दिया था। 'मास्टर' वडवडाया था, वह भी तो आदमी है जिसके पास जाती है—तेरा चहेता। मै तडपी थी तो मास्टर ने थप्पड़ मार-मार कर मेरा सिर भन्ना दिया था।

रहने दो पार्वती। वस सुन ली तुम्हारी कहानी। आगे तुम बता चुकी हो, वह तुम से पेशा करवाकर वदला लेना चाहता था। इतना नीच था

तुम्हारा आदमी !

मैं वास्तव मे अन्दर से कॉप रही हूँ। कहाँ मैं यह पूछना चाहती थी कि वह किसके लिए माँग भरती है ? किसके लिए बिछुए पहनती है ? क्या उसे अपने आदमी की भी याद सताती है ? कहाँ इस भयानक दुर्घटना का पता लगा। पार्वती अपने धोती के पल्ले से अपने चेहरे को दबा रही है। वह बार-बार अपनी हथेलियों से अपनी आँखों के डलो को दबा रही है कि वे जो लाल हो गई थी, अपनी जलन छोड दें।

—मुझे नही पूछना चाहिए था पार्वती, मैंने बेकार मे तुझे परेशान कर दिया। मैंने पार्वती से माफी-सी माँगी। मैं सच मे दु खी हो गई हूँ। किसी औरत के लिए इससे ज्यादा दु खी स्थिति क्या हो सकती है ? और वह भी उसका आदमी उसे उस स्थिति मे डाले ! मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरे दिमाग के तार काट दिये गए है, और उसे सुन्न कर दिया गया है। लेकिन फिर भी एक सवाल बार-बार मुझ से टकरा रहा है—औरत का जिस्म आदमी के लिए क्या है ? फिर भी पार्वती को अपनी देह से घृणा नही हुई।

पार्वती अब शान्त है। उसने धोती का पल्ला चेहरे से हटा लिया है। मैं देख रही हूँ, उसकी आँखो मे उतरा हुआ खून अभी पूरी तरह से नही हटा है।

वह मुझे परेशान देखकर बहुत सहजता से कहती है—बीबी जी, आप क्यों दु खी होती हैं। आपने तो उस कमीने से मेरा पीछा छुडवाया है।

—अगर उसने छूटने के बाद फिर पीछा किया तो ? मैं पूछती हूँ।

—बीबी जी, अब की मैं कचहरी मे चली जाऊँगी। कह दूँगी मेरा आदमी वह नहीं यह है जिसने मेरी जिन्दगी सुकारथ लगा दी।

मुझ से रहा नही जाता। आखिर मैं पूछ बैठती हूँ—पार्वती तुम्हे जब यह सब याद आता है तो कैसा लगता है ?

—कैसा भी नही बीबी जी। बस गुस्सा आता है, जैसा अभी आया था। लेकिन मैं याद नही करती। मेरा यह आदमी कमाता है, मैं कमाती हूँ। मजे मे रहते हैं।

—देखिये सब ठडा हो गया आपने कुछ भी नही खाया। पार्वती खडी हो जाती है। आप नहाइये—मैं खाना बनाती हूँ।

—हाँ, उठती हूँ।

पार्वती ट्रे उठाती है, अन्दर चली जाती है। मैं कमजोरी-सी महसूस कर रही हूँ, जैसे किसी ने मेरी ताकत को सूत लिया हो। मैं बैठ नहीं पाती इसलिए इस लम्बे सोफे पर लेट जाती हूँ। अखबार मेरे नीचे दब गया है। करकरा रहा है। मैं इसे निकालकर मेज पर रख देती हूँ। मैं आँख नहीं मूँद सकती। सोच भी नहीं सकती। एक तो पहले से सुस्ती थी, अब तो देह बिलकुल शिथिल हो गई। ऐसा महसूस हो रहा है जैसे उस यातना को भुगत के चुकी हूँ जो पार्वती ने भुगती थी।

और क्या उसी किस्म की-सी यातना क्या मैं वास्तविकता में नहीं भुगत रही हूँ।

पार्वती की आपबीती मेरे सामने एक सवाल करती है—बीबी जी, मैंने तो अपनी ज़िन्दगी का हल निकाल लिया, आप अभी तक क्यों नहीं निकाल सकी ?

पार्वती नहीं, शायद मैं ही अपने से यह प्रश्न कर रही हूँ।

नहीं निकाल पायी तो क्या बिना हल तक पहुँचे इतने साल गुज़ार लिये ? कैसा भी तो हल निकाला। हाँ, पार्वती की तरह नहीं निकाल सकी।

रेस्ट का टाइम होने वाला है, आधे से ज्यादा बाबू, नीचे चले गये हैं। पाँच मिनट पहले लंच टाइम के लिये निकल जाना और पाँच मिनट बाद तक आना जैसे कोई खास बात नहीं है। कोई रेस्त्राँ में बैठा होगा, कोई पान की दूकान पर दोस्तों के साथ होगा। कुछ यूँ ही फुटपाथ पर हँसी-मज़ाक करते घूम रहे होंगे। राजेश दो दिन से दफ्तर नहीं आया है—पता नहीं उसकी तबीयत कैसी है। मैं सोच रही हूँ आज उसके यहाँ जाऊँ। मैं तो और भी कुछ सोचती हूँ—लेकिन दोनों तरह से डरती हूँ—ख़ुद अपने से, और उससे कि वह न माने तो ! ख़ैर, मैं जाऊँगी।

टेलीफोन की घंटी बजती है। मैं रिसीवर उठाती हूँ।

—अरे मिसेज सीमा, क्या वहीं बैठी रहियेगा ? घोष साहब कहते हैं।

—जी, कोई काम है क्या ?

—नहीं, काम-वाम तो नहीं है। आओ तो साथ कॉफी पी लें।

मैं बहाना टटोलती हूँ—घोष साहब, जरा तबीयत खराब है। उठने की इच्छा नहीं कर रही है, इफ़ यू डोन्ट माइन्ड।

—मैं आ जाऊँ, अगर ज्यादा तकलीफ हो। अगर तबीयत ठीक नहीं है तो रुको क्यों हो। व्हाई डोन्ट यू गो एन्ड टेक रेस्ट? तुम अक्सर अपने साथ ज्यादती करती हो ना? से, यस! घोष साहब हँसते है।

—नहीं ऐसी बात नहीं है—बस यूँ ही कुछ...

—तुम घर जाओ आराम करो जाकर! अपनी तन्दुरुस्ती का ध्यान रखो, अच्छा मैं अकेला कॉफी पीता हूँ।

—सॉरी घोष साहब। मैं रिसीवर रख देती हूँ। मैं सोचती हूँ कि अगर चली जाती तो क्या बिगड़ जाता। घोष साहब कितने सीधे हैं। मैंने तो बहाना बनाया, उन्होंने विश्वास कर लिया। चलो ठीक है, जल्दी चली जाऊँगी तो राजेश के यहाँ होती जाऊँगी।

मैं अपने पर्स में से डायरी निकालती हूँ। राजेश का पता देखती हूँ। वह तो क्या सोचेगा कि मैं उसके घर भी पहुँच सकती हूँ।

क्या मुझे जाना चाहिए?

आखिर क्यों नहीं जाना चाहिए?

मैं समझ नहीं पाती कि मुझ में यह कौन-सी औरत है, जो मेरे अन्दर घुसी रहती है, बिना बात के टोका-टाकी करती रहती है। मुझे मिसेज कीर्ति से वक्त लेना था मिलने का। जिस दिन से पार्वती की जिन्दगी सुनी थी, उसी दिन से मिसेज कीर्ति का चेहरा दिमाग पर हावी है। यह मुझ में क्या है कि हर तरफ भागती हूँ? हरएक को जानना चाहती हूँ, फिर वह जानकारी मेरा कोई अंश बनकर मुझ से सवाल करने लगती है। मैं नागपाल को रिंग करती हूँ।

—हाँ मैं सीमा बोल रही हूँ।—याद इसलिए किया कि मुझे मिसेज कीर्ति का पता चाहिए था। क्या उनसे टेलीफोन पर कन्टेक्ट हो सकता है? रुकिए मैं जरा नोट कर लूँ। मैं कलम उठाती हूँ और मिसेज कीर्ति का पता और फ़ोन नम्बर नोट कर लेती हूँ। और सब ठीक है। आपके यहाँ भी आऊँगी...जरूर आऊँगी। आप आइये ना कभी! ठीक। ठीक! थैंक्स!

धन्यवाद !

रिसीवर रख देती हूँ। घन्टी बजाती हूँ। चपरासी अन्दर आता है।

—एक कॉफी तो लाओ। और सुनो ! निगम बाबू है, या बाहर गए हैं ?

—देखता हूँ। चपरासी चला जाता है। मैं आराम के लिए अखबार उठाकर पर्दे के पीछे चली आती हूँ, जहाँ आराम कुर्सी पडी है।

मैं अखबार पढते-पढते जैसे ही तीसरे सफे की एक खबर पढती हूँ, चौंक जाती हूँ। तो क्या ? एक साथ सवाल पर सवाल उठते जाते हैं। खबर है केन्द्रीय आयकर विभाग के विशेष दस्ते की सराहनीय सफलता। अनिल सारस्वत तथा उनके विशेष दल ने हरबिन्दर नामक बडे व्यापारी के यहाँ छापा मार कर आठ लाख रुपये की राशि, तथा दो लाख का अवैध सोना पकडा है। पाये गये जेवरों का मूल्य आँका नहीं गया है। श्री अनिल सारस्वत ने बताया कि स्थानीय आयकर अधिकारी श्री के सी. सहाय के सहयोग से यह कार्य सफल हो सका। हरबिन्दर के अलावा दो अन्य व्यापारियों को भी पकड़ा जा सका जो उसकी बोगस कम्पनियों के हिस्सेदार थे।

मैं यह खबर पढ रही हूँ और बार-बार के सी. सहाय के नाम पर अटक रही हूँ। अनिल सारस्वत तो यहीं के है। यहीं इनकमटेक्स मे है। मेरे सामने उस पतले-दुबले अफसर की शक्ल घूम जाती है, जिससे कम्पनी के मामलों मे कई बार साबका पडा है।

कैलाशचन्द्र सहाय। मैं बार-बार इस नाम को दोहराती हूँ और उस जगह को दोहराती हूँ जहाँ यह विशेष छापा सफल हुआ।

चपरासी कॉफी लाकर पास के स्टूल पर रख जाता है।

मुझे ऐसा लग रहा है कि यह क्या हुआ। इतने साल बाद, इस तरह से, एक खबर बता रही है कि वह वहाँ है। मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरे अन्दर कोई वात-चक्र, कोई गहरी जल-भँवर घुस गई है और तेजी से चक्कर काट रही है।

मैं अखबार को बन्द कर देती हूँ। मैं कॉफी उठाने के लिये हाथ बढाती हूँ, भय लगता है कि प्याला छूट न जाय हाथ से। लेकिन मैं गरम कॉफी

को अन्दर पहुँचा देना चाहती हूँ कि यह वात-चक्र या जल-भँवर की गति को रोक दे। मैं लगातार घूँट भर-भर कर सारी कॉफी खत्म कर देती हूँ। मैं लेटी रहती हूँ इसी तरह से। वह आँखों में तरह-तरह से घूम रहे हैं, मेरी ताकत नहीं है कि उनके इस आने को रोक सकूँ।

थोडी देर तक इस आकस्मिक खबर और इसके स्वाभाविक प्रभाव के लिये अपने को छोड़ देती हूँ। सँभलना तो है ही। मजबूत तो होना ही है। इतना ही तो पता लगा है कि वह कहाँ हैं। लेकिन उनसे वास्ता ? और मुझे लगता है कि जमीन का एक लम्बा मैदान है—दूर-दूर तक फैला हुआ। न कोई आदमी न पक्षी। मैं अकेली इस सिरे पर खड़ी दूरी को देख रही हूँ।

यह अपनी जिन्दगी का बिम्ब मेरी आँखों में किसी स्वप्न-सा आता है, और अपने-आप मैं ठंडी हो जाती हूँ। वह खबर जो कि अभी जिन्दा-सी लग रही थी, जिसने अभी मुझे झकझोर दिया था, वह मरी पड़ी है। मैं भी जो थोडी देर के लिये तेजी से जिन्दा हो गई थी, खबर की तरह, खबर रह गई हूँ। यानी मिसेज सीमा। बिजनेस एक्जीक्यूटिव मिसेज सीमा।

मैं अखबार की तह करती हूँ। बिल्कुल निर्विकार-सी उठती हूँ और लौटकर फिर अपनी सीट पर बैठ जाती हूँ, जैसे एक सफर तय करके आई होऊँ।

लंच का वक्त, या आराम का वक्त खत्म हो गया। हॉल से बाबूओं की आवाज आ रही है।

निगम आते हैं। आपने बुलवाया ?

हाँ—लेकिन वास्तव में मैं भूल गई थी। 'हाँ' तो मुँह से निकाल दिया।

—कहिये ? निगम ने पूछा।

—आप का प्रमोशन हो गया, आपने मिठाई नहीं खिलाई। मैं मुस्कराकर कहती हूँ।

—आपकी मेहरबानी से हुआ। मैं छोटा आदमी भला ऐसी गुस्ताखी करने की हिम्मत कहाँ से लाता। निगम ने खुशामदी लहजे में कहा।

—और आपकी बेटी को भी नौकरी मिल गई। मैं कुर्सी में झूलती हुई-सी कहती हूँ।

—आपने उसकी जिन्दगी रास्ते लगा दी। वरना बड़ी बुरी-बुरी

रहती थी।

—हम तो मनाते हैं कि ईश्वर आपको लम्बी जिन्दगी दे, तरक्की पर तरक्की दे।

—लम्बी जिन्दगी किस काम की निगम जी। जितनी जल्दी छुटकारा मिले उतना अच्छा।

पता नही मैं मजाक मे कहती हूँ या वास्तव मे यह इच्छा अन्दर कही दबी पडी है जो रेंग कर जबान पर आ गई। कही मेरी उसी स्थिति कि आवाज तो नही है, जिसमे मैं विरान मैदान के एक सिरे पर अकेली खडी हूँ।

निगम चूकते नही है—मैडम जी, अगर आप ऐसा कहे तो जीने का हक ही नही है। हम तो सोचते है इतना जरूर जियें कि दो लडकियो के हाथ पीले कर जाएं।

—आप राजेश के यहाँ गए थे? कैसी तबीयत है उसकी? मै पूछती हूँ, क्योकि असल मे मैंने इसीलिये इन्हे बुलाया था।

मैं तो नही, बड़ी लडकी गई थी। बता रही थी बुख़ार है। आजकल बुखार चल भी रहा है शहर में। एक बार आता है तो सारा बदन तोडकर रख जाता है। मैडम जी, आप भी बचाव की गोलियाँ ले लीजिये। पहले की रोक-थाम बुरी नहीं होती। निगम अपनी बुजर्गी की सलाह बिना माँगे दे रहे हैं।

मैं कहती हूँ—ठीक! पूछती हूँ—किसी जरूरी कागज पर दस्तख़त तो नही कराने है? निगम जवाब देते हैं—जी; नही। जाऊँ?

—हाँ। मैंने राजेश की तबीयत पूछने के लिये बुलाया था, शायद उधर जाना हो जाय तो देखने जाऊँगी।

—जरूर जी, बेचारा अकेला है। मैंने कहलवाया था, एक-दो दिन के लिये मेरे घर आ जाए, देखभाल अच्छी हो जाएगी, मगर मना करवा दिया। मै चलूँ मैडम जी?

निगम चले जाते है।

मैं घडी देखती हूँ, दो बज रहे हैं। घोष साहब ने कह ही दिया तो जल्दी निकल जाऊँ।

मैं उठती हूँ। काग़ज़ातो को ट्रे मे रखती हूँ, जिन्हे कल जल्दी मे पेपर

को अन्दर पहुँचा देना चाहती हूँ कि यह वात-चक्र या जल-भँवर की गति को रोक दे। मैं लगातार घूँट भर-भर कर सारी कॉफी खत्म कर देती हूँ। मैं लेटी रहती हूँ इसी तरह से। वह आँखों मे तरह-तरह से घूम रहे है, मेरी ताकत नही है कि उनके इस आने को रोक सकूँ।

थोडी देर तक इस आकस्मिक खबर और इसके स्वाभाविक प्रभाव के लिये अपने को छोड देती हूँ। सँभलना तो है ही। मजबूत तो होना ही है। इतना ही तो पता लगा है कि वह कहाँ हैं। लेकिन उनसे वास्ता? और मुझे लगता है कि जमीन का एक लम्बा मैदान है—दूर-दूर तक फैला हुआ। न कोई आदमी न पक्षी। मैं अकेली इस सिरे पर खडी दूरी को देख रही हूँ।

यह अपनी जिन्दगी का बिम्ब मेरी आँखों में किसी स्वप्न-सा आता है, और अपने-आप मैं ठडी हो जाती हूँ। वह खबर जो कि अभी ज़िन्दा-सी लग रही थी, जिसने अभी मुझे झकझोर दिया था, वह मरी पडी है। मैं भी जो थोडी देर के लिये तेज़ी से जिन्दा हो गई थी; ख़बर की तरह, खबर रह गई हूँ। यानी मिसेज सीमा। बिजनेस एक्ज़ीक्यूटिव मिसेज सीमा।

मैं अखबार की तह करती हूँ। बिल्कुल निर्विकार-सी उठती हूँ और लौटकर फिर अपनी सीट पर बैठ जाती हूँ, जैसे एक सफर तय करके आई होऊँ।

लच का वक्त, या आराम का वक्त खत्म हो गया। हॉल मे बाबूओं की आवाज आ रही है।

निगम आते है। आपने बुलवाया?

हाँ—लेकिन वास्तव मे मैं भूल गई थी। 'हाँ' तो मुँह से निकाल दिया।

—कहिये? निगम ने पूछा।

—आप का प्रमोशन हो गया, आपने मिठाई नही खिलाई। मैं मुस्कराकर कहती हूँ।

—आपकी मेहरबानी से हुआ। मैं छोटा आदमी भला ऐसी गुस्ताखी करने की हिम्मत कहाँ से लाता। निगम ने खुशामदी लहजे से कहा।

—और आपकी बेटी को भी नौकरी मिल गई। मैं कुर्सी मे झूलती हुई-सी कहती हूँ।

—आपने सबकी ज़िन्दगी रास्ते लगा दी। वरना बडी बुरी-बुरी

रहती थी।

—हम तो मनाते हैं कि ईश्वर आपको लम्बी जिन्दगी दे; तरक्की पर तरक्की दे।

—लम्बी जिन्दगी किस काम की निगम जी। जितनी जल्दी छुटकारा मिले उतना अच्छा।

पता नही मैं मजाक में कहती हूँ या वास्तव मे यह इच्छा अन्दर कही दबी पडी है जो रेंग कर जबान पर आ गई। कही मेरी उसी स्थिति कि आवाज तो नही है, जिसमे मैं विरान मैदान के एक सिरे पर अकेली खड़ी हूँ।

निगम चूकते नही है—मैडम जी, अगर आप ऐसा कहे तो जीने का हक ही नही है। हम तो सोचते है इतना जरूर जियें कि दो लडकियों के हाथ पीले कर जाएँ।

—आप राजेश के यहाँ गए थे? कैसी तबीयत है उसकी? मैं पूछती हूँ, क्योंकि असल में मैंने इसीलिये इन्हे बुलाया था।

मैं तो नही, बड़ी लडकी गई थी। बता रही थी बुखार है। आजकल बुखार चल भी रहा है शहर मे। एक बार आता है तो सारा बदन तोडकर रख जाता है। मैडम जी, आप भी बचाव की गोलियाँ ले लीजिये। पहले की रोक-थाम बुरी नही होती। निगम अपनी बुजुर्गी की सलाह बिना माँगे दे रहे है।

मैं कहती हूँ—ठीक! पूछती हूँ—किसी जरूरी कागज पर दस्तखत तो नही कराने है? निगम जवाब देते है—जी, नही। जाऊँ?

—हाँ। मैंने राजेश की तबीयत पूछने के लिये बुलाया था, शायद उधर जाना हो जाय तो देखने जाऊँगी।

—जरूर जी, बेचारा अकेला है। मैने कहलवाया था, एक-दो दिन के लिये मेरे घर आ जाए, देखभाल अच्छी हो जाएगी, मगर मना करवा दिया। मैं चलूँ मैडम जी?

निगम चले जाते है।

मैं घडी देखती हूँ, दो बज रहे हैं। घोष साहब ने कह ही दिया तो जल्दी निकल जाऊँ।

मैं उठती हूँ। कागजातों को ट्रे मे रखती हूँ, जिन्हे कल जल्दी मे पेपर

बेट में दबा हुआ छोड़ गई थी। घोष साहब ने बुलाया था काम से, फिर उन्हीं के कमरे से, उनके साथ ही दफ़्तर से निकल ली थी।

मैं पर्स उठाकर कंधे पर टाँगती हूँ, चश्मा लगाती हूँ, और जैसे ही चलने को होती हूँ कि ध्यान आता है मिसेज़ कीर्ति का। उनका नम्बर देख कर रिंग करती हूँ—खड़े-खड़े।

—मैं मीरा !

—अरे आप ! आप तो बड़ी वैसी हैं। मैंने आपको आने को इन्वाइट किया था, आप आईं नहीं। कितने दिन, बल्कि महीने से ज्यादा निकाल दिया।

—आपने पता तो दिया नहीं, आती कैसे।

—उस दिन बताया तो था, आप को आना नहीं था वरना मिसेज़ नागपाल से पूछ सकती थीं।

—उन्हीं से तो पूछा है, अब बोलिये कब आ रही हैं मेरे यहाँ।

—मैं नहीं; आप आएँगी। पहले मैंने इन्वाइट किया है।

—चलिये मान लिया। कब आऊँ ?

—कल आ जाइये ! वरना फिर भूल जायेंगी। कल तो सन्डे है, आ सकती हैं। खाना भी मेरे यहाँ खाना होगा। कल एक बजे तक जरूर आइयेगा; मैं इन्तज़ार करूँगी।

—कल आ रही हूँ। मिलना था, तभी तो कन्टेक्ट किया। आपकी याद आ रही थी कई दिन से।

—रहने दीजिये !—कल आना है।

—ओ. के.। रख दूँ रिसीवर ! अच्छा ! धन्यवाद।

मैं कमरे से निकल कर, हॉल पार करती हुई नीचे आ जाती हूँ। टैक्सी देखती हूँ। दीखती नहीं तो आगे चल देती हूँ, स्टैंड तक। वहाँ टैक्सी मिल जाती है, राजेश के यहाँ चल देती हूँ। रास्ते में एक बार अखबार की ख़बर फिर दिमाग पर छाती है। मैं दौड़ती हुई टैक्सी की वजह से पीछे छूटते हुए दृश्यों को बे-लगाव देखती हूँ, शायद इस बे-लगाव को उस खबर पर भी चिपकाना चाहती हूँ।

जगह मिल गई लेकिन राजेश के सही मकान का पता लगाने में थोड़ी-

सी पूछताछ करनी पड़ी।

मकान था तो मकान ही, लेकिन वास्तव मे जबर्दस्ती बनाया गया था। एक परिवार ऊपर, एक आँगन मे खड़ी की गई दीवार के दूसरी तरफ, दूसरे मे राजेश, उसका दोस्त। एक अध-कटा आँगन, गुचपुच रसोई, दो गज़ का गुसलखाना और घुसते ही दाईं तरफ एक गजी लैट्रिन।

मैं ठिठक जाती हूँ एक बार। लेकिन राजेश के नाम की नेम-प्लेट दरवाज़े पर थाप पड़वा देती है। नया शख्स दूकानदारों की नजर मे ज्यादा आता है। गली वैसे ज्यादा नही चल रही है, फिर भी शायद मेरे पहनावे मे अलगपन झलक रहा हो। हो सकता है, मेरे अन्दर सदेह हो।

कौन? अन्दर से आवाज आती है—राजेश की है—लेकिन दरवाजा एक लडकी खोलती है।

किसे पूछ रही है? वह मुझे देखते हुए पूछती है।

राजेश को! मैं जवाब देती हूँ, और मुझे समझने मे देर नही लगती कि यह निगम की छोटी बेटी है। बडी बहिन से शक्ल मिलती है। मैं दुविधा मे हो जाती हूँ।

वह अन्दर जाकर फौरन लौटती है और कहती है—आइये! लेकिन अबकी उसके चेहरे पर अजीब-सी घबराहट और शायद डर होता है।

मैं कमरे मे घुसते ही कहती हूँ—कैसी तबीयत है?

खाट पर लेटा हुआ राजेश बैठने की कोशिश करता हुआ कहता है—अभी बुखार नहीं उतरा, वैसे कल से कम है।

—यह निगम साहब की छोटी बेटी है—सुलभा। मेरा हाल पूछने आई थी। राजेश दीवार के सहारे तकिया लगाकर बैठता है। आप खड़ी है, बैठिये ना।

इस बीच वह लडकी मुझे हाथ जोडकर नमस्ते कर चुकी है, मैं बैठ जाती हूँ।

—ठड से बुखार आया था?

—नही! समझ में नही आया कैसे आ गया। दो दिन तो इस कदर रहा कि होश नही था। आवाज मे, चेहरे पर, कमजोरी साफ दिखती है। दाढी की कलामी ने कैसा कर दिया है! मैं पूछती हूँ—अकेले तपते रहे

होंगे ?

—दोस्त ने परसों आधी छुट्टी ले ली थी। उसका कमरा अन्दर है।

कमरे की बात होते ही मैं एक निगाह में इस कमरे को देखती हूँ—थोडा-सा सामान, लेकिन हर चीज अच्छे ढग से, सुरुचि के साथ। सामने की अलमारी में दो खानों में किताबें। उन्ही के आगे डिकोरेशन पीस। एक तरफ मेज पर किताबें, कागज, कलमदान, लाल रंग का झुका हुआ टेबिल लैम्प। सुलभा मेज का सहारा लिए चुप खडी है।

मैं उसे सहज करने के लिए कहती हूँ—इधर बैठ जाओ, खाट पर। खडी क्यो हो।

जी, ठीक हूँ—वह शर्माई हुई-सी कहती है। राजेश दोहराता है, बैठ जाओ और वह सिकुडी-सी बैठ जाती है एक सिरे पर।

मैंने निगम साहब से तुम्हारा हाल पूछा था। कहा भी था, मौका लगा तो जाऊँगी। आफिस से जल्दी निकल ली, तो चली आई।

—मकान को पाने में मुश्किल हुई होगी ? राजेश ने ऊपर खिसक कर तकिये को ठीक से दबाया।

—खास दिक्कत नही पडी, एक जगह पूछना पडा। दवा किसकी ले रहे हो ?

—यही पास की गली के नुक्कड पर डाक्टर है, उसे दिखा दिया था। टेबलेट और मिक्चर दिया था। कोई इन्फेक्शन हवा चली है—बुखार-ही-बुखार फैल रहा है। फिर उसने सुलभा को देखते हुए कहा - चाय बना लो, दुकान से कुछ ले आओ, पैसे पैंट में पडे हैं।

—नहीं-नहीं झझट मत करो। मैं कहती हूँ। लेकिन सुलभा खडी हो जाती है। राजेश मुस्कराता हुआ कहता है—मुझे भी डाक्टर ने बताया है। और यह भी तो पियेगी।

—इसमें तो...सुलभा आधा वाक्य पाती है। राजेश को खयाल आता है पैंट में पैसे नहीं है—सॉरी, उस सूटकेस में है निकाल लो।

वह सूटकेस में से नोट निकालकर, चली जाती है। बाहर का दर-वाजा बद करती है।

—आपको देखकर सिटपिटा गई। राजेश मुस्कराता है।

—तुम नहीं घबराये ? मैं भी मुस्कराती हूँ।

—नहीं, लेकिन ताज्जुब हुआ।

—लडकी तो अच्छी है। मैं हँसती हूँ।

—आपने क्या सोचा था मैं चाहे जैसी को पसन्द करूँगा।

—काफी बेशर्म हो गए हो। मैं छेडती हूँ।

—आपने छूट दी। वरना तो मेरी हालत खराब हो जाती आपके आते ही।

—चलते-चलते ख्याल आया था कहीं यह न हो। वही हुआ।

—मैं बिना बात के पकड़ा गया ना? राजेश ने खाट की पट्टी पर दोनों हाथ टेक कर अपने को फिर ऊपर खिसकाया, वह नीचे खिसक गया था।

—चलो, मेरे यहाँ चलो! बुखार उतर जाये तो आ जाना। मेरे मुँह से निकल जाता है।

—जी! वह आश्चर्य से देखता है।

—एतराज है? मैं कहती हूँ।

—नहीं, लेकिन' 'वह रुक जाता है।

—लेकिन क्या?

—आप आ गईं, यह बड़ी बात नहीं है? यह कमरा देखिये! और अपना फ्लैट!

—राजेश! मैं तिलमिला जाती हूँ। लेकिन फौरन अपने को दबाती हूँ।

—गलती हुई। माफ कर दीजिये। वह आँखें झुका लेता है।

नहीं, शायद मुझसे ही गलती हुई। एक सहजता जो अचानक उठी थी बैठ जाती है। आप नाराज हो गई। देखिये आप...उसकी आवाज रुक जाती है। उसका गला भर जाता है। वह बहुत ही कातर दृष्टि से देखता है।

मैं कहती हूँ— कोई बात नहीं, परेशान मत होओ। मैंने तो वैसे ही कह दिया था। मुझे नहीं पता कि मेरी आँखें झलझला आती हैं। दरवाजा खुलने की आवाज से मैं एकदम सँभलती हूँ। राजेश भी अपने चेहरे

पर हाथ फेरता है कि वह नॉर्मल हो जाए। सुलभा कमरे में आने के बजाय अन्दर जाती है। स्टोव जलाने की आवाज होती है।

मुझे ताज्जुब होता है कि आदमी जरा-जरा-सी देर में इस तरह कैसे कटता-जुड़ता है?

राजेश दोबारा कहता है—मैं बहुत असभ्य हूँ, देखिए आपका दिल दुखा दिया। आप अभी तक माफ नही कर रही है। मुझे कितनी याद आई आपकी, बुखार मे, सोचता रहा, काश, आपके पास, आपकी गोदी मे सिर रखे लेटा होता, आप सिर दबाती—इतना दर्द था कि आँख जल रही थी।

—और जब मैंने कहा तो कैसा बढ़िया जवाब दिया।

—देखिये मैं अब रो दूँगा। फिर राजेश को पता नही क्या सूझा वह अपनी जगह से,खिसका खाट पर लेट गया और ज़िद-सा करता हुआ बोला—कुर्सी खिसका कर नज़दीक ले आइये। मेरे सिर पर हाथ फेर दीजिए, मैं अकेला-अकेला घुट गया हूँ।

मैं कुर्सी आगे बढ़ाती हूँ—उसके सिरहाने तक। उसने आँखें बंद कर ली है। मैं उसके बालो पर हाथ फेर रही हूँ। एकटक उसको देख रही हूँ। एक हिलोर मुझमे उठती है, मैं उसके माथे को चूम लेती हूँ।

उसी वक्त सुलभा कमरे मे ट्रे लिए हुए कदम रखती है। मै सयमित होती हूँ। पता नही सुलभा ने मुझे देखा या नही। राजेश उसी तरह से आँख बद किये पड़ा है। मैं उसी तरह से बालो को सहलाती हूँ। सुलभा मेज पर जगह करके ट्रे रखती है। वह राजेश को देख रही है।

अचानक राजेश के मुँह से निकलता है—मम्मी! मम्मी! और वह मेरा हाथ कलाई से पकड लेता है। मैं रोम-रोम से सिहर जाती हूँ।

—राजेश! राजेश!! मैं दूसरे हाथ मे उसके गाल को थपथपाती हूँ। वह आँख खोलता है जैसे सो रहा था।

—हूँ। वह मुझे देखता है।

मैं उसको पुचकारती हूँ—क्या बात है? झपकी आ गई थी?

—हाँ।

—उठो, चाय पियो।

वह उठता है। सुलभा कप पकडाती है। मेरी कुर्सी के पास स्टूल रख

कर उस पर प्लेट रख देती है, ..मिठाई और दालमोट !

—तुम भी बैठ जाओ ! वह बैठ जाती है।

—जरा-सी दालमोट दीजिये ! राजेश कहता है।

—डॉक्टर ने मना करा है, ना। सुलभा एकदम बोल उठती है, पर फौरन शर्मा जाती है। मैं मुस्करा उठती हूँ।

—नहीं मिलेगी। मैं कहती हूँ। जैसे सुलभा का पक्ष लेती हूँ।

बहुत अच्छा लगता है। ऐसा लगता है कि मैं एक साथ बेटे-बहू वाली हो गई हूँ। मैं दोनों को देखती रहती हूँ। यह किसी तस्वीर-सा उभरता है और मेरे गर्दन हिलाने से लम्हे भर में गायब हो जाती है।

—तुम बोलती नहीं हो ? मैं सुलभा से कहती हूँ।

—यह इतना बोलती है कि कान के कीड़े झाड़ देती है। राजेश कहता है। वह मुझे काफी स्वस्थ्य लगता है।

—तुम से पूछा था क्या ?

सुलभा सिर नीचा किए चाय पीती है। कहती है—आप यह नहीं खा रही हैं।

—तुम खाओ ! मैं भी बर्फी का छोटा टुकड़ा मुँह में रख लेती हूँ। फिर कहती हूँ—राजेश ठीक हो जाओ, तो एक दिन इसको भी घर लाना। सुलभा मुझे देखती है।

—हाँ, मैं तुम्हारे लिए कह रही हूँ। निगम बाबू से कह दूंगी। अपनी बड़ी बहिन को भी ले आना।

—निगम साहब को भी ? राजेश मजाक करता है।

—तो तुम और वह आ जाना। इनको मत लाना। अभी बखा हो गया था।

—आप नाराज जो हो गई थी। वह जवाब देता है।

मैं थोड़ी देर तक बैठती हूँ। फिर राजेश ने कहकर कि अगर परसों दफ्तर नहीं आए, तो मैं आऊँगी देखने, चली आती हूँ।

आखिर मैं हूँ क्या, मेरी समझ में ही नहीं आता। जरा-सी देर के लिए अपनापन उभरता है, रिश्ता जुड़ता है, उसके साथ दूसरी सुखी तस्वीरें उभरती है, फिर जैसे लगता है वह तस्वीरें मेरी नहीं हैं, दूसरों की

हैं—मेरे लिए नहीं दूसरों के लिए है। और साथ में ऐसा लगता है कि किसी बस्ती के बीच कभी सूखा, कभी चलता हुआ फव्वारा हूँ।

रात काफी देर तक जागती रही, बल्कि अगर यूँ कहूँ कि नींद आई ही नहीं तो ज्यादा ठीक होगा। दिमाग ज्यादा परेशान था, तो पहले तो यूँ ही किताब पढ़ती रही, फिर थोड़ी-सी जिन लेकर लिखने बैठ गई। लिखती रही। जब थक गई तो पलँग पर लेट गई।

अखबार की उस खबर को जिसने यका-यक उनका पता दे दिया, ऑफिस में तो सभी गई, लेकिन क्या वह इतनी-सी असर वाली थी? मैंने सोचा कि राजेश को लेकर मेरा उस हद तक भावुक हो जाना हो सकता है उस खबर की वजह से हो। घर आई, आराम से नहाई-धोई, ताजी हुई, खाना खाया, लेकिन पार्वती के जाने के बाद जैसे ही अकेली हुई, वह खबर फिर होश में आ गई। पता नहीं कितने-कितने खयाल आते रहे। ऐसा लगता है कि मैंने चाहे कितनी तरह से अपने को भरा हो, चाहे कितनी तरह से दौड़कर, बँट कर, बिखर कर पिछले वर्षों को काटा हो, लेकिन उनकी खाली जगह ज्यों-की-त्यों मौजूद है।

मेरे दफ्तर के कलमदान में एक खूबसूरत कलम लगा हुआ है। उसमें कोई द्रव्य भरा है। उस द्रव्य के बीच में एक बुलबुला है—हवा का खाली बुलबुला। वह सारे कलम की खूबसूरती भी है, लेकिन है तो खाली। मैं अक्सर सोचती हूँ कि मैं भी वैसी-ही कलम हूँ। भरी भी हूँ और खाली भी।

हालाँकि उस खबर ने सिर्फ इतना बताया कि के. सी. सहाय नाम के व्यक्ति, जो कभी मेरे पति थे, फलानी जगह इन्कमटैक्स ऑफिसर हैं, लेकिन ऐसा तो मैंने भी नहीं माना था कि रहे नहीं। मैं रात में सोचती रही, मुझसे हटने के बाद क्या पता उन्होंने दूसरी शादी कर ली हो, और अब तो पूरी गृहस्थी होगी। कितनी उम्र मैंने ले ली, किस तरह से मैं मम्मी के मरने के बाद डैडी को साथ नहीं रख सकी और अकेली जिन्दगी को चुनौती बनाकर खड़ी हो गई। कितना जबर्दस्त जोश था और अपने को उनके बराबर लाने का कितना आवेश से भरा गुस्सा। अब पीछे देखती तो मुझे कुछ अजीब-सा और ताज्जुब में डालने वाला लगता है।

मैं सोचती हूँ शायद मैं उस वक्त सिर्फ अह थी और चैलेंज थी, उनका प्यार थी, और उनकी घृणा थी। कभी-कभी आज भी वही तेज़ी जागती है, जब कभी किसी के द्वारा बाजी फेंक दी जाती है। लेकिन अब बहुत कम। यूँ पिछली कम्पनी क्यों छोड़ती? इसीलिए ना कि मैनेजिंग डाइरेक्टर से तना-तनी हो गई थी, और उसने कुछ इस तरह के शब्द कह दिये थे जो मुझे चुभ गये थे। मैंने दो-टूक जवाब दिया था—मिस्टर मलिक, आपको बिहेव करना सीखना चाहिए, मैं आपके दफ़्तर की क्लर्क नहीं हूँ।

मलिक बनिया था। वह जानता था मेरा जाना उसको नुकसान देगा। उसने तरह-तरह से मेरे पास पहुँच करवाई कि मैं अपनी नौकरी छोड़ने के निर्णय को बदल दूँ। लेकिन सीमा ने जो निश्चय कर लिया,उससे पीछे वह कभी नहीं लौटी। अगर उसे लौटना ही आता तो क्या वह महज़ इतनी-सी बात पर कि उसके और सहाय के बीच में ताल-मेल नहीं बैठ रहा था, वह उनसे अलग हो जाती।

रात-भर इसी तरह के खयाल आते रहे, कभी मैं अपने में गलतियाँ देखती रही, कभी सहाय में। और नतीजा यही निकाल पाई कि जैसा भी हुआ, हो चुका। अगर दूध बिखर भी गया, चाहे मेरी ठोकर से या उनकी ठोकर से, लेकिन बिखर तो गया। अब उसके लिए अफ़सोस क्या करना? वह अपनी जिंदगी जियें, मैं अपनी जियूँ।

निश्चय की सूरत यही हो सकती थी लेकिन रात-भर की उठा-पटक ने मुझे तोड़-सा दिया, जिसकी शिथिलता अब तक है। एक जी कर रहा है कि लस्त-पस्त पड़ी रहूँ। कहीं नहीं जाऊँ। कुछ नहीं करूँ। कतई नहीं सोचूँ। कोई किताब लूँ,उसमें डूब जाऊँ। पार्वती से कहूँ तू कॉफी बनाये जा और मैं पिये जाऊँ। या रम को रोज से ज्यादा पी लूँ और बेखबर होकर पड़ी रहूँ। लगता है पीछे जो कुछ भी किया-पाया, पागलपन था। कितने कितने तरह के परिचित हुए, मित्र बने, शुभचिंतक बने और बहकाने-फुसलाने वाले बने। बार-बार मैंने दूसरों को अपनी ख्वाहिशों, और कायदों के लिए इस्तेमाल किया और खुद भी हुई। लेकिन आखिर में हमेशा यही लगा कि मैं खाली हूँ, खाली रहने की नियति लेकर आई हूँ।

मैं सोचती हूँ निरर्थकता की इस अति पर पहुँचकर ही व्यक्ति आत्म-

हत्या करता है। कितनी ही सम्पन्न-से-सम्पन्न और मशहूर औरतों ने ऐसे अहसास के बाद गोलियाँ निगल ली हैं और अपने को ख़त्म कर लिया है।

लेकिन मैंने हमेशा दूसरे रास्ते को अपनाया है। जब भी मुझे लगा कि मैं अकेली हूँ, मैं दूसरों की तरफ़ भागी हूँ और उस अकेलेपन को जान-जान कर चिटकाया है। मैं इस वक़्त भी लस्त पड़े रहने, या नशे में ख़ुद को खोदने, या लगातार कॉफ़ी-कॉफ़ी पीने की इच्छा को ज़्यादा महत्त्व नहीं दे सकती। काफ़ी है कि इतनी हताशा को इतनी देर तक अपने को दबा लेने दिया। मैं राजेश के यहाँ जा सकती हूँ, मिसेज कीर्ति के यहाँ जाना है ही, घोष सहाब के यहाँ ही चली जाऊँ। मिथा को ही बुला लूँ, इंग्लिश पिक्चर ही चली जाऊँ, कुछ नहीं तो टैक्सी लेकर घूमती रहूँ जब तक मिसेज कीर्ति के यहाँ पहुँचने का टाइम न हो जाए। पार्वती को बुला सकती हूँ जो नाश्ता बना रही है और अभी शिकायत करेगी—बीबी जी, आप अभी तक नहीं नहाईं। वह भी अपनी तरह का अधिकार और अपनत्व दिखाती है जैसे वह मुझे पाल-पोस कर अधेड़ से बुढ़ापे तक पहुँचा रही है। ज़िन्दगी का किन्हीं पलों में बेमतलब लगना एक बात होती है, इस बेमतलबपन को ओढ़े रहना दूसरी बात। अपने को बाँटते रहना बिल्कुल तीसरी बात होती है। यही शायद हताशा से बचाती है।

अख़बार वाला फिर बदतमीज़ी करता है—नीचे से खिड़की में अख़बार फेंकता है। मैं रोज़ की तरह जल्दी में अख़बार नहीं उठाती, बल्कि उसे पड़े रहने देना चाहती हूँ। जब सब कुछ पढ़ा-सा लग रहा हो, तो उस लिखी-छपी दुनिया को क्या उठाना।

मैं अपने से ही पूछती हूँ—क्यों? क्या अख़बार से भी डर लगने लगा?

और अपने आप जवाब ढूँढ निकालती हूँ—अख़बार में डरने की क्या बात है? क्या रोज़-रोज़ उन्हीं की ख़बर आएगी। ऐसे आती तो क्या इतने सालों बाद जानकारी के तौर पर मुझे सिर्फ़ इतना मालूम होता कि वह उस जगह है। मैं अख़बार को उठा लेती हूँ जैसे बहुत बड़ी हिम्मत को दिखा रही हूँ।

लेकिन किसको?

मैं रबर-बैंड हटाती हूँ और अखबार पढने लगती हूँ। वही तरीका। पहले सुर्खियाँ। मेगजीन सेक्शन। पिक्चर हाउस में चलने वाली फिल्में।

—बीबी जी, नाश्ता तैयार है, आप अभी तक नहीं नहाईं। पार्वती आकर कहती है। मैं हँस देती हूँ।

—हँस क्यों रही हैं बीबी जी? वह पूछती है।

मैं उसे देखती हूँ और कहती हूँ—मैं जानती थी, तू यही कहेगी आकर आजा आज फिर गप्प करें।

—रहने दीजिए बीबी जी, उस दिन आप भी दुःखी हुईं, और मैं भी दिन भर पता नहीं कैसी-सी रही। पार्वती बोली।

—अच्छा आज यह बताओ कि तेरा आदमी तुझे प्यार किस-किस तरह करता है?

—कैसी बात करती है बीबी जी! पार्वती शर्माकर भाग जाती है, जैसे कल की ब्याही हो।

लेकिन मुझे अपने पर लगता है कि मैं यह पार्वती से पूछ रही थी या अपने से।

मैं अखबार छोडकर खडी हो जाती हूँ। तौलिया और साडी लेकर बाथरूम में चली जाती हूँ। फव्वारे को खोलकर खूब नहाती हूँ, खूब नहाती हूँ। इतना साबुन बदन पर मलती हूँ कि उसकी खुश्बू हिस्से-हिस्से में बस जाए। कभी-कभी अपनी देह ही कितनी आत्म-तुष्टि देती है।

मैं कपडे बदलकर निकलती हूँ और हमेशा की तरह ड्रेसिंग टेबिल के सामने बैठती हूँ। मैं बाल काढ रही हूँ लेकिन नजर अपने प्रतिबिम्ब को एकटक देख रही है। अपने चेहरे को जाँचने के लिए भी जैसे खास मानसिकता और फुर्सत होनी जरूरी हो। मैं देख रही हूँ कि हालाँकि अब भी यह चेहरा चमक लिए हुए है, साफ-साफ उम्र नहीं ठहरी है, फिर भी कुछ ऐसा है जो मौजूद नहीं है। वह मिसेज कौल के चेहरे पर है, वह मिसेज नागपाल के चेहरे पर नहीं है, वह पार्वती के चेहरे पर है। लगता है कि इस चेहरे में कोई तरलता उतर गई है।

मैं जैसे ही बेस जमाकर पाउडर लगाती हूँ चेहरा दूसरा-सा होने लगता है। मैं ब्रो को बनाती हूँ, नेचुरल लिपस्टिक लगाती हूँ, नेचुरल

नाखून की पॉलिस से नाखून रंगती हूँ, माथे पर नारंगी-सी बिन्दी बैठाती हूँ। जूड़ा बनाती हूँ। तभी एकदम एक सवाल उठता है—मान लो सहाय से किसी मौके पर सामना हो जाए तो?

सामना! जैसे मेरी बे-स्वर की आवाज 'सामने' शब्द को आश्चर्य के साथ दोहराती है। मैं बैठे-बैठे थरथरा जाती हूँ। लगता है कि वह पीछे आकर खड़े हो गये है। मैं शीशे मे देखती हूँ, सिर्फ मेरा प्रतिबिम्ब है लेकिन महसूस हो रहा है कि वह मेरे पीछे खड़े है और हाथ बढ़ाने को तैयार है।

मैं हड़बड़ा कर खड़ी हो जाती हूँ—नहीं। मेरे मुँह से जोरो से निकल जाता है। पार्वती रसोई से पूछती है—बीबी जी पुकारा?

मैं कहती हूँ—नही।

उधर कालबेल बज रही है। कोई आया है।

मैं दरवाजा खोलती हूँ—मिश्रा साहब खड़े है।

—आइये!

—इतनी देर से काल-बेल बजा रहा हूँ। क्या किसी काम मे थी?

—कितनी देर से बजा रहे है, अभी तो बजायी थी, मैं आ गई।

—कैसी हो रही है?

—कैसी भी तो नही। बैठिए! मैं कॉफी के लिए कहकर आती हूँ।

—आप तो बैठने भी नही देती इससे पहले कॉफी का आर्डर देती है। मिश्रा सोफे पर बैठ जाते है। अखबार उठाते हैं।

—अभी आई। मुझे भी तो पीनी है। मैं अन्दर आती हूँ। पहले शीशे के सामने आकर अपने को देखती हूँ। ऐसी क्या तब्दीली है कि मिश्रा साहब ने टोका। लेकिन सिर्फ एक झलक देखकर हट जाती हूँ—हालांकि फर्क नही पहचान पाती। मैं रसोई के दरवाजे पर खड़ी होकर कहती हूँ—पार्वती कॉफी बनाकर नाश्ता ले आओ। मिश्रा साहब भी है। मैं अपने को सँभालती हूँ। आकर सामने बैठ जाती हूँ।

—तैयार है, क्या पिक्चर जाने का प्रोग्राम है? वह पूछते है। अखबार को वैसे ही हाथ में ले रखा है।

—हाँ जाना तो है, लेकिन एक बजे के करीब।

मिश्रा साहब घड़ी देखते है, अभी तो साढ़े दस बजे है। मैने सोचा

अगर खाली होगी तो इसलिए पिक्चर देख आयेंगे।

—आज तो जा नहीं पाऊँगी। वहाँ नहीं पहुँची तो शिकायत खड़ी-की-खड़ी रह जायेगी। बहुत दबाव के साथ कहा है।

—किसके यहाँ जाना है? मिश्रा पूछते हैं। उस दिन से वह बहुत सतर्क हो गये हैं जिस दिन उनके कहने का सीमा बुरा मान गई थी। घोष साहब का नाम वह जानकर नहीं लेते।

—आप जानते नहीं हैं। एक हैं मिसेज कीर्ति, किन्हीं कैप्टेन की मिसेज़।

—ऐसा नहीं हो सकता कि फिल्म भी देख लें और आप वहाँ भी हो आएँ। मैं मुस्करा कर पूछती हूँ—क्या बात है, बिल्कुल तय करके आए थे। कल रिंग क्यों नहीं कर लिया?

—एक बार मिलाया, एंगेज था। दूसरी बार मिलाया तो जवाब मिला आप गई। लेकिन उस वक्त पिक्चर के लिए नहीं मिलाया था। शाम किसी रेस्त्राँ में या बार में जाने की सोची थी। बहुत दिन हो गये ना, साथ गये। उन्होंने मुझे देखते हुए कहा। उनका देखना मेरा पहचाना हुआ है।

—मिश्रा साहब, कल एक अनहोनी-सी बात हुई। वैसे तो कोई खास बात नहीं थी, फिर भी ऐसा लगा कि उसने अहमियत ले ली। मेरे मुँह से निकल तो गया, लेकिन फ़ौरन यह आया कि इससे क्या ज़रूरत है कहने की।

—क्या अनहोनी हुई? उन्होंने अखबार को एक तरफ़ रखते हुए पूछा।

पार्वती नाश्ते की ट्रे ले आई। मेज पर रख दी।

—लीजिये, शुरू करिये! मैंने पोट में मग में कॉफ़ी उड़ेलते हुए कहा—खाना नहीं बनाना है, ध्यान है। मैं पार्वती से कहती हूँ।

—जी! पार्वती जवाब देती है। चली जाती है।

—हाँ, क्या अनहोनी हुई? मिश्रा कॉफ़ी सिप करते हुए पूछते हैं।

मैं छिपा ले जाती हूँ। कहती हूँ—कल मेरे एक इतने पुराने परिचित मिले कि दरअसल मैं पहचान ही नहीं सकी। और मजे की बात यह

नाश्ता खत्म करने के बाद मिश्रा साहब पैंट में से रूमाल निकालकर अपना मुँह पोंछते हैं, फिर अखबार उठा लेते है।

मैं पूछती हूँ—अब क्या किया जाय ?

आप बोलिए, क्या मर्जी है ? मिश्रा साहब बिल्कुल ठंडे हुए बोलते हैं।

मैं मन-ही-मन हँसती हूँ। लेकिन ऊपर से अनजान बनी पूछती हूँ—क्या हुआ, आप सीरियस क्यों हो गए।

—नहीं, तो ! वह अखबार से आँखें नहीं उठाते है।

—ऊब गए ? वह मेरा परिचित ठीक कहता था ना ? मैं छेड़ती हूँ।

मिश्रा साहब देखते है, फिर कहते है—कभी-कभी तुम बड़ी मर्सलेस हो जाती हो। सारे मूड को खत्म कर देती हो।

—अगर ऐसा है तो चलिये, अभी तो पिक्चर पकड सकते है। मैं कहती हूँ।

—जब घर से आया था तब कितने बढ़िया मूड में था। सुबह से सोच रहा था साथ-साथ देखेंगे।

—कभी-कभी आप भी अठ्ठाइस बरस के लगते हैं मिश्रा साहब। सही है ना ? मैं मुस्कराती हूँ। बल्कि उनके मूड पर मीठा-सा व्यग्य करती हूँ।

—हाँ, जब मिश्रा साहब कहते नहीं, हिचककर वाक्य को अधूरा छोड़ देते हैं।

मैं खड़ी होती हूँ।—चलिए, चलें पिक्चर! मैं भी बोर हो गई। जरा साड़ी बदल आऊँ।

मैं अन्दर आती हूँ, अलमारी में से साड़ी निकाल लेती हूँ। पहनती हूँ। एक बार ड्रेसिंग टेबुल पर बैठकर अपने को रि-टच करती हूँ। अपना पर्स कंधे पर डाल कर धूप का चश्मा लेती हूँ। पार्वती से कहती हूँ काम खत्म करके चली जाना मैं शाम तक आऊँगी।

—चलिये ! या अखबार ही पढ़ते रहिएगा।

मिश्रा साहब खड़े हो जाते है।

—इसी मूड से चलियेगा ! मैं उनसे कहती हूँ।

वह एक बार मुझे देखते हैं। उनके होंठो पर मुस्कराहट आती है,

और आँखों मे चमक, जिसे मै पहचानती हूँ ! जैसे मेरा इतना कहना उनकी आँखों की चमक की चाभी हो।

मैं उनके बगल मे, आगे की सीट पर बैठ जाती हूँ। वह कार स्टार्ट करते है।

एक सवाल उछल कर आता है—मै क्या हूँ ?

लेकिन मैं इस सवाल को दबा देती हूँ। मिश्रा साहब से पूछती हूँ—क्या सोच रहे हैं। वह हँसकर जवाब देते है, पिक्चर देखने का मूड बना रहा हूँ।

मैं भी एक मुक्त हँसी हँसना चाहती हूँ, लेकिन सिर्फ कसी हुई-सी मुस्कराहट होठो पर आती है। मै शीशे के पार सामने की सड़क को देखती रहती हूँ—कितनी लम्बी है, जबकि कार तेजी से उसे पीछे छोड़ती जा रही है। पिक्चर देखने का कार्यक्रम पूरा हो जाता है। मिश्रा साहब को तृप्ति मिलती है मेरे साथ फिल्म देखकर। शायद मैं भी कहीं अन्दर से बहल गई हूँ। उम्र के एक दिन का एक बड़ा आठवाँ हिस्सा यानी तीन घण्टों को बिता दिया जाता है। किसकी तृप्ति, किसका बहलना। लेकिन यह अनावश्यक गणित क्यों ?

मैं टैक्सी को छोड़कर मिसेज कीर्ति के बगले के सामने पहुँचती हूँ। फाटक खोलकर दोनों तरफ के पेड़ो के बीच से पोर्टिको में घुसती हूँ फिर बरामदे में खड़ी होती हूँ। देखती हूँ कि केन की कुर्सियाँ पड़ी है, गमलों की कतार दोनों तरफ है, और पुरानी मूर्तियाँ है। कोने से झड़ा हुआ एक पत्थर, तकरीबन डेढ़ मीटर लम्बा, जिस पर औरत की ऐसी मूर्ति उकेरी हुई है, जैसी अजन्ता, एलोरा वगैरह मे मिलती है। मैं पलभर के लिये उस मूर्ति को देखने लगती हूँ—वाकई उसकी कला आकर्षक है।

देखने के बाद काल-बेल बजाती हूँ।

—आई ! मिसेज कीर्ति की आवाज है। वह आती है। —आइये, मैं जोरों से इन्तजार कर रही थी।

—जोरों से ? मैं हँसती हूँ।

—और क्या, जोरों से!आप से तो इतनी शिकायत करनी है कि बस! मैं मिसेज कीर्ति की खुशी और चंचलता दोनों को देखती हूँ। मेरा खुद

होना स्वाभाविक है।

इतने में दो बच्चे आते है—गुड्डे-गुड़ियाँ से, एक साथ बोलते हैं—आन्टीजी नमस्ते!

मैं झुककर दोनों के गाल पर प्यार बैठा देती हूँ।

—बहुत शरीर है—मिसेज कीर्ति कहती हैं।

—और तुम? मैं आँखों में हँसती हूँ।

वह शर्मा जाती है।

—बैठिये, आप तो खड़ी हैं।

मैं बैठती हूँ। छोटी बच्ची मेरी पास, मुझसे चिपट कर खड़ी हो जाती है। मैं उसे उठाकर अपनी गोदी में बैठा लेती हूँ—तुम्हारा नाम क्या है?

नीरा—वह मेरा मुँह देखती हुई जवाब देती है। उसको गोदी में बैठा देखकर भाई भी मेरे पास आ जाता है।

मैं पूछती हूँ—आपका नाम!

वह जवाब देता है—माई नेम इज अमिताभ।

—अमिताभ! इतना अच्छा नाम! किस स्टैंडर्ड में पढ़ते हो? मैं उसकी ठोडी पकड़कर पूछती हूँ।

—फोर्थ स्टैंडर्ड में। आन्टीजी आप पहली बार आई हैं ना?

—और क्या। पूछो, पहले क्यों नहीं आई? कीर्ति उकसाती है। मैं उसकी शरारत को देखती हूँ।

नीरा पूछती है—आन्टी, आप इत्ते दिनों में क्यों आई?

—तुम्हारी मम्मी ने बुलाया नहीं।

—जी, मैंने नहीं बुलाया। मैंने तो उसी दिन आप से कहा था, आइयेगा। आपको पता भी लिखवा दिया था। यह क्यों नहीं कहतीं आप की इच्छा नहीं हुई। कीर्ति ने शिकायत उड़ेल दी। वह सामने बैठ गई।

—मैं यह कह सकती हूँ कि तुम्हारी याद जरूर की। मैं कीर्ति के उसी भोले चेहरे को देखती हुई कहती हूँ जो मुझे पहली बार भा गया था—पता लिखवाने की बात याद तो आती है, पर वह पुर्जा पता नहीं कब इधर-उधर हो गया था।

—रहने दीजिये, याद करतीं, तो आ जाती, या मुझे बुला लेती। याद

इतने का दावा तो मैं कर सकती हूँ। वह जैसे गर्व से बोली।

—अच्छा यूँ नहीं: सारे दावे तुम्हारे सही। कैप्टेन साहब कब आते हैं ? मैं पूछती हूँ।

—आकर गए। आज कोई मीटिंग-वीटिंग है। अब तो शाम को ही आएँगे। आपसे मिलना चाहते थे।

—मुझ से ? यानी तुमने उनसे भी कुछ-न-कुछ कहा। बच्चों को तो समझा ही रखा है।

—उतरो, आन्टीजी थक जाएँगी। अमिताभ नीरा से कहता है। जैसे वह नीरा का बैठे रहना सह नहीं पा रहा हो।

—नहीं, उतरेंगे ! तू इतना बड़ा होकर गोदी में बैठेगा !

मैं हँसती हूँ।

अमिताभ मेरे हाथ को हिलाकर कहता है—आन्टीजी, इसे उतार दीजिये, यह बड़ी शैतान है और नीरा मेरी गर्दन को घेर लेती है दोनों बाँहों से—नहीं उतारेंगी, जा। जब देखो, तो लड़ता है।

मैं एक बाँह में नीरा को लपेट लेती हूँ, एक में अमिताभ को। मेरी पलकें मेरे वश में न रहकर आँखों को मूँद देती हैं। मैं जैसे किसी खुशी के समुद्र में डूब जाती हूँ। ऐसा लगता है कि कोई सीतार अन्दर बज रहा है। राग मेरे रोम-रोम को सिक्त करता जा रहा है।

शायद आरती उतारती-सी मैं अपने उस आनन्द में विभोर हो रही हूँ, जो मुझ में है तो, लेकिन पता नहीं किस जगह ठिठुरा-सा छिपकर बैठा रहता है।

पता नहीं कितने पल मैं इस प्यास को तृप्त करती रहती हूँ। और जब आँख खोलती हूँ तो ऐसा लगता है जैसे सपना देखते-देखती जागी हूँ। यह सब नामालूमतौर पर पलभर में हो जाता है।

कीर्ति मुझे सम्मोहित भाव से देख रही है—मैं पाती हूँ।

मैं चौंकती हूँ—सॉरी मिसेज़ कीर्ति। जैसे फिर वास्तविकता में आ गई हूँ।

कितनी उदात्त और चेष्ट लग रही थी आप ! कीर्ति बोलती है। उस-की आँखों में अब भी स्नेह-सा छलक रहा है।

—बच्चे बहुत प्यारे है। मैं कहती हूँ। तुम बहुत भाग्यशाली हो। मैं और जोडती हूँ। मेरा मन कहता है—ईश्वर, अगर तू है, तो इनको हमेशा सुखी रखना।

शायद यह भाव मेरी आँखों मे भी उभर आया है।

एक अनुभूति कितने से क्षण के लिये होती है, लेकिन सारे जिस्म और मन को आपूट तोप दे देती है।

— उतारिये न आन्टी जी इसे,आपके पैर दु खने लगे होंगे। अमिताभ कहता है। और नीरा की गल-बाँह छुडता है।

कीर्ति भी बोल उठती है—नीरा, उतरो अब। आन्टीजी के लिये खाने को नही कहोगी। वह भूखी होंगी।

—हाँ,हम भी साथ मे खायेंगे। नीरा कहती हुई उतर जाती है। चलो, महाडी से कहें, आन्टीजी का खाना लगाए। नीरा, अमिताभ का हाथ पकडकर घसीटती है। अमिताभ मुझे देखता हुआ, मुस्कराता हुआ, नीरा के साथ अन्दर जाता है। मैं हँस देती हूँ। कीर्ति भी हँसती है। फिर, जैसे थोडी देर के लिए, दोनो के पास बात करने को कुछ भी नही रहता।

मिसेज कीर्ति कहती हैं—आप जरा बैठेंगी, मैं अन्दर खाने का इन्त-जाम देख आऊँ।

—क्या खाना जरूरी है? मैं वैसे ही पूछती हूँ।

वाह! मैंने तो इसीलिए अभी तक नही खाया। कीर्ति खडी हो जाती है। आप यह देखिये ना, मैं अभी आई। वह दीवार से सटे रेक के पास जाती है और दो-तीन मैगजीन लाकर देती है—अंग्रेजी, हिन्दी। वह पर्दे को हटाते हुए अन्दर चली जाती है।

मैं मैगजीन नही ड्राइगरूम देखती हूँ जिसकी सजावट मे एक अजीब-सी गम्भीरता है। जैसे बाहर बरामदे मे मूर्तियाँ थी, यहाँ शख, सीप, या पुराने जमाने के मीनाकारी वाले तश्त है। कोने की तरफ रखी मेज पर —जो खुद गोल और नक्काशी वाली है—उस पर छोटे साइज का गमला रखा है, जिसमे सूखी लकडी अपने प्राकृतिक आकार मे गडी है। उस पूरी शक्ल मे एक आकार बनता है जो दृष्टि को बाँधता है।

मेरी आदत है कि मैं अक्सर ड्राइगरूम के कॉर्निश को देखती हूँ। उस

पर रखा हुआ कलेक्शन घरवाले की रुचि को जाहिर करता है। ठीक बीच में कैप्टेन और मिसेज़ कीर्ति की जोड़े की फोटो फ्रेम में चमक रही है। उसके दोनों तरफ चीनी मिट्टी की औरतें हैं, दोनों किनारे पर वैसी ही चीनी मिट्टी के कछुए, जिनका मुंह इस तरह है जैसे वह उधर से, यह इधर से नीचे उतर आएँगे।

यह सब मैं खड़ी होकर और ड्राइंगरूम में घूम कर देखती हूँ। मैं फिर उदास हो गई हूँ। कोई नहीं कह सकता कि कुछ ही देर पहले मैं उमंग की किस शिखर पर थी। अब शान्त हूं। जिन्दगी कितनी जल्दी अपनी सही जमीन पर आ जाती है। छल तो दिल कर बैठता है, पर क्या वास्तविकता उसे बख्शती है! फौरन उतारकर ककरीली धरातल पर टिका कर देती है। वह कहती है—उड़ना मना है।

मैं हर छोटी चीज को गौर से देखती हूँ—रुक-रुक कर।

मिसेज कीर्ति कपड़ा हाथ में लिये हाथ पोंछती हुई घुसती है—माफ करियेगा आप बोर... लेकिन जब मुझे उस लकड़ीवाले आकार के पास खड़ी देखती है जिसकी मुड़ी-तुड़ी शाखाओं को मैं देख रही होती हूँ, तो वह अटक-सी जाती हैं। मेरे नजदीक आकर कहती है—यह उनकी च्वायस है।

—और तुम्हारी? मैं मुस्करा कर पूछती हूँ।

—मेन्टेल पीस पर रखी हुई वह चीनी गुड़ियाएँ, वे दो कछुए।—कीर्ति उत्साह से कहती है।

मैं कहती हूँ—कैप्टन साहब का टेस्ट बहुत रिफाइन्ड है।

—जी, उनका बस चलता तो किसी खोह-कन्दरा में ठेठ जंगल-कुमारी लाते। हिस्ट्री के स्टूडेन्ट रहे हैं ना। वह व्यंग्य और गर्व के साथ कहती है।

तुम भी तो जंगल-कुमारी से कम नहीं हो। मैं चपत-सी लगाती हूँ उसके गाल पर। कीर्ति शर्मा जाती है।

—सॉरी, याद दिला दी किसी की। मैं कह जाती हूँ। लेकिन क्या मैं मिसेज कीर्ति से कह रही हूँ? शायद अपने से कह रही हूँ।

और कीर्ति कहती है—आप कितनी प्लीजिंग है! मैं जानती थी आप ऐसी ही होंगी। तभी मैंने आपको याद किया, और आप पर गुस्सा भी किया।

—लेकिन मुझे तुम पर गुस्सा नहीं आया। मैंने तो तुम्हें जब भी किया, याद किया। लेकिन क्या मैंने कीर्ति को याद किया? याद तो कीर्ति को ही किया, लेकिन शायद उसको याद करके मैंने अपने को ही याद किया।

कीर्ति कहती है—चलिए, खाना लग चुका है।

—चलो! लगता है कि मैं पहली बार नहीं आई हूँ, कब से आ रही हूं। मैं चलते-चलते कहती हूँ।

मुझे भी तो लगता है, जाने कब से मैं आप से परिचित हूँ—कीर्ति कहती हुई पर्दा हटा देती है।

—ऐसा क्यों होता है? मैं पूछती हूँ।

—इसलिए, कि डाइनिंग टेबिल आ गई होती है, और खाना इन्तज़ार करता होता है कि मैं कब से तुम्हारे स्वागत के लिए तैयार हूँ। कीर्ति खिलखिलाकर हँसती है।

नीरा और अमिताभ, जो पहले से कुर्सी पर जमे है, और मम्मी को हँसता देखकर फुट-फुट हँसने लगते है—सफेद दतुलिया दिखाकर।

मैं भी हँसे बगैर नही रह पाती।

खाना खाने के बाद हम फिर ड्राइंगरूम मे लौट आते है। नीरा और अमिताभ साथ आ गये है।

—तुम लोग खेलो बेटा। मिसेज़ कीर्ति कहती हैं।

—हमे नींद आ रही है। नीरा आंख मलती है।

—मैं अब चलूँ। मैं कहती हूँ

—नहीं! अमिताभ कहता है।

—आराम कर लीजिए ना, कहिये तो दूसरी साडी दे दूं। कीर्ति कहती है।

—नहीं, दूसरी साडी की क्या जरूरत है। मैं कहती हूँ।

—चलिये, बेडरूम मे चलें। कीर्ति नीरा को गोद में ले लेती है।

बेडरूम मे आते हैं। पता नही क्यो एक झिझक-सी होती है, जिसे मैं छिपा जाती हूँ।

अमिताभ कहता है—आन्टी जी, इस पलँग पर। पापा वाले! हम आपके साथ सोएँगे। वह लगभग घसीटकर मुझे उस पलँग तक ले जाता है

और बैठा देता है।

—खूब सिखा-पढ़ा रखा है बच्चों को। मैं कीर्ति पर व्यग्य करती हूँ।

—जी, जैसे मेरे बस मे हो। कीर्ति दूसरे पलँग पर बैठ जाती है।

—लेटो ना, मम्मी। नीरा कहती है।

—आप भी आन्टी जी ! अमिताभ कहता है।

मुझे कैसा-सा लगता है, पर लेट जाती हूँ।

कीर्ति भी लेट गई। जरा-सी भी देर नही होती कि अमिताभ और नीरा दोनो सो जाते है। अमिताभ का हाथ मुझ पर है। जबकि कीर्ति को तरफ मुंह करने के लिए मैने उसकी तरफ पीठ कर रखी है।

—कीर्ति, बचना कितना सहज होता है लेकिन

—मै जानती हूँ,पर सहजता का मारा भी तो नही जाता। मारने पर तो और दुख देती है।

—पर जब चारा न हो तब ? मैं कीर्ति को देखती हूँ।

--तब भी सहजता को बनाये रखना होता है। एक बात बताऊँ सीमा जी !

वह पहली मरतबा मेरा नाम लेती है।—मैं बहुत खुश हूँ। आप देख ही रही है कि मुझे हर चीज मिली हुई है। लेकिन तब भी मुझे लगता है यह सब सपना है, कभी भी खत्म हो सकता है। न भी हो। पर एक अनिश्चित फ्यूचर हमेशा डराता रहता है। यह दो बार लड़ाई मे जा चुके है। वैसे भी ऐसी जगह पर भेज दिए जाते है जहाँ मैं नही जा सकती। सोचिये, उस वक्त मेरा क्या हाल होता होगा। जब तक लौटते नही, भय लगा रहता।

—यह तो है। तुम जैसी की तकलीफें बिलकुल दूसरी तरह की होती है। मेरा ध्यान कीर्ति से हटकर फौजियो की पत्नियो पर जाता है। सब जैसे किसी ईश्वरीय शक्ति पर विश्वास करके अपने पतियो को मौत के नजदीक डाल देती है।

—फिर भी जीना होता है। जब मिलता है तो उसे ज्यादा-से-ज्यादा पूरी तरह जीती हूँ। खोने की सम्भावना को फटकने नही देती।

—हाँ। मैं गहरे सोच मे पड जाती हूँ।

—सीमा जी एक बात पूछूँ ? आप बुरा तो नहीं मानेगी ? मैं उन दिन

मिसेज नागपाल की बातों मे बहुत हिट हुई थी। शायद वह इतनी बेदर्दी से आपको हिट नहीं करती, और मैं आपके बारे में नहीं जान पाती तो, आप की तरफ इस तरह से नहीं खिचती।

—और मैं ईमानदारी से बताऊँ मिसेज कीर्ति, अगर मैं तुम में अपने किसी बीते रूप को नहीं पाती, और तुम्हारे उस दिल को नहीं देख पाती जो अपने ज़रिये तुम्हे दूसरो तक पहुँचाता है, तो मैं भी तुम्हारी तरफ नहीं हो पाती। मैंने उसी दिन जान लिया था कि तुम अच्छी फ्रेंड बन सकती हो। मैं अपने को खोलती हूँ।

—दर्द, दर्जे को नहीं देखता सीमा जी। लेकिन मिसेज नागपाल जो कुछ भी कर रही है, अपनी इज्जत के लिए, इसलिये कि वह इस बहाने अपने से ज्यादा हायर सोसायटी में मूव कर सके।

—इसीलिए मेरी उन से बनती नहीं। मैंने इतनी उम्र तरह-तरह के लोगो के बीच ली है। कम्पनी की एक्जीक्यूटिव पोस्ट पर होने के नाते ऐसे-ऐसे लोगो से पाला पड़ता है कि उँगली काटकर रह जाओ। इतनी पक गई हूँ कि सामना होते ही पहचान लेती हूँ कि मेरे सामने वाली औरत या मर्द कैसी है।

—मैं कुछ और पूछना चाह रही थी। कीर्ति पलँग का तकिया लगाकर बैठ जाती है।

—मैं जानती हूँ कि तुम मेरे बारे में पूछोगी। पूछ लो क्या पूछना चाहती हो। तुम्हें बता सकती हूँ।

—आप अलग क्यों हुई उनसे ?

—साथ में न रह पाने की वजह से। लेकिन इतनी दूर आकर सोचती हूँ कि वह कोई ऐसी स्थिति नहीं थी कि अलग हो जाया जाय।

—क्या आपके बीच में कोई और थी ?

—नहीं मैं खुद थी। वह इतना प्यार करते थे कि हद से ज्यादा। लेकिन उस वक्त बराबरी का अहं था ना। अहं ज़िद पर खड़ा कर देता है। उस वक्त नहीं सोचा कि यह इतनी दूरी पर पटक देगा। मैं सोचती थी अलगाव वह बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे, मुझ तक आ जायेंगे। वह भी शायद यही सोचते थे। लेकिन दोनों में से कोई नहीं झुका। और इस तरह बीस

साल बीत गए।

कीर्ति के चेहरे पर एकदम उदासी उभर आई। वह बेचैन होकर बोली —अब भी क्या बिगड़ा है। आपको पता है वह कहाँ है? उनसे मिलने की कोशिश क्यों नहीं करती?

—सिर्फ दो दिन हुए है अखबार की खबर से पता चला है कि वह कहाँ है। मिसेज कीर्ति, अब तो यह भी नहीं पता कि उन्होंने जिन्दगी को कौन-सी शक्ल दी। क्या पता दूसरी शादी कर ली हो और अपनी गृहस्थी बसा ली हो। मैं लेट नहीं पाती। कीर्ति की तरह बैठ जाती हूँ।

—तब भी, पता तो लगाना चाहिए? अगर वह भी ऐसा न कर पाये हों, जैसा आप नहीं कर पाई तब तो गुंजाइश है। कीर्ति के चेहरे पर आशा दमक उठती है।

—लेकिन अब तो ऐसा लगता है कि उस जिन्दगी को भी नहीं चला सकती। एक इस तरह की बहाव की, और अपने को खोने की जिन्दगी अपना ली है कि अधिकार और अपनत्व की वह जिन्दगी रास नहीं आएगी।

—नहीं मिसेज सीमा! यह भागना है। आप एक बार उनसे जरूर मिलिए। आपके पास क्या है जो अपना है, जो आपको सतोष दे सके।

—कुछ भी नहीं। तलाश करते-करते थक गई। लेकिन निश्छलता मिली कहाँ? मिलती भी है, तो धूप-छाँह की तरह। कभी वह छाँह बन कर खुद गायब हो जाती है, कभी मैं जान कर धूप को अलग कर देती हूँ। विश्वास नहीं रहा न। ऊपरी खुशियों से जीती हूँ, आन्तरिक सुख से घबरा जाती हूँ। उसको छिटका देती हूँ—चाहे देने वाला कितने ही मन से दे। मुझमें कुछ ठहरापन-सा छाता है और गहरी साँस निकालकर रह जाती है।

—आप मुझे नहीं छिटका पायेंगी। कीर्ति कहती है, और मेरे पास आ जाती है। बोलिये क्या आप मुझे भी छिटका देंगी! नहीं, मिसेज सीमा! नहीं आप मुझे वचन दीजिये कि आप मुझे नहीं छिटकायेंगी।

—मैं खुद से डरती हूँ कीर्ति! अपने मन की कहने से भी डरती हूँ। छिटकाती मैं नहीं हूँ, एक आदत हो गई है जो अपने आप ऐसा कर जाती है। मैं तुमसे मिली, तुम्हें भूल भी गई, तुम्हें याद भी किया, तुम छाई

भी रही दिमाग पर, फिर भी तुम्हारे पास नहीं आई। मैं जानती थी कि तुम मुझे कमजोर डाल दोगी। अपनी हमरूपता से आदमी बहुत डरता है।

—आप अगर मुझे हटायेंगी, तो भी नहीं हटूँगी। आप अगर मेरे पास नहीं आएँगी तो मैं आऊँगी।

—क्यों? मैं घबरा जाती हूँ।

—अगर आपने मुझमें कुछ पाया, तो मैंने भी तो पाया है? अगर आपको मैंने कमजोर बनाया तो आपने भी तो मुझे खींचा है। मैं नहीं जानती क्यों? लेकिन मिसेज सीमा हम कितने ही हिसाब-किताबी बन जाएँ, जिंदगी के कुछ क्षण ऐसे होते हैं जहाँ हम बिलकुल प्योर होते हैं। उस वक़्त की छुअन स्थाई होती है। वह या तो दर्द बनकर रह जाती है, या जीवन की संजीवनी।

—मिसेज कीर्ति! मैं लगभग चीख उठती हूँ। मैं उसी दर्द को तो आज तक सेह रही हूँ, जो पीछा नहीं छोड़ता। क्या रह गया है मेरे पास। न सुन्दरता, न उमंग, न अपनत्व, न निश्छलता। सब कुछ लहर की तरह उठता है और लहर की तरह लौट जाता है। कैसी थी मैं, कैसी हो गई। अब जब से उनका पता लगा है मैं और घबरा उठी हूँ। मेरी आँखें गीली हो उठती हैं।

कीर्ति मेरे दोनों हाथ की उँगलियों को अपने हाथ में ले लेती है। उन्हें सहलाती है। मैं टूटी हुई-सी उसके कंधे पर अपना सिर रख देती हूँ बुद-बुदाती हूँ—मैं क्यों आई? मैं तुम्हारे पास क्यों आई? और फूट-फूट कर रो पड़ती हूँ।

कीर्ति स्थिर बनी हुई मेरी उँगलियों को उसी तरह सहलाती जाती है मुझे नहीं पता कितनी देर तक रोती रहती हूँ। यहाँ तक कि खाली हो जाती हूँ, थक जाती हूँ।

जब सिर उठाती हूँ तब ऐसा लगता है कि सोकर उठी हूँ। थोड़ी-सी और सँभलती हूँ। शर्मिन्दा-सी होते हुए कहती हूँ—सॉरी मिसेज कीर्ति!

—नहीं, सिर्फ कीर्ति—वह कहती है।

—शायद इसीलिए आई थी तुम्हारे पास। कहोगी बुढ़िया तो हो गई, लड़कियों की तरह रोती है। मैं कृत्रिमता लाने की कोशिश करती हूँ।

—अगर मैं किसी दिन आप से चिपटकर रोऊँ तो आप भी यही कह लीजियेगा—बुढ़िया तो हो गई इस तरह रोती है। कीर्ति मुस्कराती है। किस तारीख के अखबार में खबर निकली है ? वह पूछती है।

क्यों ? क्या करोगी ? अखबार में तो खबरें-ही-खबरें हैं !—मैं जवाब देती हूँ।

—वह क्या है ?

—इन्कमटैक्स ऑफीसर। लेकिन तुम क्यों पूछ रही हो। मैं कीर्ति को अचम्भे से देखती हूँ।

—कुछ नहीं, वैसे ही।

—कीर्ति ! एक बात सुनो ! गम्भीरता और सख्ती मेरे चेहरे पर तनाव देती है। टूटने और रोने के मतलब यह नहीं होते कि हम अमुक जिन्दगी को अपनाने के काबिल है।

—मैंने कब कहा ? लेकिन यह भी कब सच है कि इस वजह से उसकी तरफ पीठ ही किये रहें।

—वास्तविकता और सोचने में बहुत फर्क होता है।

—आप मुझे सिर्फ उनका पता दे दीजिए। विश्वास रखिए कि मैं आपके बारे में कतई नहीं बताऊँगी। कीर्ति के चेहरे पर अजीब-सी दृढ़ता थी।

—क्या मैं इसलिए आई थी तुम्हारे पास ? मैं पूछती हूँ।

—क्या अफसोस है आने का ? और अगर हो तब भी मैं परवाह नहीं करूँगी। उसने मेरी आँखों में सीधा देखना शुरू किया।

मैं उस दृष्टि का सामना नहीं कर पाती। वह हटती है और जल्दी से पैड और कलम ले आती है—बोलिये !

मैं घबराती हूँ; मैं चुप रहती हूँ।

—मेरे ऊपर विश्वास नहीं होता ? इस पर अपनेपन का दावा कर रही थी। कीर्ति मुझे देखती जाती है।

—मैं अपने से डरती हूँ, कीर्ति। मुझे महसूस होता है मेरी सख्ती रवे-रवे हो रही है।

—लिखिये ना, आपको मेरी कसम है।

वह भोली, चचल कीर्ति उसमें से उभर आती है जिसने ड्राइगरूम में घुसते ही कहा था—इतनी जोरों से इन्तजार कर रही थी कि ..

मैं उसके चेहरे को देखती रहती हूँ।

वह पेन हाथ में पकडा देती है और पैड बढाकर कहती है—आपको मेरी कसम है, लिखिये ! वह एक अजीब-सी बात करती है। अपना गाल मेरी तरफ बढा देती है।

मैं उसे चूम लेती हूँ—एक बार, दो बार !

—अब लिखिये ! वह कहती है।

मैं पैड पर लिख देती हूँ।

वह मुझसे चिपट जाती है। कहती है—विश्वास हो गया कि आपने मुझे याद किया होगा।

हाँ ! अपने को याद किया था। मैं कीर्ति को भर लेती हूँ बाँहों में।

वह पूछती है—मुझे छिटकाइयेगा तो नहीं ?

मैं कहती हूँ—ऐसा कर नही पाऊँगी। लेकिन तुम इस पते को मेरे जाने के बाद फाड देना।

—आप ठग गई। वह अलग होती हुई हँसती है।

—कितनी शरीर हो तुम। मैं उसके शब्द दोहराती हूँ—आराम कर लीजिए, कहिये तो दूसरी साडी ला दूँ।

—इसीलिए ना ? मैं कहती हूँ।

—आप तो बचकर जा रही थी। अब अगर ज्यादा दिन तक नही मिली तो देख लीजियेगा, या तो कम्पनी मे बैठना मुश्किल कर दूँगी—रिंग करके या फिर खुद आ जाऊँगी।

- अब कब जाने दोगी मैं पूछती हूँ।

—ऐसा करिये। आइये, मेरे साथ आइये। अपने मिलकर कॉफी और थोडा-सा नाश्ता बनाते है। फिर आराम से पियेंगे। फिर आप चली जाइयेगा, मैं नही रोकूँगी। आइये, चलिये।

कीर्ति मुझे रसोईघर मे ले जाती है। टीन खोल कर, बिस्किट निकालती है, कुछ और नमकीन। वह डबल रोटी उठाती है तो मैं टोकती हूँ। इस पेट पर रहम खाओ। अभी तो खाना नाक तक रखा है। मैं उसके हाथ से छीन

लेती हूँ। फिर वह कॉफी वनाती है।

हम ड्राइंगरूम मे वैठकर कॉफी पीते है। मैं उससे उसके पति कैप्टेन की वात करती हूँ। मिलिट्री के लोगो के वारे मे पूछती हूँ। वह कई किस्से वताती है सच्चे किस्से। लगता है कि इनकी दुनिया विलकुल दूसरी है, अपने सर्किल मे सोमित। वह कहनी है यह तो दूरी की वात है ना, लेकिन हमारे सम्वन्ध, परिचय, अलावा भी तो हैं ना। हाँ, उतने नहीं है जितने आप लोगो के हो सकते है।

मैं तकरीबन पाँच वजे कीर्ति के यहाँ से चल पाती हूँ। मैं सीधी घर नही आती। वल्कि अकेली शॉपिंग करती हूँ। अकेली रेस्त्राँ मे वैठती हूँ। ऐसा लगता है, मैं चाह रही हूँ कि जिस अपनेपन को इतनी देर तक वर्त कर आई हूँ उससे कुछ अलग हो जाऊँ। लेकिन मैं हल्की हूँ। वह घुटन निकल चुकी है जो कई दिन से मेरी छाती पर वैठी हुई थी, सुवह से इधर-उधर उछाल रही थी।

अपने बारे में लिखने के लिए तो बहुत कुछ है। वैसे कुछ भी नहीं है। क्या सीमा ने यह पत्र लिखवाया है? किसने दे दी जानकारी? कीर्ति ने यह भी लिखना जरूरी नहीं समझा कि सीमा है कहाँ? कैसी है? क्या कर रही है? और कीर्ति नाम की यह अपरिचित औरत मेरे बारे में जानना चाहती है तो क्या महज यह कि मैंने अपने को किस किनारे लगाया।

मैं के सी सहाय क्या लिखूं अपने बारे में! कीर्ति के जरिये सीमा क्या-क्या जानना चाहती है? क्या अब वह भी जिन्दगी के खास हिस्से को बिताकर मेरी तरह किसी खास अपूर्णता को महसूस कर रही है।

नहीं, मुझे अपने अभाव, या अपनी स्थिति को सीमा का अभाव या स्थिति नहीं मानना चाहिए।

कीर्ति अगर यह लिख देती कि सीमा आजकल कहाँ है, तो मेरी एक समस्या अनजाने में ही हल हो जाती। मिस्टर सारस्वत ने लिखा है कि वह मुझे अपने पास बुलाने की कोशिश में है। कीर्ति ने जो शहर दिया है, वही तो सारस्वत भी है—राजधानी में। अगर सीमा भी वहीं है तो मुझे सारस्वत को लिख देना चाहिए कि वो अपनी पास बुलाने की कोशिश रोक दे। मैं उस शहर में नहीं रहना चाहूँगा जहाँ सीमा हो। जब इतने साल तक एक दूसरे के लिए न होकर रहे तो अब यह समस्या जानबूझकर क्यों पैदा की जाय।

वैसे राजधानी में इतनी व्यस्तता और इतनी दूरियाँ है कि अगर कोई ना चाहे तो जीने-मरने का भी पता न चले।

लेकिन जिन्दगी के साथ अनहोनियाँ, इत्तिफाक और मजबूरियाँ भी तो चलती है।

मैं, के. सी. सहाय सात दिन से दुविधा में पड़ा हूँ, पर अकेलेपन का कोई पल भी ऐसा नहीं गया जब कीर्ति का पत्र और सीमा का उनका परिचित होना, मुझे उलझाये नहीं रहा। सिर्फ उलझाए नहीं रहा, पिछली यादें फिर-फिर के आती रहीं और सवाल बनती गई कि क्या सोचते हो? क्या कीर्ति को जवाब नहीं दोगे? लेकिन जवाब देने का मतलब क्या हो सकता है। या उसका क्या नतीजा हो सकता है, उसका अन्दाज तो लगाया

हो जा सकता है ?

मैं अब की अपनी स्थिति और उस वक्त की अपनी स्थिति को आमने-सामने देखता हूं, जब सीमा मुझे छोड़कर गई थी, और उसके बाद दोनों की तरफ की नुर्पा खाई को बढ़ाती गई थी।

मैं टूटा था। मैं अधूरा हुआ। मैं छिज गया था। और जब इतना अहसास होने लगा था तब मैंने अपने उस घटते जा रहे व्यक्तित्व को आगाह किया था—हार की स्वीकृति, निराशा की पराभूतता शून्य पैदा कर देगी मुझमें सहाय, तू किसी दिन भी ढह जायेगा। अपने को साबुत नहीं रख पाया तो बिखर जाएगा।

और तब सीमा को ही दिया गया और उसमें पाया हुआ समर्पण शक्ति बन गया था। अन्दर की गिरती हुई आस्था सीमा की देन में गुजरता हुई बाहरी ईमानदारी और जीवन के लिए एक संघर्ष करने वाली भावना बन गई थी।

मैं अपनी ही किसी सम्पन्नता और सम्पूर्णता के लिए संघर्षशील हो गया था। और आज हूं अपनी उपलब्धियों से तृप्त जिन्दगी के एक बिन्दु पर।

एक इच्छा उठती है कि जानूं सीमा ने इस उम्र को कैसे तय किया। कहाँ पहुँची ? किन मकामों से पहुँची ? सीमा क्या थी ? क्या है ?

सफर तो ऐसे ही होते हैं इकाइयों के—दूसरों के साथ, दूसरों के लिए, अपने लिए, गुजरते हुए।

मैं, के. सी. सहाय कीर्ति को खत लिखने बैठ गया हूँ।

महोदया,

आपका पत्र मिला। आश्चर्य होना लाजिमी था। आपने ऐसे विषय का हवाला देकर मुझसे मेरे बारे में लिखने को कहा जो मुझसे सम्बन्धित होकर भी लगता है, जैसे कभी किसी दूसरे का था। लेकिन वह दूसरा भी तो मैं ही था, इसलिए वह आज भी मुझसे सम्बन्धित है ही। चाहे जिस बदलाव के साथ हो। आप का ख़ास मन्तव्य शायद यही हो कि मैंने पाई हुई स्वतन्त्रता का उपयोग किया या नहीं। मेरी कभी की जीवनसाथिनी आपकी परिचित है तो उनको आप इतना बता सकती हैं कि मैं उनमें

स्वतन्त्र जरूर हुआ, या उन्होंने मुझे स्वतन्त्र पाया, लेकिन मै उनकी देन से स्वतन्त्र नही हो सका। उन्होंने अकेला छोडा था, अकेला हूँ। या उनको यह जानकारी दे दीजियेगा कि मैं जानकर अकेला हुआ था, और उसी तरह मे हूँ।

शायद इतनी जानकारी काफी होगी। इसके पीछे की बातें तो जिन्दगी को जीते रहने की है, वह तो बीत गई। क्या बता सकेंगी की सीमा जी आजकल कहाँ हैं?

भवदीय
के सी सहाय

—हलो ! हाँ, मैं कीर्ति बोल रही हूँ।

—क्या बात है, आज कैसे याद आ गई। सीमा ने पूछा।

—आप दफ्तर से किसी तय जगह पर मिलने आ सकती है। मेरे पास आपके लिए बड़ी अच्छी न्यूज़ है।

—फ़ोन पर बता दो—सीमा ने मुस्कराते हुए कहा।

—क्यों?क्या मिलने को टालना चाहती है? मुझे किसी जरूरी प्रोग्राम के बारे में बात करनी है। आप दोपहर में ही, आई मीन एक बजे एम्पोरियम के पास आ जाइये, मैं इन्तज़ार करूँगी।

—तुम बुला रही हो तो आना ही होगा। यस, श्योर। इस वक्त मेरी घड़ी में साढ़े ग्यारह बजे हैं। सीमा ने घड़ी देखकर बताया कि दोनों एक ही वक़्त पर पहुँच सकें।

उसने रिसीवर रख दिया। बज़र का बटन दबाया।

—जी, साहब ! चपरासी आ गया।

—स्टेनो बाबू को भेजो।

राजेश कॉपी-पैन्सिल साथ लाया।

—दो-तीन लेटर लिखाने हैं, डिक्टेशन ले लो। मुझे कहीं जाना है।

राजेश तैयार हो गया।

सीमा फ़ाइल में लगे लेटर को देखती गई, जवाब बोलती गई। एक-एक करके तीन ख़त बोल दिए। राजेश को अब ध्यान से देखती हुई बोली—राजेश, अभी तक तुम्हारी कमजोरी नहीं गई।

—डॉक्टर कहता है धीरे-धीरे हटेगी। उसने टॉनिक लिखी थी। सुबह-शाम ले रहा हूँ।

स्वतन्त्र जरूर हुआ, या उन्होंने मुझे स्वतन्त्र पाया, लेकिन मैं उनकी देन मे स्वतन्त्र नही हो सका। उन्होंने अकेला छोड़ा था, अकेला हूँ। या उनको यह जानकारी दे दीजियेगा कि मैं जानकर अकेला हुआ था, और उसी तरह मे हूँ।

शायद इतनी जानकारी काफी होगी। इसके पीछे की बातें तो जिन्दगी को जीते रहने की है, वह तो बीत गई। क्या बता सकेंगी की मीमा जी आजकल कहाँ हैं?

भवदीय
के सी सहाय

—हलो ! हाँ, मैं कीर्ति बोल रही हूँ।

—क्या बात है, आज कैसे याद आ गई। सीमा ने पूछा।

—आप दफ्तर से किसी तय जगह पर मिलने आ सकती है। मेरे पास आपके लिए बडी अच्छी न्यूज है।

—फोन पर बता दो—सीमा ने मुस्कराते हुए कहा।

—क्यों?क्या मिलने को टालना चाहती है? मुझे किसी जरूरी प्रोग्राम के बारे मे बात करनी है। आप दोपहर मे ही, आई मीन एक बजे एम्पो-रियम के पास आ जाइये, मैं इन्तजार करूँगी।

—तुम बुला रही हो तो आना ही होगा। यस, श्योर। इस वक्त मेरी घडी मे साढे ग्यारह बजे है। सीमा ने घडी देखकर बताया कि दोनों एक ही वक्त पर पहुँच सकें।

उसने रिसीवर रख दिया। बजर का बटन दबाया।

—जी, साहब ! चपरासी आ गया।

—स्टेनो बाबू को भेजो।

राजेश कॉपी-पैन्सिल साथ लाया।

—दो-तीन लेटर लिखाने हैं, डिक्टेशन ले लो। मुझे कही जाना है।

राजेश तैयार हो गया।

सीमा फाइल मे लगे लेटर को देखती गई, जवाब बोलती गई।

एक-एक करके तीन खत बोल दिए। राजेश को अब ध्यान से देखती हुई बोली—राजेश, अभी तक तुम्हारी कमजोरी नही गई।

—डॉक्टर कहता है धीरे-धीरे हटेगी। उसने टॉनिक लिखी थी। सुबह-शाम ले रहा हूँ।

—दूसरा काम न हो तो इसे जल्दी टाइप कर लाओ, ताकि दस्तखत कर जाऊँ।

—कर लाता हूँ। राजेश खड़ा होकर जाने लगा।

—सुनो! निगम साहब से कहना, जरूरी डाक दिखानी हो तो भेज दें।

—जी! राजेश चला गया। सीमा ने मिस्टर घोष को इत्तला दी कि उसे जरूरी काम है—वह साढ़े बारह बजे जा रही है।

निगम आई हुई डाक ले आए। सीमा ने उसको सरसरी तौर पर पढ़ा। एक-दो लेटर की बाबत निगम साहब से तथ्यों की जानकारी ली। काम होने के बाद निगम चले गए।

सीमा अब अकेली थी। खाली भी थी। वह अखबार पढ़ने लगी। उसे पढ़ते-पढ़ते किसी सूची का ध्यान आया। उसने उस सूची को निकाला। कीमतों की तुलना करने के लिए उसने दूसरा कैटलॉग निकाल लिया। वह दोनों कैटलॉग में दी गई कीमतों को मिलाने लगी। जिन आइटम्स को खरीदना था उन पर उसने लाल कलम से निशान लगा दिया।

उसने टेबिल कैलेण्डर की तारीखों को पलट कर देखा कोई सम्पर्क, या काम रुका हो। फिर उसने ऑफिशियल डायरी देख ली। ऐसा इसलिए नहीं था कि सीमा को जाना था। उसकी यह आदत थी। खाली हो तो टेबिल कैलेण्डर के तारीखे,पन्ने या डायरी पलटती। यह दोनों चीजें दिन में एक बार देखना सीमा के लिए वैसा ही था जैसे लेटर्स लिखवाना, टूरिंग-रिपोर्ट्स लेना, या फिर टूरिंग-एजेन्टों की महीने में एक बार होने वाली मीटिंग लेना।

साढ़े बारह बजते ही सीमा ने एक बार मिस्टर घोष को फिर सूचना दी, फिर कमरे में से निकल ली। उसे खयाल नहीं रहा था कि उसने राजेश को लेटर टाइप करके लाने को कहा था। राजेश ने जाते हुए देखा तो सामने आया पैड लेकर कि वह दस्तखत करती जाएँ।

—ओह! मुझे ध्यान नहीं रहा था। राजेश से उसने कहा, फिर कमरे में लौटी, दस्तखत किए, दोबारा बाहर आई।

लिफ्ट के सामने इन्तजार नहीं करना पड़ा। नीचे आते ही सीधी सड़क पर पहुँची। टैक्सी का इन्तजार करने लगी।

एक बार उसने घड़ी फिर देखी। अब उसके दिमाग में एम्पोरियम पहुँचने की जल्दी थी। कीर्ति से मिलने की।

कीर्ति उसके लिए भावना का बिन्दु बन चुकी थी। जब-तब वह उसको फोन कर लेती थी—कम-से-कम हाल-चाल जानने के लिए।

कीर्ति को भी चार-पाँच दिन से ज्यादा का अर्सा सह्य नहीं था। कीर्ति ने घर बुलाया भी एक-दो बार, पर सीमा पता नहीं क्यों घर जाने से कतराती रही। पता तो था, लेकिन वैसा वह कीर्ति से कह कैसे सकती थी! उसे नीरा और अमिताभ दोनों बड़े प्यारे बच्चे लगते थे।

टैक्सी ड्राइवर ने उसे अकेले खड़े देखा तो कार धीमी करते हुए पूछा—मेम साहब, चलना है?

—हाँ, एम्पोरियम।

—आइये! उसने कार रोक दी। सीमा पीछे बैठ गई। उसने फिर घड़ी देखी।

अब कीर्ति उसकी आँखों में थी। कीर्ति उसकी आँखों में क्यों उतर आती है। और कभी-कभी ऐसा क्यों होता है कि कीर्ति को देखते-देखते उसमें वह अपने उस रूप को देखने लगती है जब वह सहाय के पास आई थी शादी होने के बाद।

सीमा कैप्टेन से एक बार मिली है। यह भी अचानक कनाट प्लेस में जब वह और कीर्ति शॉपिंग करने आये थे। कीर्ति ने ही जल्दी कदम बढ़ाकर पीछे से पुकारा था—सीमा जी!

उसने पीछे मुड़कर देखा था—कीर्ति है। दोनों इस आकस्मिक मिलन के हो जाने पर बहुत खुश हुई थीं। उसी दिन कीर्ति ने कैप्टेन साहब से मिलवाया था। उस दिन तीनों करीब ढाई घंटे तक साथ रहे थे। कीर्ति ने छोड़ा ही नहीं। सीमा ने जाना था कि कैप्टेन भी काफी मिलनसार और कम्पनी के लायक हैं। उसकी अपनी उस धारणा की पुष्टि भी मिली थी, जिसे उसने कैप्टेन साहब के कलेक्शन्स को देखकर बनाया था। वह वास्तव में गम्भीर थे। उतनी ही बात, जितनी जरूरी हो। हँसना कम, मुस्कराना ज्यादा। कीर्ति की तरह, या सहाय की तरह वह निरी भावनाओं और भावनात्मक उछालों से नहीं लगे। कैप्टेन को देखते हुए उसके दिमाग में

सहाय उभरे थे, जिन्हें उसने बड़ी तरक़ीब से अपने में दबाया था। लेकिन वह अपने पर भी सोचती रही थी कि क्या वह अब भी, बावजूद सारी समझदारी और चालाकियों के निरी भावना नहीं है। बल्कि वह तो जैसे ऐसी स्प्रे है जो ज़रा-सा दबाये जाने पर फुहार-सी हो जाती है।

टैक्सी रुकी तो उसके विचार-क्रम को झटका लगा। जैसे एक बिन्दू से बहता पानी फैला दिया गया हो। उसने कीर्ति को खड़े पाया तो वह तपाक से उससे मिली। भूल गई कि टैक्सी का किराया भी देना है।

—मेम साहब, किराया ! ड्राइवर ने याद दिलाया।

उसे अपनी इस अनियन्त्रित भावुकता पर शर्म आई, जिसकी शिकायत उसने किराया चुकाने के बाद कीर्ति से की।

—तुम बड़ी वह हो !

—क्या ? कीर्ति ने मुस्कराते हुए पूछा।

—शैतान ! सीमा ने स्नेह से कहा।

—मैं ? कीर्ति फिर भी मुस्कराती रही।

—और क्या मैं? यह तरीका है बुलाने का। नौकरी नहीं करने देगी।

—नौकरी में क्या किसी से फोन पर बात नहीं की जाती, या अगर काम हो तो बुलाया नहीं जाता ? कीर्ति ने छेड़ा।

—हाँ, कुछ लोगों पर पाबन्दी लगी होती है, क्योंकि वह अपनी आवाज़ तक से डिस्टर्ब कर देते हैं। और क्या इस तरह से मिला जाता है सड़क पर कि टैक्सी का किराया देना भी भूल जाया जाय।

—आप, अपने लिए कह रही है, या मेरे लिए। कीर्ति मुस्कराती रही, लेकिन यह मुस्कराहट उसके गुलाबी होंठों पर जैसे थिरक रही थी।

—तुम्हारे लिए कह रही हूँ। मुझ पर रहम खाकर मेरे दफ्तर में कभी नहीं आना। मेरा तमाशा बनवा दोगी। सीमा हंस दी।

—तब तो ज़रूर आऊँगी। एक बार तो ज़रूर आऊँगी, आपकी कृत्रिमता खोलने।

—सॉरी, मैडम कीर्ति। आइ डोन्ट मीट सच नॉटी पर्सन्स एट माई टेबिल।

अब दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

—यह फुट-पाथ है। सीमा बोली

—जी ! कीर्ति ने उत्तर दिया।

—हमें इसी पर घूमना है क्या ? आपका वह जरूरी प्रोग्राम ?

—वह किसी रेस्ट्रां में बैठकर तसल्ली से डिसकस किया जा सकता

—नीरा और अमिताभ कैसे हैं ?

—उनसे कहकर आई हूँ, तुम्हारी आन्टीजी को आज लेकर आऊँगी।

—लेकिन मुझे तो सीमा अटपटा गई।

—वह प्रोग्राम एजेन्डा में दूसरे नम्बर पर है। पहले रेस्ट्रां चलें। मैं तीन दिन से खुश हो रही हूँ, उदास हो रही हूँ, सोच रही हूँ, लेकिन किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाई कि मुझे क्या होना चाहिए।

—आप बारी-बारी से होइये। लेकिन मेरे सामने सिर्फ खुश, इसके अलावा मैं कैसा भी तुम्हें नहीं देख सकती।

हम लोग रेस्त्रां में आ गये। ऊपर की फैमिली-केबिन में बैठ गये।

यहाँ के किराये के तौर पर कुछ मँगाना होता है। —क्या लेना पसन्द करोगी ? सीमा ने पूछा।

अब तक बैरा ड्यूटी बजाता हुआ आ गया था।

—कॉफी और कटलेट्स। कीर्ति ने आर्डर दिया।

बैरा चला गया।

—बोलिए क्या डिस्कस करना है ? सीमा ने पूछा।

कीर्ति ने बिना किसी भूमिका को बनाये अपने पर्स में से सहाय का खत निकाला और सीमा की तरफ बढ़ा दिया। जैसे वह सोच कर आई थी कि सरप्राइज देगी।

सीमा ने खत लिया और पढ़ गई। पढ़ते-पढ़ते उसका चेहरा फक हो गया। जैसे काठ मार गया हो। उसकी कोहनी मेज पर आ गई और उसका माथा उसकी हथेलियों पर ठहर गया।

कीर्ति सारी प्रतिक्रिया देखती रही।

—सीमा जी ! कीर्ति बोली

सीमा बे-असर थी।

कीर्ति ने फिर कहा—मिसेज सीमा।

सीमा उसी हालत में बैठी रही। खत उसकी उँगलियों से छूट कर मेज पर आ गया था।

—मिसेज़ सीमा, मैं इसी खत को समझना चाहती थी।

—तुमने यह क्यों किया कीर्ति? सीमा के मुँह से पहला वाक्य निकला। यह प्रश्न था या एक घुटा हुआ दर्द, कीर्ति समझ नहीं पाई।

मैंने आप से पता लिया था ना? कीर्ति खुद भी कैसी सुस्त हो गई थी, वह जान नहीं पा रही थी।

बैरा ने पर्दा हटाया, ट्रे रखकर चला गया।

—मैंने भी तो तुम से कहा था, मुझे डर लगता है। वह वास्तविकता जो जानकारी के बाहर हो, और वह दुखदायी भी हो, उसका न जानना ही हर तरह से ठीक रहता है।

—सीमा जी, क्या यह वैसे सुख दे रही थी? कीर्ति ने सीमा को देखा। आप पहले नॉर्मल होइये। लीजिये कॉफी पीजिये।

सीमा ने हथेली से टिका माथा हटाया। कीर्ति देख सकती थी, सीमा का रंग जैसे फीका पड़ गया था। इतनी-सी देर में वह ऐसी हो गई थी जैसे महीनों से बीमार रही हो। कहाँ गई थोड़ी देर पहले की सीमा? कीर्ति की सहानुभूति उमड़ आई। उसे लगा वह सीमा की उम्र की हो गई है और सीमा उसकी उम्र की। और उसे अपनी वह स्थिति याद हो आई जब कैप्टेन लड़ाई पर गये हुए थे और किसी घर की तरफ डाकिये या तार वाले को जाता देखकर सारा-का-सारा अस्तित्व थरथरा उठता था। ठीक वही निरीहता, बुझाव सीमा पर छाया हुआ था।

कीर्ति को अन्दाज़ा था कि ऐसा होगा। लेकिन वह नहीं जानती थी कि इतनी गहराई और सघनता में होगा कि सीमा बे-रंग, संवेगहीन हो जायेगी।

सीमा मरे हुए हाथों से कॉफी का प्याला उठाकर घूंट भर रही थी। वह चुप थी। —मिसेज़ सीमा, मैंने कहा था ना मैं तीन दिन से उदास हो रही हूँ, खुश हो रही हूँ, सोच रही हूँ। यह खत तीन दिन पहले आया था। मैंने अपने स्वभाव के विपरीत इस खुशी को दबाये रखा, आपको फौरन फोन नहीं किया।

—इसे खुशी मानती हो कीर्ति ! यह तो बहुत दूर आगे जाकर, फिर पीछे आ जाना है। एक चौराहे पर खड़े होकर दिशाहीन हो जाना है। सीमा अब जैसे उस काठपन से मुक्त हो रही थी।

यह खत उठा लूं ? कीर्ति ने पूछा।

रहने दो सामने, मेरी स्थिति की तरह। तुमने बताया नहीं, तुम क्या इसे खुशी मानती हो ? अगर मान लो इस में लिखा हुआ आता कि उन्होंने शादी कर ली है और अपने परिवार के साथ खुश हैं, तब क्या करती ? सीमा ने कीर्ति के चेहरे पर आँख ठहरा ली थी। अजीब गहराई थी उस दृष्टि में। अजीब खोयापन। अजीब-सी हार का दर्द।

—तब मैं आपको नहीं बताती। आपको आप के दर्द में ही जीने रहने देती। कीर्ति ने जवाब दिया।

उसने देखा एक सुखक-सी व्यंग्यात्मक मुस्कराहट सीमा के होंठों पर उठकर पूरे चेहरे पर झलक गई। सीमा जैसे बहुत दूरी से बोली—और जो बताया है क्या उससे दर्द कम हो गया ? उस भुलावे को भी तोड़ दिया जिस पर सारा भटकाव खड़ा था। अब तो इस जिन्दगी को भी नहीं रह सकूँगी, वह तो हाथ आनी ही नहीं है।

—उसे लेना होगा सीमा जी। जिसके बगैर आप सिर्फ प्यास-ही-प्यास है, तृप्तियों के बीच में अछूती और पलों की जिन्दगी जी रही है, उसके केन्द्र को तो पकड़ना होगा। कीर्ति नहीं बोल रही थी जैसे उसका गहरे-से-गहरा तल बोल रहा था।

—बहुत दार्शनिकता में बोल रही हो कीर्ति ! इतनी थकी हुई हो गई हो। सीमा का मोह कीर्ति पर आया। टूटा हुआ सिरा जुड़ता है ? सीमा ने पाया वह कॉफी पी रही है, कीर्ति नहीं पी रही है। उसने टोका—मुझ से कहा कॉफी पीने के लिये, खुद हाथ तक नहीं लगाया। मैंने कहा—टूटा हुआ सिरा जुड़ता है ?

—सिरा जुड़ता है मिसेज सीमा। बिना गाँठ के भी जुड़ता है। आप मुझे छोटी अक्ल की कहेंगी अगर एक खेल याद दिलाऊँ। हाथ पकड़कर लाइन में खड़े होना। फिर दोनों सिरों वालों का उछलते हुए हाथ बढ़ाये आना और हाथ पकड़कर गोला बना लेना। फिर गोले में हँस-हँस कर नाचना।

सीमा उसी हालत मे बैठी रही। 'ख़त उसकी उँगलियो से छूट कर मेज पर आ गया था।

—मिसेज सीमा, मैं इसी खत को समझना चाहती थी।

—तुमने यह क्यो किया कीर्ति? सीमा के मुँह से पहला वाक्य निकला। यह प्रश्न था या एक घुटा हुआ दर्द, कीर्ति समझ नही पाई।

मैने आप से पता लिया था ना? कीर्ति खुद भी कैसी सुस्त हो गई थी, वह जान नही पा रही थी।

बैरा ने पर्दा हटाया, ट्रे रखकर चला गया।

—मैंने भी तो तुम से कहा था, मुझे डर लगता है। वह वास्तविकता जो जानकारी के बाहर हो, और वह दुखदायी भी हो, उसका न जानना ही हर तरह से ठीक रहता है।

—सीमा जी, क्या यह वैसे सुख दे रही थी? कीर्ति ने सीमा को देखा। आप पहले नॉर्मल होइये। लीजिये कॉफी पीजिये।

सीमा ने हथेली से टिका माथा हटाया। कीर्ति देख सकती थी, सीमा का रग जैसे फीका पड गया था। इतनी-सी देर मे वह ऐसी हो गई थी जैसे महीनो से बीमार रही हो। कहां गई थोडी देर पहले की सीमा? कीर्ति की सहानुभूति उमड आई। उसे लगा वह सीमा की उम्र की हो गई है और सीमा उसकी उम्र की। और उसे अपनी वह स्थिति याद हो आई जब कैप्टेन लडाई पर गये हुए थे और किसी घर की तरफ डाकिये या तार वाले को जाता देखकर सारा-का-सारा अस्तित्व थरथरा उठता था। ठीक वही निरीहता, बुझाव सीमा पर छाया हुआ था।

कीर्ति को अन्दाजा था कि ऐसा होगा। लेकिन वह नही जानती थी कि इतनी गहराई और सघनता मे होगा कि सीमा बे-रग, सवेगहीन हो जायेगी।

सीमा मरे हुए हाथो से कॉफी का प्याला उठाकर घूट भर रही थी। वह चुप थी। —मिसेज सीमा; मैंने कहा था ना मैं तीन दिन से उदास हो रही हूँ, खुश हो रही हूँ, सोच रही हूँ। यह ख़त तीन दिन पहले आया था। मैंने अपने स्वभाव के विपरीत इस खुशी को दबाये रखा, आपको फ़ौरन फोन नहीं किया।

से कहा।

तुम मुझे क्यों मिली ? सीमा ने स्नेह-सिक्त उलाहने में पूछा।

—आपको मिस्टर सहाय क्यों मिले थे ? मुझे कैप्टन साहब ही क्यों मिले ? मुझे नीरा क्यों मिली ? मुझे अमिताभ क्यों मिला ? यूँ आपको बहुत से मिलते हैं, यूँ मुझे बहुत से मिलते हैं।

—मैंने यह नहीं पूछा है कि कितने मुझे मिले, कितने तुम्हें मिले। मैं पूछ रही हूँ, तुम मुझे क्यों मिली ?

—अब मिली तो मिली। बताइये अब क्या करियेगा सिवाय इसके कि मेरे घर चलियेगा।

कटलेट बातों-बातों में खा लिये गये। पेमेन्ट भी चुका दिया गया। और टैक्सी कीर्ति के बगले की तरफ चल दी।

कैसी पागल हो कीर्ति ! निरी बच्ची ! सीमा ने कीर्ति का ग थपा दिया ।

यह कौन-सी सीमा जी है, मिसेज सीमा ? वह कौन-सी मिसे थी जो किराया देना भूलकर मुझसे फुटपाथ पर चिपट गई थी । व सी मिसेज सीमा है जो मुझे ऑफिस मे आने से मना करती है ।

—सीमा तो टुकडे-टुकडे हो गई कीर्ति, हिस्सो मे बिखरी हुई वह कैसे सिमट सकती है ? कैसे एक हो सकती है ? जिसकी धुरी प पहले निकल गई हो वह पहिया उगलियो से चलाए कितना चलेगा । इन बातो को छोडो ! मैं घुटन महसूस कर रही हूँ। यह खत रख तुम्हारा है। सीमा ने खत पर उगलियाँ रखकर झटके से कीर्ति की 'खिसका दिया । कीर्ति को एकाएक जोर से हँसी छूटी । सीमा ताज्जुब गई । उसे देखने लगी ।

—क्या हुआ ? हँसने की क्या बात हुई ।

—सच मे यह खत मेरा है । उसने खत पर्स मे डाल लिया । बोलं यह खत मेरा ही है । मिस्टर के. सी. सहाय को मैंने ही कुछ ऐसा दिया जिसको बिचारे आज तक लिये बैठे है। अपने को स्वतन्न ही नही पाये । और अपने को छूटी हुई समझने वाली मिसेज सीमा दावा करती कि उन्होंने जो पाया उसे वह अपने मे से निकालकर ऑफिस के कूड़े मे फेंक चुकी है । है ना, मिसेज सीमा सहाय । अपने चेहरे और आँखो देखिये, वह आपकी आज्ञा की अवहेलना कर रहे है ।

—जैसे, तुमने की, तुम कर रही हो । सीमा झिडकती-सी बोली– बहुत जरूरी प्रोग्राम था जो डिसकस करने आई थी । यह था ।

—एक्सक्यूज़ मी, यह मेरा खत अपने पर्स मे रखियेगा । कीर्ति छेडा । कॉफी तो बेकार हो गई, कटलेट तो खत्म करो । बेरा क्या सोचेगा सीमा बोली । अपने दूसरे एजेंड पर भी तो डिसकस कर लें । वह नीर और अमिताभ को दिये गये मेरे वायदे के बारे मे ।

—कटलेट खत्म करो, और चलो ! मैं तुम्हारे साथ नही जाऊँगी ।

—अपना-अपना हिस्सा खत्म करिये और चलिये । आप शाम तक मेरे यहाँ रहेंगी । वही डिनर लेंगी, उसके बाद घर जाएँगी । कीर्ति ने भोलेपन

से कहा।

तुम मुझे क्यों मिली ? सीमा ने स्नेह-सिक्त उलाहने में पूछा।

—आपको मिस्टर सहाय क्यों मिले थे ? मुझे कैप्टन साहब ही क्यों मिले ? मुझे नीरा क्यों मिली ? मुझे अमिताभ क्यों मिला ? यूँ आपको बहुत से मिलते हैं, यूँ मुझे बहुत से मिलते हैं।

—मैंने यह नहीं पूछा है कि कितने मुझे मिले, कितने तुम्हें मिले। मैं पूछ रही हूँ, तुम मुझे क्यों मिली ?

—अब मिली तो मिली। बताइये अब क्या करियेगा सिवाय इसके कि मेरे घर चलियेगा।

कटलेट बातों-बातों में खा लिये गये। पेमेन्ट भी चुका दिया गया। और टैक्सी कीर्ति के बंगले की तरफ़ चल दी।

रहते है। तुम्हारी दुविधा है कि मेरे यहां
। मैं नही समझती की यहां तुम क्यो नही
ये मैं सारस्वत को भी जानती हूं।
दक्कत है—अगर दोनो यह महसूस करेगे
यें तो वैसे रहेगे। अगर ऐसा लगा कि हम
रेंगे।

मे उठाए गए दोनो सवालो का जवाब
और निर्णय लो।

तुम्हारी
सीमा

। स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर खड़े है, गाड़ी
ने तार दिया था कि वह इस तारीख को

सारस्वत भी आए हुए है। शायद

स्वत ने सीमा को देखकर कहा।
। ही इज़ कैप्टेन आनन्द। शी इज़

यह अपरिचित कीर्ति कौन है जो अलग-अलग नावों में बहते दो शख्शों के बीच में जोड़ने वाला तत्त्व बन रही है।

मैंने संगम पर जया हुआ कुम्भ का मेला देखा है—हजारहा मर्द, हजारहा औरतें, बच्चे। एक वह साफ रंग की गंगा, एक वह काली-नीली-सी जमुना और नीचे बहने वाली सरस्वती।

कैसा विश्वास है लोगों का कि दूर-दराज से खिंचे चले आते हैं। और यह विश्वास पता नहीं किस वक्त से चला आ रहा है। अकेले आदमी का होते हुए भी लाखों का, करोड़ों का।

सुबह सूरज की पहली किरण के साथ लोग नावों में बैठ-बैठकर संगम पर पहुँच जाते हैं, स्नान करते और सूर्य को नमस्कार करते हैं।

गंगा का पानी भी पानी है, जमुना का पानी भी पानी और नीचे बहती सरस्वती का पानी भी पानी। सूर्य, सूर्य है, रथ वाला नहीं, वह सूर्य जिसके चारों ओर पृथ्वी चक्कर काटती है, और पृथ्वी की परिक्रमा लगाता है चाँद।

कीर्ति क्या सरस्वती हो गई मेरे और सीमा के लिये।

यह मैं, सहाय, उस वक्त साम्यता ढूंढ रहा हूँ जब सीमा अपने रास्ते बहती जा रही थी, मैं अपने रास्ते। और एक बार एक ही पहाड़ से निकलकर अपने-अपने रास्ते तय करने निकल पड़ने के बाद कब सम्भव था, और कौन जानता था कि दुबारा मिलने की सम्भावना बनेगी।

कुम्भ के मेले का वह दृश्य मैं कभी नहीं भूल पाया जो मुझे आज भी जिन्दगियों के जिये जाने का राज-सा बताता है।

गंगा-जमुना का चौड़ा-चौड़ा पाट और उनमें सैकड़ों नावें बही

चली जा रही हैं। नावों की अलग-अलग सामर्थ्य। और उनमें बैठे आदमी परिचित-अपरिचित। सब बह रहे है, नाव की सुरक्षा लिये हुए।

किनारा है, जो पीछे है। जो जमीन से जोडता है। जिस पर आते ही सब अपने-अपने हो जाते है।

और जैसे-जैसे जमीन के होते है और मेले से दूर होते जाते है, अपनी-अपनी जिन्दगियो मे लौट जाते है। सगम। विछोह। दिशान्तर।

मैं, सहाय, इतना तो सोच ही सकता हूँ कि सीमा ने क्या दिया था जो मुझ मे बस कर रह गया और वह क्या था जो वह अपने पास रखे रही जिस की वजह से मै उसका नही हो सका?

मैं यह भी तो सोच सकता हूं कि मैं उसको क्या दे सका जो सीमा के पास अब भी है, जिसकी वजह से वह किसी दूसरे की नही हो सकी, और ऐसा क्या था जो मैं अपने पास रखे रहा, जिसकी वजह से वह मेरी नही हो सकी?

और कीर्ति किस हिस्से को जोडने की कोशिश कर रही है?

उसी के कई खत आये जिसमे वह मुझे टटोलती रही, कुरेदती रही। और मैं जैसा महसूस करता रहा, जैसा अपने को पाता रहा, लिखता रहा।

मैंने यह भी लिखा कि अगर मै और सीमा अलग-अलग ज़िन्दगी जीने की आदत मे हो गये है तो क्या यह जरुरी है कि एक होकर रहे। क्या वह अपने मे ऐसा पाती है कि वह मेरे साथ, मेरी होकर रह सकती है?

मेरा यह खत, मेरा यह सवाल, कीर्ति ने सीमा की तरफ़ बढा दिया, वरना सीमा मुझे खत क्यो लिखती। और इस खत के जवाब ने ही यह साफ किया कि कीर्ति मेरे हर लिखे गये खत को सीमा को पढवा रही थी। यह रहस्य नही था, प्रत्याशित था।

सीमा का मुझे लिखा गया पत्र यह है -

डियर के. सा.!

कीर्ति का कहना है कि मैं तुम्हे ख़त लिखूं। तुम्हें यह भी नहीं समझना चाहिए कि मैं सिर्फ उसके कहने से खत लिख रही हूँ। कीर्ति को लिखे गये तुम्हारे सारे पत्र मैं पढती रही हूँ। तुम्हे भी समझने की कोशिश करती

यह अपरिचित कीर्ति कौन है जो अलग-अलग भावो में बहते दो शब्दों के बीच में जोडने वाला रस्ता बन रही है।

मैंने सगम पर जया हुआ कुम्भ का मेला देखा है—हजारहा मर्द, हजारहा औरतें, बच्चे। एक वह साफ रग की गगा, एक वह काली-नीली-सी जमुना और नीचे बहने वाली सरस्वती।

कैसा विश्वास है लोगो का कि दूर-दराज से खिचे चले आते है। और यह विश्वास पता नही किस वक्त से चला आ रहा है। अकेले आदमी का होते हुए भी लाखो का, करोडो का।

सुबह सूरज की पहली किरण के साथ लोग नावो मे बैठ-बैठकर सगम पर पहुँच जाते है, स्नान करने और सूर्य को नमस्कार करते हैं।

गगा का पानी भी पानी है, जमुना का पानी भी पानी और नीचे बहती सरस्वती का पानी भी पानी। सूर्य, सूर्य है, रथ वाला नही, वह सूर्य जिसके चारो ओर पृथ्वी चक्कर काटती है, और पृथ्वी की परिक्रमा लगाता है चाँद।

कीर्ति क्या सरस्वती हो गई मेरे और सीमा के लिये।

यह मैं, सहाय, उस वक्त साम्यता ढूंढ रहा हूं जब सीमा अपने रास्ते बहती जा रही थी, मैं अपने रास्ते। और एक बार एक ही पहाड़ से निकलकर अपने-अपने रास्ते तय करने निकल पडने के बाद कब सम्भव था, और कौन जानता था कि दुबारा मिलने की सम्भावना बनेगी।

कुम्भ के मेले का वह दृश्य मैं कभी नही भूल पाया जो मुझे आज भी जिन्दगियों के जिये जाने का राज-सा बताता है।

वह गगा-जमुना का चौड़ा-चौड़ा पाट और उनमे सैकडों नावें बही

चली जा रही हैं। नावों की अलग-अलग सामर्थ्य। और उनमें बैठे आदमी परिचित-अपरिचित। सब बह रहे हैं, नाव की सुरक्षा लिये हुए।

किनारा है, जो पीछे है। जो जमीन से जोड़ता है। जिस पर आते ही सब अपने-अपने हो जाते है।

और जैसे-जैसे जमीन के होते है और मेले से दूर होते जाते है, अपनी-अपनी जिन्दगियों में लौट जाते है। सगम। बिछोह। दिशान्तर।

मै, सहाय, इतना तो सोच ही सकता हूँ कि सीमा ने क्या दिया था जो मुझ में बस कर रह गया और वह क्या था जो वह अपने पास रखे रही जिस की वजह से मै उसका नही हो सका ?

मैं यह भी तो सोच सकता हूँ कि मैं उसको क्या दे सका जो सीमा के पास अब भी है, जिसकी वजह से वह किसी दूसरे की नहीं हो सकी, और ऐसा क्या था जो मै अपने पास रखे रहा, जिसकी वजह से वह मेरी नही हो सकी ?

और कीर्ति किस हिस्से को जोड़ने की कोशिश कर रही है ?

उसी के कई खत आये जिसमे वह मुझे टटोलती रही, कुरेदती रही। और मै जैसा महसूस करता रहा, जैसा अपने को पाता रहा, लिखता रहा।

मैंने यह भी लिखा कि अगर मै और सीमा अलग-अलग जिन्दगी जीने की आदत में हो गये हैं तो क्या यह जरूरी है कि एक होकर रहे। क्या वह अपने मे ऐसा पाती है कि वह मेरे साथ, मेरी होकर रह सकती है ?

मेरा यह खत, मेरा यह सवाल, कीर्ति ने सीमा की तरफ़ बढा दिया, वरना सीमा मुझे खत क्यों लिखती। और इस खत के जवाब ने ही यह साफ़ किया कि कीर्ति मेरे हर लिखे गये खत को सीमा को पढ़वा रही थी। यह रहस्य नही था, प्रत्याशित था।

सीमा का मुझे लिखा गया पत्र यह है :

डियर के. सा. !

कीर्ति का कहना है कि मैं तुम्हे खत लिखूं। तुम्हें यह भी नही समझना चाहिए कि मैं सिर्फ़ उसके कहने से खत लिख रही हूँ। कीर्ति को लिखे गये तुम्हारे सारे पत्र मैं पढ़ती रही हूँ। तुम्हे भी समझने की कोशिश करती

रही, अपने को भी।

तुमने अपने हाल के पत्र मे लिखा कि जब तुम और मैं अलग-अलग ज़िन्दगी के आदी हो गये है, तो क्या जरूरी है कि एक होकर रहे ?

मैं यह तो कैसे कहूँ कि जरूरी है, या यह भी कैसे कहूँ कि जरूरी नही है। जो दुविधा या डर तुम्हारे सामने है, वही दुविधा या डर मेरे सामने है।

अच्छा हो कि हम अपनी अलग-अलग तरह से बिताई गई ज़िन्दगी को छान लें और अपने को जांच लें। क्या तुमने जैसा भी किया, जो भी किया, उसमे सतुष्ट हो? तुम ने पहले खत मे ही लिखा था कि मुझ से अपने को स्वतत्र नहीं पा सके इसका मैं यह तो अर्थ निकाल ही सकती हूँ कि बावजूद हर तरह की प्राप्तियो के तुम कही खाली रहे या कसर मे रहे।

मैं जब इस अर्थ को निकाल रही हूँ, उसमें मेरा खुद का अनुभव भी शामिल है। तुम मे हटकर मैंने बहुत कुछ पाया नौकरी की जगह तरक्कियाँ, महत्त्व की जगह महत्त्व, सुविधाओं की जगह सुविधाएँ,अच्छे-बुरे लोगों का साथ, हर चीज जो अपने-अपने दायरो मे मिलती है। फिर भी क्यो महसूस करती रही कि मैं हूँ भी और नहीं भी। बाहरी बहुत कुछ सलीके से चला, लेकिन अन्दर कुछ बँधा ही नही।

ऐसा आज भी लगता है कि मैं जिन घटो और घटनाओ मे जीती हूँ, वह अपने होते हुए भी वास्तव मे दूसरो के होते है। कुछ होता ही नही जिसे अपना कह सकूँ। अपने को देती हूँ, फिर सतर्क होकर सिकुड जाती हूँ।

एक कीर्ति ऐसी मिली जिसने हर भावना देनी चाही पर माँगा कुछ भी नही मुझ से। मैं उसके वश में होती गई और अब वह यह चाहती है कि मैं तुम से जुड जाऊँ।

चाहती तो मैं भी हूँ, लेकिन सोचती हूँ सिवाय खालीपन के है कुछ मेरे पास जो तुम्हे दे सकूँगी! बिना बात की जिद ने सब कुछ तो छीन लिया। एक बिखरी हुई ज़िन्दगी दे दी।

मैं नही जानती मुझे लेकर तुम अपने को किस स्थिति मे पाते हो।

कीर्ति को लिखे गये खत मे तुमने लिखा था इन्कमटैक्स के मिस्टर

सारस्वत तुम्हें दिल्ली बुलाना चाहते हैं। तुम्हारी दुविधा है कि मेरे यहाँ होते हुए तुम आओ या न आओ। मैं नहीं समझती की यहाँ तुम क्यों नहीं आओ। कम्पनी के कामों के जरिये मैं सारस्वत को भी जानती हूँ।

तुम्हारे आने में यहाँ क्या दिक्कत है—अगर दोनों यह महसूस करेंगे कि अपनी-अपनी जिन्दगी जी जाये तो वैसे रहेंगे। अगर ऐसा लगा कि हम साथ रह सकते हैं तो वैसा कर लेंगे।

मेरा खयाल है तुम्हारे खत में उठाए गए दोनों सवालों का जवाब मिल गया है। अपने को टटोलो और निर्णय लो।

तुम्हारी
सीमा

कीर्ति, कैप्टेन साहब, सीमा स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़े हैं, गाड़ी आने वाली है। के सी. सहाय ने तार दिया था कि वह इस तारीख को इतने बजे पहुँच रहे हैं।

सीमा ने पहचाना—मिस्टर सारस्वत भी आए हुए हैं। शायद उनको भी इत्तला दी गई है।

—हलो! हाऊ यू। मिस्टर सारस्वत ने सीमा को देखकर कहा।

—ओ. के.। सीमा ने जवाब दिया। ही इज कैप्टेन आनन्द। शी इज मिसेज कीर्ति आनन्द।

—मी सेल्फ अनिल सारस्वत फ्रोम इनकमटैक्स डिपार्टमेंट। किसी को रिसीव करने आई हैं? सारस्वत ने सीमा से पूछा।

—परचास, उन्हीं को, जिनको आप रिसीव करने आए हैं।

—हाऊ यू! यू मीन के. सी. सहाय को। तुम उन्हें कैसे जानती हो?

—जानती हूँ। सीमा कह गई। उसने, कीर्ति को देखा, कैप्टेन साहब को देखा।

—ही इज ए नाइस मैन। ए गुड फ्रेंड ऑफ मी। हम उनको यहाँ ला रहे हैं। वह बहुत ऑनेस्ट और सिनसियर ऑफीसर हैं।

कीर्ति ने पूछा—कब तक?

मिस्टर सारस्वत ने जवाब दिया—बहुत जल्दी। मैं उसे पहले :

आता। लेकिन उसने हामी न भरकर लटकाये रखा।

—उन्हे जितनी जल्दी बुला लीजिये अच्छा है। एक दिन आप अपने फ्रेंड को किसी और खुशी के साथ भी पायेंगे। कैप्टेन आनन्द ने कहा।

—ऐसा भी हो सकता है? इफ सो, इट विल बी ए गुड न्यूज।

गाडी प्लेटफार्म के सिरे पर घुस चुकी थी। वात बीच मे कट गयी।

सीमा, जो अब तक अपने को मजबूत और बँधी हुई पा रही थी, अन्दर घबराहट महसूस करने लगी। जिस स्थिति का वह साधारणता से सामना करना चाहती थी वह उसे झकझोरने लगी। वह कैप्टेन और कीर्ति के पीछे हो गई कि अपने को सँभाल ले। कीर्ति समझ गई। उसने टोका—सीमा जी !

– हाँ, कीर्ति।

—बी ब्रेव मिसेज सीमा। कैप्टेन ने चलते-चलते कहा।

सीमा ने फिर एक कृत्रिमता ओढी। —ऑल राइट कैप्टेन साहब। और जैसे उसे कोई स्प्रिंग लग गई हो। अब वह सख्त थी और कम्पार्टमेंट देखती हुई चल रही थी। सारस्वत आगे निकल गये थे।

सीमा ने देखा वह सहाय से हाथ मिला रहे है।

—ही इज देयर। सीमा के मुँह मे अंग्रेजी मे निकला। जैसे अंग्रेजी उसकी मजबूती का सबूत हो।

तीनों सहाय के पास पहुँच गए।

सहाय ने सीमा को देखा तो सिटपिटा गया।

—मैं कीर्ति हूँ।

—मैं कैप्टेन आनन्द

—मैं ·

—सी इज माई मिसेज सीमा। मिस्टर सारस्वत। सहाय ने सारस्वत को जैसे सीमा से परिचय करवाया हो।

—क्या ? सारस्वत आश्चर्य से सीमा को देखने लगे।

वही ताज्जुब मे नहीं थे, बल्कि कीर्ति, कैप्टेन और सीमा तीनों धक्का खा गये थे। लेकिन सब मुस्कराहट ओढे रहे।

—आपने नही बताया। सारस्वत ने सीमा से पूछा।

—मैंने तो बता दिया—सहाय ने स्थिति को सँभाला। चलिये बाहर तो चला जाए।

अटैची और बिस्तर कुली से उठवाकर सब बाहर आए।

—कब मिलोगे? सारस्वत ने सहाय से पूछा।

—कल मिला जाये। ऑफिस में। फिर आपके हाथ में होऊँगा।

—आल राइट। भई सबको नमस्ते। सारस्वत अपनी कार की तरफ चले गये।

किधर चलना है मिस्टर सहाय? अब जैसे कीर्ति को मौका मिला।

—किसी होटल में ठहराने का इरादा है? सहाय ने मजाक किया। फिर कैप्टेन साहब से बोले—एक्सक्यूज मी कैप्टेन।

सीमा चुप थी। वह तब से बेजबाव हो गई थी जब से सहाय ने सारस्वत को उसका परिचय अपनी मिसेज कहकर दिया था। यह इस तरह अप्रत्याशित हुआ था—या सहाय द्वारा किया गया था—कि वह डरी चिड़िया-सी हो गई थी। वह तो सहाय को पूरी आँख देख तक नहीं सकी।

कीर्ति ने फिर अपनी बात दोहराई—मेरा मतलब है किस घर चलना है? कीर्ति के या सीमा जी के?

—कीर्ति! सीमा के मुँह से अनायास चीख-सी निकल गई। उसे अपने पर उसी क्षण शर्म आई।

—मैं क्या कहूँ सीमा जी! मिस्टर सहाय ने उतरते ही सारे निर्णय तो अपने हाथ में ले लिए।—कीर्ति ने कहा।

कैप्टेन ने कीर्ति की बात का समर्थन किया। सीमा जी, क्यों न हम आप दोनों को आप के घर पहुँचा दें, फिर शाम का डिनर आप हमारे यहाँ लें। क्यों मिस्टर सहाय?

—शायद आप ठीक कह रहे हैं। सहाय ने जवाब दिया।

—लेकिन मैंने ऑफिस को इन्फोर्म नहीं किया है। सीमा घबराकर बोली।

—वह तो हो सकता है किसी भी जगह से फ़ोन के जरिये। सहाय बोले। सीमा की अन्दर से तेज़ आवाज़ निकलने वाली थी—नो! नो!

लेकिन वह नही निकल सकी। वह खामोश रह गई जैसे इसके अलावा उसके लिए कोई चारा नही था।

—फिर देर क्यो करें। चलें। कैप्टन ने कहा।

—टैक्सी ड्राइवर सवारी खीच रहे थे। सर इधर'मेम साहब इधर। कई सरदार-वे-सरदार एक साथ चारों के पोर्टिको के बाहर निकलते ही आ गये। कैप्टेन ने जगह और रूट बताया। किराया तय हो गया।

टैक्सी चल दी।

जब तक कीर्ति और कैप्टेन आनन्द सीमा के फ्लैट में रहे खुशी और उत्साह का माहौल रहा। सहाय कैप्टेन से इधर-उधर की बात करते रहे। कीर्ति सीमा के साथ काम करती रही। सीमा ने नीचे वाले पड़ोसी के नौकर को भेजकर पार्वती को बुलवा लिया था। पार्वती रसोई का काम कर रही थी।

सब ने साथ में हैवी नाश्ता लिया, उसके बाद शाम के खाने पर आने की दोबारा याद दिलाते हुए कीर्ति और कैप्टेन चले गये।

सीमा को अब लगा कि स्थिति कितनी गम्भीर हो गई है। वह है, मिस्टर सहाय है, पार्वती है। पार्वती ने अभी तक नहीं पूछा है कि बीबी जी आपके यह रिश्तेदार मेहमान कहाँ से आए हैं? अगर पार्वती ने पूछा तो क्या सीमा को झूठ बोलना होगा? या फिर क्या सच बोलना होगा?

यह भी तो नहीं पता कि सहाय कितने दिन रहेंगे। यह भी तो विश्वास नहीं है कि वह पार्वती के सामने ऐसा कुछ कह जायें जो उसकी कही को ही काट दे।

सीमा ने सोचा ही नहीं था, सहाय उसके यहाँ ठहरेंगे। हालांकि जितना वह स्टेशन पर डर गई थी वैसी हालत तो नहीं है, फिर भी उसे लग अजीब-सा रहा है।

उसे लग रहा है जैसे उसके फ्लैट के दो हिस्से हो गये हैं बाहर किराये-दार की तरह सहाय लेटे हैं, अन्दर के हिस्से में वह है।

वह सोचती है कब तक मुँह चुराता रहेगी, आखिर तो सामने होगी ही।

यह क्या अच्छा लगता है कि वह बाहर रहे और वह मामूली शिष्टा-

चार भी नहीं निभाये। सफ़र से आए है, हो सकता है नहाना चाह रहे हों या किसी चीज़ की जरूरत ही हो।

सीमा, जब स्टेशन गई थी तब उसमे कही एक तीव्र इच्छा थी कि वह देखें तो कि इतने साल बाद सहाय कैसे लगते है? कही यह भी इच्छा थी कि वह अपने को भी दिखाये कि वह ऐसी है।

लेकिन जो कुछ भी स्टेशन पर हुआ—यहाँ आने तक—उसने उसको हर कदम की कशमकश मे ही नहीं डाल दिया, वह अन्दर से ठन्डी भी हो गई।

क्या यह वही सीमा है कम्पनी की ऑफिस मे अपनी टेबुल पर बैठी हुई?

वह यह नही समझ पा रही है कि हर तरह का दिखावा ओढ सकने वाली वह इस वक्त अपने को तटस्थ, अतरगता का दृष्टि से विशेष लगाव न दर्शित करने वाली, क्यों नहीं बना पा रही है।

—बीबी जी, खाना क्या-क्या बनेगा? पार्वती ने पूछा।

—उनसे पूछ लूँ तो ठीक रहेगा! उसने पार्वती को जवाब दिया और यह मानकर कि किसी भी कैसी भी, हिचक को तोडना होगा—वह जैसे दिमाग को झटका देकर, बाहरी कमरे मे आई।

उसने पाया सहाय सोफे पर आधे लेटे-से आराम कर रहे हैं। उनकी आँखें मुँदी हुई थी।

—सो, रहे है? वह जानती थी कि सो नही रहे है, पर पूछा यही।

—नहीं, बस यूँही आँखे बद कर रखी थी। सहाय सँभलकर बैठ गये।

—पक्का खाना पसन्द करेंगे या कच्चा? नौकरानी पूछ रही थी।

—इस वक्त का टालना चाहूँगा। काफी भारी नाश्ता हो गया।

—हल्का बनवा लेती हूँ, घटे-दो घटे मे भूख लग जायेगी, नहाना चाहे तो नहा लीजिए।

—हाँ, नहाना तो चाहूँगा। सहाय ने हाथ फैलाये, कि सुस्ती कम हो। फिर अटैची, जो दीवार से सटी होलडोल पर रखी थी, उठा लाये और सामने की मेज पर रखा। खोलकर तौलिया, पजामा-कुर्ता, शेविंग तथा ब्रश-पेस्ट का पर्स निकाल लिया।

—मैं पानी का इन्तजाम करती हूँ।

सीमा अन्दर गुसलखाने मे गई, नल खोलकर बाल्टी नीचे लगा दी। पार्वती को बताया कि दाल, चावल और सूखी सब्जी बना ले। एक बार इतनी बात कर लेने के बाद उसे लगा कि सामान्य हुआ जा सकता है।

—आइये, बता दूँ। उसने सहाय को साथ लिया और गुसलखाने तक ले आई।

अब वह क्या करे? अजीब-सी बात है। वह यही नही जान पा रही है कि क्या करे?

उसने सोचा ड्रेसिंग टेबुल की चीजें सँभाल कर लगा दूँ। फिर इसके साथ खयाल आया अगर इन्होने दोपहर मे सोना चाहा तो?

उसके यहाँ तो एक ही पलँग है, वह उसका है। सोफा भी ऐसा नही है कि खुलकर बेड बन सके। हद है उसके अपने द्वारा जुटाई गई चीजों की। उसने यही नही सोचा कि कोई कभी उसके यहाँ आ भी सकता है—और रह भी सकता।

लेकिन उसने इस खयाल को अपने मे ही यह तर्क देकर बेकार साबित किया कि उसके यहाँ आना ही कौन था? और वह किसी का रहना और ठहरना बर्दाश्त भी कब करती थी। वह तो इस तरफ मे वैसे भी बड़ी सतर्क थी। बल्कि वह ऐसी छूट किसी को दे ही नही सकी कभी।

उसने तय किया कि अगर उन्होंने सोना चाहा तो वह अपना पलँग दे देगी, खुद बाहर के कमरे मे आराम कर लेंगे। लेकिन उसे यह निर्णय भी अखरता-सा लगा। उसका पलँग तो सिर्फ उसका रहा है। उसमे सिर्फ उसके ही देह की गंध बसी है। उस पर कोई दूसरा आदमी आज पहली बार लेटेगा।

यूँ तो हर चीज उसकी है और उसके लिये रही है। इसके क्या मतलब?

वह सोने के कमरे मे घुसी, ड्रेसिंग टेबिल सँभाली, बिस्तर ठीक किया। अन्दर उठा कि वह अपना बिस्तर हटा ले, सहाय का बिछवा दे।

उसे अपने पर ही ताज्जुब हुआ कि जरा-जरा-सी बात को वह इतनी

नून-मेख और बारीकी के साथ क्यों ले रही है ?

यह भी तो हद की एकाग्रिता और अति है ?

सीमा को लग रहा है कि वास्तव में वह कहीं से छिज रही है, जो उसे तटस्थता तक अपनाने में बाधा पहुँचा रही है। कभी कुछ सोचती है, कभी कुछ।

यह स्थिति क्यों बनी ? इसके लिये वह तो तैयार नहीं थी ?

क्या यह तैयार थे ? क्या के सी वहीं से तय करके चले थे कि ऐसी स्थिति लायेंगे ? क्या वह कहीं किसी बिन्दु पर निर्णय से लैस होकर चले हैं, जो इतने सहज हैं ?

सीमा को इस बात पर भी गुस्सा आया। निर्णय वह कैसे ले सकते हैं, या उन्हें क्यों सिर्फ अपनी तरफ से निर्णय लेना चाहिए, जबकि मैं भी उसकी एक पक्ष हूँ और जिस पर निर्णय का सीधा असर पड़ना है। क्या यह वही अधिकार और अपनी अहमियत को रखने की भावना नहीं है जिस से मुझे चिढ़ रही है। यह चिढ़ तो अब भी है ! यही तो जड़ थी ज़िन्दगी के टूटने-बिखरने की।

तभी जैसे उससे, उसी के किसी दिमागी हिस्से ने सवाल किया — यह तू सोच रही है या उन्होंने ऐसा सोचा है ? अपने आप ही उनको भी सोच रही है और अपने को भी ! दोनों तरफ़ खुद खड़ी है।

गुसलखाना खुला तो जैसे फिर उसे धक्का लगा। लेकिन वह बाहर आई।

— बाल-वाल इधर काढ लीजिए।

महाय उसके पास से निकल कर कमरे में आए। कमरा देखा, फिरे, ड्रेसिंग टेबिल के सामने खड़े होकर बाल काढ़ने लगे।

सीमा दरवाजे के बीच में खड़ी उनको देख रही थी।

उसे यह क्यों लग रहा है कि उसने उनको अभी तक पूरी तरह देखा नहीं कि वह कैसे लगते हैं—जबकि आखिर तो वह स्टेशन से अब तक उनको देख ही रही है। ठहरता क्यों नहीं कुछ आँखों में ? दिमाग ले क्यों नहीं पा रहा है उनका कोई अक्स ?

—कुछ लेते तो होंगे नहाने के बाद? उसने अपनी जगह खड़े-खड़े पूछा।

—इस वक़्त किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। उन्होंने सीमा को देखा। सीमा फिर नज़र नहीं मिला पाई।

—अब क्या करना होगा। नहाना भी हो गया? उन्होंने सीमा से सवाल कर दिया।

—आराम करना चाहें तो आराम कर लीजिए। पढ़ना चाहें तो...

—चलो, थोड़ी देर बैठें। काम तो नौकरानी कर रही है। सहाय ने सीमा की बात काट कर अपना सुझाव रख दिया।

—चलिए, मैं आती हूँ।

सहाय बाहर के कमरे में आ गए। अटैची में पर्स रखा, फिर उसे बंद करके होलडोल पर रख दिया। बैठ गये सोफ़े पर।

सीमा जिस स्थिति को टाल रही थी, वह फिर आ गई। आई क्या लाई गई। फिर सहाय ने पहल कर दी। और अब वह फिर नहीं बच सकती।

आना पड़ा। सामने बैठ गई। पर चुप। अन्दर के दरवाजे की तरफ़ देखती हुई।

—तुम इतनी घबरा क्यों रही हो? सहाय ने पूछा।

—आपने स्थिति जो ऑड कर दी।

—यहाँ आने से?

—इससे भी पहले, मिस्टर सारस्वत को मेरा परिचय देते हुए।

—ओह, वो। वो तो परिस्थिति ऐसी सामने आई। मैं खुद तुम्हें देखकर गड़बड़ा हो गया। मुँह से अपने आप निकल गया। एक बात और। क्या तुम्हारे अनुसार मुझे सारस्वत से छिपाना चाहिए था। जबकि हफ़्ते-डेढ़ हफ़्ते में ही मुझे यहाँ ट्रांसफर होकर आना है। क्या तुमने नहीं लिखा था कि सारस्वत को तुम जानती हो।

—मैं उस वक़्त तो इसके लिए तैयार नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि आपको कीर्ति के यहाँ ठहरना था, यहाँ आ गये।

—सीमा, यहाँ मैं जानकर आया।

—क्यों? सीमा ने अब उनकी तरफ़ देखा।

—मैं अपनी तरफ़ से किसी अन्डरस्टैंडिंग तक पहुँचना चाहता था।

यहाँ के अलावा किसी तीसरी जगह बात ऊपरी होती।

—जो पूछना चाहते हैं, पूछते जाइये? मैं जवाब देती जाऊँगी।

—तुम कुछ पूछना नही चाहती? सहाय ने उल्टा प्रश्न कर दिया।

—चाहती तो हूँ, बहुत कुछ जानना, लेकिन समझ मे नही आता क्या जानूँ? क्या पूछूँ।

—मेरी समझ मे आता है। इसीलिए मैंने यहाँ रहना प्रिफ़र किया।

—लौटना कब है? सीमा के मुँह से निकल तो गया, लेकिन उसे महसूस हुआ कि उसे नही पूछना चाहिए था।

—कल शाम को। मैंने अपने हाथ में सिर्फ आज का दिन, आज की रात रखी है। तुम्हे जबर्दस्ती सो नही लगती।

—मुझे माफ़ करना के. सी., मैं यह नही कह सकती कि मुझे कैसा लग रहा है। यह भी नही कह सकती कि अगर तुम कीर्ति के यहाँ रहते तो कैसा लगता। हालाँकि चाहती यही थी कि तुम वहाँ ठहरो। जब से तुमने मुझे देखा है, क्या तुम अजीब-सा कुछ अपने में नही पा रहे हो?

—पा रहा हूँ। लाजिमी भी है। लेकिन तुम्हारी तरह से घबराहट नही है। किस बात की घबराहट? क्या कहीं तुम अपने को गिल्टी तो नही ठहरा रही हो?

—नही, मैं ऐसा नही पाती। इस सम्बन्ध मे जब भी मैंने सोचा है दोनों को गलत करार किया है—तुम्हें भी, अपने को भी। अगर दोनों जिद पर न आते तो क्या ऐसी जिन्दगी होती।

—तो सीमा, फिर तुमने इतना बचाव क्यों लेना चाहा। शायद इसलिए कि कही मैं तुम्हारे पर हावी न हो जाऊँ—तुम अनचाहे, मेरे पुरुष होने के नाते, वैसा कुछ न स्वीकार कर लो, जो तुम नही चाहती।

सहाय बहुत ठंडे ढंग से बोल रहे थे, लेकिन सीमा जैसे चुभन खाकर आवेश में आ जाती थी। हावी होना, पुरुष होना जैसे शब्द उसे नश्तर से लगे।

—माफ करना के. सी.! हावी कोई तब होता है, जब दूसरा हावी होने देता है, वरना यह आतंक होता है। मुझे दोनों हालतों का अनुभव है। मैंने भी अपनी बाहरी जिन्दगी मे इस्तेमाल किया है—जानकर किया है।

कीर्ति मुझ पर एक तरह से हावी हुई—शायद तुम पर भी—क्योंकि मैंने होने दिया, तुमने भी कहीं उसे माना। मुझे अगर चिढ़ है तो आतंक से, वह मेरे लिए चुनौती की तरह खड़ा हो जाता है। 'फोर गोड सेक' इसका नाम मत लेना, वरना ..सीमा का चेहरा लाल हो गया था। सहाय तनाव को भाँप कर भी पहली-सी सहजता में रहे।

—मैंने कहा था न सीमा, बात सिर्फ़ सवाल-जवाब, सिर्फ़ बचाव और शिकायतें हमें उसी जगह छोड़ देंगी, जहाँ हैं। फिर एक तरफ़ अपनी-अपनी ज़िन्दगी होगी, आज़ादी की, बिखराव की, और तलाश होगी अपनत्व की, अपने को देने और पाने की। और यह हमने पिछले सालों में भी नहीं पाया, आगे भी नहीं पा सकेंगे। बराबरी का दावा साथ-साथ चलने में भी हो सकता है, अकेले दौड़ने-थकने में भी। एक को तुम भी जी चुकी, मैं भी। लेकिन दूसरे को अपनाने से तुम भी डर रही हो, मैं भी।

—हाँ, के. सी. यह डर है। यह डर बिना अर्थ के नहीं है। यह अंदर घुसा है। बराबरी के दावे के साथ अब यह और ख़तरनाक हो गया है।

सहाय ने बीच में ही टोक दिया—छोड़ दो इसे खोदना सीमा! वह एक ऐसा संस्कार है जो बराबरी देना चाहता ही नहीं। साथ-साथ चलना तो चाहता है लेकिन बराबरी और बर्दाश्त के साथ नहीं। इसीलिए मैंने यहाँ रहना तय किया। ताकि हम समझ सकें क्या खोया? क्या पाया?

—और यह क्या ज़रूरी है कि समझ के बाद भी फिर वही न हो, जो पहले हो चुका है? खोने को तो सब कुछ खो दिया के. सी.। एक औरत होती है, एक माँ होती है, एक परिवार होता है—मैं सब खो चुकी। इसके लिए बहकती हूँ, दूसरों पर ठहरती हूँ, फिर सिकुड़ जाती हूँ। दूसरों का हक़, दूसरों का होना है। क्या यह मिलेगा? क्या पा सकूँगी? क्या तुमने इसकी भी ज़रूरत का एहसास किया?

सीमा की आँखें छलछला आई थीं। सहाय स्तम्भित से रह गये थे। उनमें कमज़ोरी आई कि वह सीमा तक पहुँच जायें। उसे दिलासा दें। लेकिन वह वैसे-के-वैसे बैठे रहे। यह अभाव उनका भी था। उन्होंने भी जब-तब इस टीस को महसूस किया था। उस अकेलेपन में उनको भी लगता था कि उनके बँटने के लिए कुछ भी नहीं है।

—के सी. मुझे उठने दो। जो खो गया, वह लौट नही सकता। उसकी जिम्मेदार मैं होऊँ या तुम, वह मिल नही सकता। इधर भी पछतावा है, उधर भी एक फांस रडकती रहेगी—चाहे हम कितना ही एक हो जायें। कितने ही बराबर होकर चल लें।

सीमा उठी और अन्दर चली गई। सहाय जैसे हारे-से बैठे रह गये।

फिर एक अन्तराल। एक ख़ामोशी। जैसे दोनों ने वक्त को बीच मे डाल दिया हो कि आवेे और पछतावों को बैठ जाने दे। सहाय शान्त हो लें। सीमा अपने पर काबू पा ले। जो छूट गया, वह तो बहुत पीछे रह गया। क्या वह जिन्दगी को तय पाने का बिन्दु बनेगा आगे की जिन्दगी का?

पार्वती ने खाना तैयार कर लिया। वह अन्दर के कमरे मे आई। उसने देखा बीबीजी पलँग पर लेटी है। वह सुस्त है। इतना तो वह पहचानती है कि उसकी बीबीजी जब खुश होती है तो कैसी रहती है। जब उन्हे चिन्ता होती है तो कैसी चुप-चुप रहती हैं।

—बीबीजी, खाना तैयार है मेज पर लगा दूँ? गरम-गरम रोटी बनाती जाऊँगी।

—हूँ। सीमा चौंक गई।

—बीबीजी, यह कौन आए है? आप ऐसी कैसे हो रही हो? पार्वती ने अपनेपन से पूछा।

—कैसी भी नही। सीमा अपने को छिपाने के लिए फौरन बैठ गई। साथ मे सवाल भी पी गई।

—लगा दो! तुम्हे भी तो देर हो रही होगी। आज दोबारा आना पड़ा। शाम को मत आना, हमें कैप्टेन साहब के यहाँ खाने पर जाना है।

पार्वती लौट गई। वह समझ गई, बीबीजी ठीक मूड मे नही है। वह मालिकिन के उखड़ेपन को भी पहचानती है। कभी वह ऐसे वक्त चुप रह जाती है, कभी बोलकर मालिकिन को लाइन पर ले आती है। मौके-मौके की बात है।

सीमा बैठ तो गई, लेकिन ऐसा लग रहा था जैसे वह लस्त हो गई

है। जैसे ताक़त नहीं रही शरीर में। वह पडी-पडी सोच रही थी, उसने कितना कडवा सच के सी के सामने फेंक दिया। ऐसे फेंक दिया जैसे सारा दोष के. सी. का हो। वही उसके लिए जिम्मेदार हो। उलट-पलट के सोचते-सोचते वह इस नतीजे पर पहुँच गई कि उसे इस तरह के सी. से पेश नही आना चाहिए। अगर वह कोई समझ ढूंढ रहे है तो उसे भी उसके नजदीक पहुँचना चाहिए। लेकिन कैसे पहुँचे यही तो सवाल है?

सीमा उठी, ड्रेसिंग टेबिल तक आई। अपने को सँभालने लगी—ऊपर से भी, अन्दर से भी।

—चलें, खाना खा लें। उसने सहाय से कहा।

सहाय कोई किताब पढ रहे थे। किताब रखकर खडे हो गए।

—आई एम वेरी सॉरी के सी। सीमा ने उनको देखते हुए कहा।

—कोई बात नही है। तुमने जो कहा वह सच ही तो है। सहाय ने सीमा की तरफ नजर उठाई। उन्हे लगा सीमा की आँखो मे एक पिघलाव है। एक अपनापन है।

—चलो! उन्होंने जैसे सीमा को सजग किया हो, खुद सजग हुए हों।

दोनो मेज़ पर आ गये, जहाँ पार्वती ने प्लेट्स और डोंगे पहले से लगा रखे थे।

सहाय ने शैंक मे हाथ धोये—सीमा ने भी। दोनों कुर्सी सँभालकर बैठ गये।

पार्वती ने गरम-गरम रोटियाँ लाकर रख दी।

खाते-खाते कीर्ति की, कैप्टेन की, सारस्वत की, कम्पनी की, अखबार मे छपी खबर की जिसे सीमा ने पढा था, सहाय के अपने काम की, दिल्ली की व्यस्त जिन्दगी की, सिनेमा की बातें हुई। जैसे भी बात-से-बात जुडी या संदर्भ बना। और टेबिल पर ही यह प्रोग्राम तय हुआ कि थोड़ी देर आराम करने के बाद मैटनी शो देखा जाये, बाद मे कीर्ति के यहाँ चले-चलेंगे।

पिक्चर देखने का प्रस्ताव सहाय की तरफ से था। सीमा को सुझाव अच्छा लगा। उसने हामी भर दी। शायद दोनों यह महसूस कर रहे थे कि जो तनाव उनके बीच आ गया है, उसे चुप्पी, या दूसरे सहारे ही हटा सक्ते हैं। जैसे पिक्चर, जैसे कीर्ति और कैप्टेन आनन्द के यहाँ जाना।

अपने से हटकर भी तो अपने तक पहुँचा जा सकता है। कभी-कभी तो अपने को खोया भी जा सकता है।

सीमा भी जानती थी। सहाय को भी तजुरबा था।

—कैसा लगा पिक्चर—सहाय ने टैक्सी में बैठे हुए पूछा। टैक्सी कैप्टेन आनन्द के बंगले की तरफ जा रही थी। वक़्त सात के करीब था। दुकानों की और कारों की रोशनियाँ चमक रही थीं।

—अच्छा था। सीमा ने जवाब दिया।

—कितने अरसे बाद ऐसा मौका आया कि दोबारा साथ पिक्चर देखा। सहाय बोले।

—दूसरों के साथ तो देखते ही [illegible] एक मिस्टर मिश्रा हैं। उनको यही शौक है कि वह मे [illegible] देखें। मैं भी [illegible] जाती रही हूँ।

आये हो कि मुझे अपने साथ ही रखोगे। और इसके लिये मुझे तैयार करोगे ?

सहाय ने अपनी चौंक को काफ़ी तेज़ हँसी के साथ उड़ा दिया। बोले—तुम अभी भी बहुत कुछ पहली-सी हो। साफ, निश्छल।

क्या मैं इन्कार कर दूँ कि यह तय करके नही आया हूँ। यह तय नहीं करता तो सारस्वत से हामी क्यों भरता ? किसी को तो पहल करनी थी।

सीमा फिर बे-जवाब हो गई। उसकी हिम्मत नहीं हुई कि के. सी. को देख सके। अब तो साफ़-साफ सहाय ने सारी बाज़ी उसके हाथ में दे दी। वह 'ना' करे, या 'हाँ'।

टैक्सी चलती रही, पर फिर जैसे बात टूट गई। पिक्चर से उठी, तो उन दोनों के बीच में किसी बंद पुड़िया-सी गिर गई।

कौन उठाये ? कौन खोले ? कौन देखे कि उसमें क्या है ? रतनजोत या राख ? या उसके अन्दर क्या लिखा है—हाँ, हाँ, हाँ। या ना, ना, ना।

सीमा एक बात से चकरा रही है। सहाय सिक्के को उछालते हैं और उसकी गोदी में फेंक देते हैं। वह यही नही पढ़ पाती की 'हेड' है या 'टेल'। या वह यही नहीं समझ पाती कि उसने 'हेड' माँगा था या 'टेल'। और समझती भी है तो फिर उलझ जाती है।

टैक्सी कैप्टेन आनन्द के बगले तक पहुँचकर रुकी। सहाय ने पेमेन्ट किया।

—एक बात और है सीमा। सहाय चलते-चलते बोले।

सीमा चुप रही। चलती रही।

—हम सब को मौक़े को ओढ़ना तो अच्छी तरह आता है। सहाय ने कहा।

—मैं समझती हूँ। सीमा ने जवाब दिया।

अब वह बरामदे में थे। सीमा ने सहाय को पत्थर की वह मूर्ति दिखाई जो उसे अच्छी लगी थी।

—देखो टूटी होने भी कितनी आर्टिस्टिक है। सीमा ने उछाह के साथ कहा।

—हमारी-तुम्हारी ज़िन्दगी की तरह। सहाय खट से बोले।

अपने से हटकर भी तो अपने तक पहुँचा जा सकता है। कभी-कभी तो अपने को खोया भी जा सकता है।

सीमा भी जानती थी। सहाय को भी तजुरबा था।

—कैसा लगा पिक्चर—सहाय ने टैक्सी में बैठे हुए पूछा। टैक्सी कंप्टेन आनन्द के बंगले की तरफ जा रही थी। वक्त सात के करीब था। दुकानों की और कारों की रोशनियाँ चमक रही थीं।

—अच्छा था। सीमा ने जवाब दिया।

—कितने अरसे बाद ऐसा मौका आया कि दोबारा साथ पिक्चर देखा। सहाय बोले।

—दूसरों के साथ तो देखते ही रहे हैं। यहाँ एक मिस्टर मिश्रा हैं। उनको यही शौक है कि वह मेरे साथ पिक्चर देखें। मैं भी उनके साथ जाती रही हूँ।

—कुछ तो पाती रही होगी? सहाय ने मुस्कराकर पूछा।

—इसकी तो छोड़ो। यूँ तो जो भी करती रही, उसे जबर्दस्ती में तो किया नहीं। इतने सालों में जो तुमने किया, जो मैंने किया, उसमें मर्जी तो रही ही होगी। चाह भी। लेकिन...

—हम फिर कहीं पीछे की तरफ न बढ़ जायें। सहाय ने टोका—सीमा, हमें पिछली हर बात को दूर रखना होगा। जो बीत गया उसे बीता ही रहने देना होगा। अगर यह साथ चला तो दोनों को वक्त-वक्त पर परेशान करेगा।

—ऐसा हो सकेगा? क्या यह सम्भव है के. सी.। सीमा ने फिर सहाय को उसी दृष्टि से देखा जो पिघली हुई थी।

—हाँ, हो सकेगा। अगर हम अपने आवेशों से ज्यादा, अपनी समझ को ऊपर रखें। दूसरे को समझाने का दावा करने के साथ-साथ अपने को भी बदलते रहने के लिये तैयार रहें। सहाय आत्म-विश्वास के साथ बोल रहे थे। उनमें उपदेश नहीं था लगाव था।

सीमा ने अपने सवाल से एकदम चौंका दिया उनको। बल्कि झटका-सा दिया—के. सी., तुम साफ क्यों नहीं कहते कि तुम यह निर्णय करके

आये हो कि मुझे अपने साथ ही रखोगे। और इसके लिये मुझे तैयार करोगे?

सहाय ने अपनी चौंक को काफ़ी तेज़ हँसी के साथ उड़ा दिया। बोले—तुम अभी भी बहुत कुछ पहली-सी हो। साफ़, निश्छल।

क्या मैं इन्कार कर दूँ कि यह तय करके नहीं आया हूँ। यह तय नहीं करता तो सारस्वत से हामी क्यों भरता? किसी को तो पहल करनी थी।

सीमा फिर बे-जवाब हो गई। उसकी हिम्मत नहीं हुई कि के. सी. को देख सके। अब तो साफ़-साफ़ सहाय ने सारी बाज़ी उसके हाथ में दे दी। वह 'ना' करे, या 'हाँ'।

टैक्सी चलती रही, पर फिर जैसे बात टूट गई। पिक्चर से उठी, तो उन दोनों के बीच में किसी बंद पुड़िया-सी गिर गई।

कौन उठाये? कौन खोले? कौन देखे कि उसमें क्या है? रतनजोत या राख? या उसके अन्दर क्या लिखा है—हाँ, हाँ, हाँ। या ना, ना, ना।

सीमा एक बात से चकरा रही है। सहाय सिक्के को उछालते हैं और उसकी गोदी में फेंक देते हैं। वह यही नहीं पढ़ पाती की 'हेड' है या 'टेल'। या वह यही नहीं समझ पाती कि उसने 'हेड' माँगा था या 'टेल'। और समझती भी है तो फिर उलझ जाती है।

टैक्सी कैप्टेन आनन्द के बंगले तक पहुँचकर रुकी। सहाय ने पेमेन्ट किया।

—एक बात और है सीमा। सहाय चलते-चलते बोले।

सीमा चुप रही। चलती रही।

—हम सब को मौके को आँकना तो अच्छी तरह आता है। सहाय ने कहा।

—मैं समझती हूँ। सीमा ने जवाब दिया।

अब वह बरामदे में थे। सीमा ने सहाय को पत्थर की वह मूर्ति दिखाई जो उसे अच्छी लगी थी।

—देखो टूटी होते भी कितनी आर्टिस्टिक है। सीमा ने उत्साह के साथ कहा।

—हमारी-तुम्हारी ज़िन्दगी की तरह। सहाय झट से बोले।

—प्लीज, के. सी. ! डोन्ट स्टिंग ! कहते हो मैं ज्यादा हिली हुई हूँ, और तुम ?

—सॉरी, सीमा। सहाय ने सोचा, अनजाने में ऐसा क्यों निकल जाता है, जिसे नहीं आना चाहिए मुँह पर।

सीमा ने बेल बजाई। अन्दर से कीर्ति और बच्चे एक साथ आए। दरवाजा खुलते ही नीरा और अमिताभ दोनों चिपट गये सीमा से।

कान खा रहे हैं दोनों छः बजे से। मम्मी, आन्टी कब आएँगी? कब आएँगी। कीर्ति बोली।

—कैप्टेन साहब कहाँ हैं? सहाय ने सोफे पर बैठते हुए पूछा।

—अभी आ रहे हैं। जरा मार्केट तक गये हैं।—कीर्ति ने जवाब दिया।

नीरा और अमिताभ में फिर वही गोदी में बैठने का झगड़ा शुरू हो गया। सीमा दोनों से उनकी स्कूल की, दोस्तों और सहेलियों की बातें पूछ रही थी। सहाय ने पहले कमरे की सजावट को एक नजर में देखा, फिर सीमा को बच्चों के साथ देखने लगे।

—कहिये, कैसा प्रोग्राम रहा दिन भर का? कीर्ति ने सहाय साहब को छेड़ा।

वह तो आपको थोड़ी देर बाद पता चल जायगा। डोर सँभाल कर घुमाने वाली तो आप ही हैं। सहाय ने जस-का-तस जवाब दिया।

—तभी तो हमारे यहाँ ठहरने के बजाये वहाँ ठहरे। यह भी शायद मैंने कहा था। कीर्ति ने फिर चुटकी ली।

सीमा सुन रही थी, पर अपने को बच्चों में इस तरह मशगूल दिखा रही थी जैसे उसे इन बातों से कोई मतलब नहीं।

—आप तो बहुत कह चुकी हैं। इतना कह चुकी जितना को उसने नहीं कहा, जिसे कहना चाहिए था। वकील एक, दोनों पार्टी का मुख्तारनामा और खुद ही जज। हम भी इन्कमटैक्स के केसों का निबटारा करते हैं, लेकिन आपकी तरह नहीं।

—तभी तो वकील को एक तरफ टालकर सारा केस अपने हाथ में ले लिया। दूसरी पार्टी न्याय की तो आशा क्या कर सकती है। क्यों सीमा

जी, न्याय मिला ? कीर्ति ने सीमा को लपेटा।

—तुम जानो, तुम्हारे जज जाने। मुझे क्यों घसीटती हो अपने दोनों के बीच में।

—क्यों अमिताभ ?

—यस ! आन्टी जी—अमिताभ बोला। उसे क्या पता उसने अपनी बात पर 'यस' कहा, या मम्मी की बात पर।

क्यों नीरा ? सीमा को मजा आया अमिताभ के जवाब पर।

—नो—नीरा ने जवाब दिया।

—नो—क्यों ? यस क्यों नहीं। सीमा ने उसकी ठोडी के नीचे उँगली रखकर पूछा।

—इसने 'यस' क्यों कहा। नीरा ने अमिताभ की तरफ उंगली का इशारा किया।

तीनों खिल-खिलाकर हँस पड़े—सहाय, कीर्ति, सीमा।

बाहर स्कूटर रुकने की आवाज़ आई। कीर्ति बाहर गई। सामान में सहारा देने।

दोनों अन्दर आए—सॉरी फौर एक्सेसेस। यह फालतू के काम भी करने पड़ते हैं मिस्टर सहाय।

—जी, जैसे आप ही तो करते हैं। कीर्ति ने फौरन जवाब दिया।

—नहीं, सहाय साहब, सिर्फ यही करती है। देखिये न, बिचारी कितनी दूर से सामान ला रही है। मुझ से कहा आप अकेले जाइये—पता नहीं वे लोग आ जाएँ। एन्ड पुवर क्रीचर हैड टु गो।

फिर सब हँस दिये। कीर्ति और कैप्टेन सामान लेकर अन्दर चले गये। नीरा और अमिताभ पापा-मम्मी के पीछे भागे—जानने कि उनके लिये क्या आया है।

—देखा आपने ! अब की सीमा के मुँह से अचानक निकल गया। फिर उसे शर्म भी आई।

तुमने भी तो शायद देखा। कीर्ति ने जो तुमसे और मुझ से हक लिया है, उसके लिये वह डिजर्व करती है। सहाय के चेहरे पर सीमा को एक स्नेह दीखा। एक स्वप्न-सा।

के. सी., एक सच बात बताऊँ। मैंने कीर्ति को जब पहले दिन देखा था, तभी वह मुझे बहुत अच्छी लगी। उसके बाद वह मुझे मेरा ही रूप लगने लगी। मैंने कई बार ऐसा महसूस किया, महसूस ही नहीं किया बल्कि ऐसा पाया कि कीर्ति वही है जो मैं पहले थी। तब, जब मैं तुम्हारे पास आई थी। ऐसा क्यों लगा? फिर यह कीर्ति मुझ में इतनी गहरी क्यों उतर गई कि मैं इसके वश में हो गई?

तुम्हीं ने तो कहा था हावी होने दिया जाता है, कोई होता नहीं। तुम्हीं ने तो लिखा था कीर्ति ने लेना नहीं चाहा, सिर्फ देना-देना चाहा। इसमें किसी व्यावहारिकता या नकलीपन को ओढ़ना नहीं होता।

हाँ, के सी। कोई जगह तो ऐसी हो जहाँ नकलीपन न रखना पड़े। गलतियाँ और कमियाँ भी सही जा सकें सुधारी जा सकें। लेकिन अगर कृत्रिमता-ही-कृत्रिमता जीवन का तरीका...

भाई, अब छुट्टी मिली। कैप्टेन के घुसते ही सीमा चुप हो गई। जैसे होंठ सिल गये हों। *लेकिन उसे बहुत बेचैनी-सी महसूस हुई।*

—मैं अन्दर जाऊँ? कीर्ति के साथ काम करवा लूँ। सीमा खड़ी हो गई। उसने हाँ के जवाब का इन्तज़ार भी नहीं किया।

—क्यों आ गई। वहीं बैठती। कीर्ति ने कहा।

—चल जल्दी-जल्दी काम कर लें। क्या करना है?

—अभी हो जाता है। मैं जानती थी तुम बैठोगी थोड़े ही वहाँ चैन से। कीर्ति हँसी।

सहाय और कैप्टेन बाहर बरामदे में पहुँच गये। वे वहाँ बातें करते रहे। कीर्ति और सीमा खाना तैयार करने लगीं। काम करते-करते कीर्ति ने सब कुछ पूछ लिया जो भी सीमा और सहाय के बीच में गुजरा। कीर्ति ने यही कहा कि सीमाजी ज़िन्दगी को किसी भी जगह से पकड़ना तो होगा ही। अगर मिस्टर सहाय किसी निर्णय तक पहुँचकर आए हैं तो आपको भी आगे बढ़ना चाहिए। ऐसा न हो कि ज़रा-सी चूक या डर फिर उस जगह फेंक दे जहाँ से लौटना दुश्वार हो जाये।

खाना तैयार हुआ। सब एक साथ बैठे, खाया। हँसी-मजाक के वातावरण में कहीं कोई ख़राश नहीं थी, कोई अलगाव-छटाव नहीं। सहाय खुश

थे, सीमा खुश थी। कीर्ति को सीमा से पता चल गया था कि सहाय कल शाम की गाड़ी से जाने वाले है। उसने उनसे रुकने के लिये भी कहा। कम-से-कम दो दिन तो और रुकते। कही घूमने का प्रोग्राम रखते। लेकिन सहाय ने दफ्तर के काम की मजबूरी बताई।

चलते-चलते तय हुआ कि वह और कैप्टेन साहब उनके घर आएँगे कल फिर वहीं से स्टेशन पहुँचाने चले-चलेंगे।

दूसरा दिन भी आया। शाम भी आई। सब मिस्टर सहाय को स्टेशन पहुँचाने भी गये। सहाय आये और चले गये। और सीमा के लिये छोड़ गये एक उथल-पुथल कि वह तय करे कि क्या वह उनके साथ की जिन्दगी शुरू करना चाहती है ? सोच पाती है कि बावजूद पिछले अनुभवों के, और बाद में बिताई अपनी अकेली जिन्दगी के, वह फिर से उनके साथ रहना चाहेगी।

सीमा सोच रही है कि क्या वह उसी के लिए उथल-पुथल और निष्कर्ष छोड़ गये है? क्या वह अपने साथ वैसी ही उथल-पुथल, आधी स्वीकृति, आधी दुविधा लेकर नहीं गये है ? लेकिन उसे कीर्ति की बात काफी सार्थक लग रही है ? सीमा जी, जिन्दगी को किसी भी जगह से पकड़ना तो होगा ही।

सीमा सोचती है वह जगह कल रात भी हो सकती थी। जब के. सी घर थे। वह आगे भी हो सकती है जब के सी को लिखना होगा·

क्यों न हम एक साथ रहकर अपने साथ फिर प्रयोग करें।

□□